

बडे बाबू

प्रेमचंद

बड़े बाबू

प्रेमचंद



सप्तर्षी प्रकाशन



बड़े बाबू

प्रेमचंद

❖ **प्रकाशक**

सौ. कुमुदिनी सिद्धेश्वर घुले,

सप्तर्षी प्रकाशन,

(सप्तर्षी असोसिएट्स अॅण्ड पब्लिकेशन्स)

गट नं. ८४/२, दामाजी कॉलेज पिछे,

मंगळवेढा, जि. सोलापूर-४१३३०५

सय्यद शेख (व्यवस्थापक)

मोबा. ९८२२७०१६५७/९८०४०४७०७७

email: saptarsheeparakashan@gmail.com

Website: www.saptarshee.in

www.amazon.in

❖ **मुखपृष्ठ**। किशोर घुले

❖ **मांडणी**। सय्यद शेख

❖ **मुद्रित शोधन**। तनुजा ढेरे

❖ **डी टी पी**। कृतिका प्रिंटर्स, मंगळवेढा

मोबा. ९७६६९२४९९२

❖ **मूल्य** : २० ₹

अनुक्रम

१. अमृत.....	०७
२. अपनी करनी.....	१७
३. गैरत की कटार.....	३२
४. घमंड का पुतला.....	४२
५. विजय.....	५३
६. वफ़ा का खजर.....	६९
७. मुबारक बीमारी.....	८६
८. वासना की कड़ियाँ.....	९८
९. पुत्र-प्रेम.....	११५
१०. इज्जत का खून.....	१२४
११. होली की छुट्टी.....	१३७
१२. नादान दोस्त.....	१५६
१३. प्रतिशोध.....	१६३
१४. देवी.....	१७९

१५. खुदी.....	१८१
१६. बड़े बाबू.....	१८८
१७. राष्ट्र का सेवक.....	२०२
१८. आखिरी तोहफ़ा.....	२०३
१९. क्रांतिल.....	२१९

अमृत

मेरी उठती जवानी थी जब मेरा दिल दर्द के मजे से परिचित हुआ। कुछदिनों तक शायरी का अभ्यास करता रहा और धीरे-धीरे इस शौक ने तल्लीनता का रूप ले लिया। सांसारिक संबंधों से मुंह मोड़कर अपनी शायरी की दुनिया में आ बैठा और तीन ही साल की मशक़ ने मेरी कल्पना के जौहर खोल दिये। कभी-कभी मेरी शायरी उस्तादों के मशहूर कलाम से टक्कर खा जाती थी। मेरे कलम ने किसी उस्ताद के सामने सर नहीं झुकाया। मेरी कल्पना एक अपने-आप बढ़ने वाले पौधे की तरह छंद और पिंगल की क़ैदों से आजाद बढ़ती रही और ऐसे कलाम का ढंग निराला था। मैंने अपनी शायरी को फारस से बाहर निकाल कर योरोप तक पहुँचा दिया। यह मेरा अपना रंग था। इस मैदान में न मेरा कोई प्रतिद्वंद्वी था, न बराबरी करने वाला बावजूद इस शायरों जैसी तल्लीनता के मुझे मुशायरों की वाहवाह और सुभानअल्लाह से नफ़रत थी। हाँ, काव्य-रसिकों से बिना अपना नाम बताये हुए अक्सर अपनी शायरी की अच्छाइयों और बुराइयों पर बहस किया करता। तो मुझे शायरी का दावा न था मगर धीरे-धीरे मेरी शोहरत होने लगी और जब मेरी मसनवी 'दुनियाए हुस्न' प्रकाशित हुई तो साहित्य की दुनिया में हल-चल-सी मच गयी। पुराने शायरों ने काव्य-मर्मज्ञों की प्रशंसा-कृपणता में पोथे के पोथे रंग दिये हैं मगर मेरा अनुभव इसके बिलकुल विपरीत था। मुझे कभी-कभी यह खयाल सताया करता कि मेरे कद्वानों की यह उदारता दूसरे कवियों की लेखनी की दरिद्रता का प्रमाण है। यह खयाल हौसला तोड़ने वाला था। बहरहाल, जो कुछ हुआ, 'दुनियाए हुस्न' ने मुझे शायरी का बादशाह बना दिया। मेरा नाम हरेक ज़बान पर था। मेरी चर्चा हर एक अखबार में थी। शोहरत अपने साथदौलत भी लायी। मुझे दिन-रात शेरों-शायरी के अलावा और कोई काम न था। अक्सर बैठे-बैठे रातें गुज़र जातीं और जब कोई चुभता हुआ शेर कलम से निकल जाता तो मैं खुशी के मारे उछल पड़ता। मैं अब

तक शादी-ब्याह की कैदों से आजाद था या यों कहिए कि मैं उसके उन मजों से अपरिचित था जिनमें रंज की तलखी भी है और खुशी की नमकीनी भी। अक्सर पश्चिमी साहित्यकारों की तरह मेरा भी ख्याल था कि साहित्य के उन्माद और सौन्दर्य के उन्माद में पुराना बैर है। मुझे अपनी जबान से कहते हुए शर्मिन्दा होना पड़ता है कि मुझे अपनी तबियत पर भरोसा न था। जब कभी मेरी आँखों में कोई मोहिनी सूरत घूम जाती तो मेरे दिल-दिमाग पर एक पागलपन-सा छा जाता। हफ्तों तक अपने को भूला हुआ-सा रहता। लिखने की तरफ तबियतकिसी तरह न झुकती। ऐसे कमजोर दिल में सिर्फ एक इश्क की जगह थी। इसी डर से मैं अपनी रंगीन तबियत के खिलाफ आचरण शुद्ध रखने पर मजबूर था। कमल की एक पंखुड़ी, श्यामा के एक गीत, लहलहाते हुए एक मैदान में मेरे लिए जादू का-सा आकर्षण था मगर किसी औरत के दिल-फरेब हुस्न को मैं चित्रकार या मूर्तिकार की बैलौस-आँखों से नहीं देख सकता था। सुंदर स्त्री मेरे लिए एक रंगीन, क्रांतिल नागिन थी जिसे देखकर आँखें खुश होती हैं मगर दिल डर से सिमट जाता है।

खैर, 'दुनियाए हुस्न' को प्रकाशित हुए दो साल गुजर चुके थे। मेरी ख्याति बरसात की उमड़ी हुई नदी की तरह बढ़ती चली जाती थी। ऐसा मालूम होता था जैसे मैंने साहित्य की दुनिया पर कोई वशीकरण कर दिया है। इसी दौरान मैंने फुटकर शेर तो बहुत कहे मगर दावतों और अभिनंदनपत्रों की भीड़ ने मार्मिक भावों को उभरने न दिया। प्रदर्शन और ख्याति एक राजनीतिज्ञ के लिए कोड़े का काम दे सकते हैं, मगर शायर की तबियत अकेले शांति से एक कोने के बैठकर ही अपना जौहर दिखालाती है। चुनांचे मैं इन रोज-ब-रोज बढ़ती हुई बेहूदा बातों से गला छुड़ा कर भागा और पहाड़ के एक कोने में जा छिपा। 'नैरंग' ने वहीं जन्म लिया।

2.

‘नैरंग’ के शुरु करते हुए ही मुझे एक आश्चर्यजनक और दिल तोड़ने वाला अनुभव हुआ। ईश्वर जाने क्यों मेरी अक्ल और मेरे चिंतन पर पर्दा पड़ गया। घंटों तबियत पर जोर डालता मगर एक शेर भी ऐसा न निकलता कि दिल फड़के उठे। सूझते भी तो दरिद्र, पिटे हुए विषय, जिनसे मेरी आत्मा भागती थी। मैं अक्सर झुझलाकर उठ बैठता, कागज फाड़ डालता और बड़ी बेदिली की हालत में सोचने लगता कि क्या मेरी काव्यशक्ति का अंत हो गया, क्या मैंने वह खजाना जो प्रकृति ने मुझे सारी उम्र के लिए दिया था, इतनी जल्दी मिटा दिया। कहां वह हालत थी कि विषयों की बहुतायत और नाजुक खयालों की रवानी कलम को दम नहीं लेने देती थी। कल्पना का पंछी उड़ता तो आसमान का तारा बन जाता था और कहां अब यह पस्ती! यह करुण दरिद्रता! मगर इसका कारण क्या है? यह किस क्रसूर की सज़ा है। कारण और कार्य का दूसरा नाम दुनिया है। जब तक हमको क्यों का जवाब न मिले, दिल को किसी तरह सब्र नहीं होता, यहां तक कि मौत को भी इस क्यों का जवाब देना पड़ता है। आखिर मैंने एक डाक्टर से सलाह ली। उसने आम डाक्टरों की तरह आब-हवा बदलने की सलाह दी। मेरी अक्ल में भी यह बात आयी कि मुमकिन है नैनीताल की ठंडी आब-हवा से शायरी की आग ठंडी पड़ गई हो। छः महीने तक लगातार घूमता-फिरता रहा। अनेक आकर्षक दृश्य देखे, मगर उनसे आत्मा पर वह शायराना कैफियत न छाती थी कि प्याला छलक पड़े और खामोश कल्पना खुद ब खुद चहकने लगे। मुझे अपना खोया हुआ लाल न मिला। अब मैं जिंदगी से तंग था। जिंदगी अब मुझे सूखे रेगिस्तान जैसी मालूम होती जहां कोई जान नहीं, ताज़गी नहीं, दिलचस्पी नहीं। हरदम दिल पर एक मायूसी-सी छाया रहती और दिल खोया-खोया रहता। दिल में यह सवाल पैदा होता कि क्या वह चार दिन की चांदनी खत्म हो गयी और अंधेरा पाख आ गया? आदमी की संगत से बेजार, हमजिस की

सूरत से नफरत, मैं एक गुमनाम कोने में पड़ा हुआ जिंदगी के दिन पूरे कर रहा था। पेड़ों की चोटियों पर बैठने वाली, मीठे राग गाने वाली चिड़िया क्या पिंजरे में ज़िंदा रह सकती हैं? मुमकिन है कि वह दाना खाये, पानी पिये मगर उसकी इस जिंदगी और मौत में कोई फर्क नहीं है।

आखिर जब मुझे अपनी शायरी के लौटने की कोई उम्मीद नहीं रही, तो मेरे दिल में यह इरादा पक्का हो गया कि अब मेरे लिए शायरी की दुनिया से मर जाना ही बेहतर होगा। मुर्दा तो हूँ ही, इस हालत में अपने को ज़िंदा समझना बेवकूफी है। आखिर मैंने एक रोज कुछ दैनिक पत्रों का अपने मरने की खबर दे दी। उसके छपते ही मुल्क में कोहराम मच गया, एक तहलका पड़ गया। उस वक्त मुझे अपनी लोकप्रियता का कुछ अंदाजा हुआ। यह आम पुकार थी, किशायरी की दुनिया की किस्तीमंझधार में डूब गयी। शायरी की महफिल उखड़ गयी। पत्र-पत्रिकाओं में मेरे जीवन-चरित्र प्रकाशित हुए जिनको पढ़ कर मुझे उनके एडीटरों की आविष्कार-बुद्धि का क्रायल होना पड़ा। न तो मैं किसी रईस का बेटा था और न मैंने रईसी की मसनद छोड़कर फकीरी अख्तियार की थी। उनकी कल्पना वास्तविकता पर छा गयी थी। मेरे मित्रों में एक साहब ने, जिन्हे मुझसे आत्मीयता का दावा था, मुझे पीने-पिलाने का प्रेमी बना दिया था। वह जब कभी मुझसे मिलते, उन्हें मेरी आखें नशे से लाल नजर आतीं। अगरचे इसी लेख में आगे चलकर उन्होंने मेरी इस बुरी आदत की बहुत हृदयता से सफाई दी थी क्योंकि रुखा-सूखा आदमी ऐसी मस्ती के शेर नहीं कह सकता था। ताहम हैरत है कि उन्हें यह सरीहन गलत बात कहने की हिम्मत कैसे हुई।

खैर, इन गलत-बयानियों की तो मुझे परवाह न थी। अलबत्ता यह बड़ी फिक्र थी, फिक्र नहीं एक प्रबल जिज्ञासा थी, कि मेरी शायरी पर लोगों की जबान से क्या फतवा निकलता है। हमारी जिंदगी के कारनामे की सच्ची दाद मरने के बाद ही मिलती है क्योंकि उस वक्त वह खुशामद और बुराइयों से पाक-साफ होती हैं। मरने वाले की खुशी या रंज की कौन परवाह करता है।

इसीलिए मेरी कविता पर जितनी आलोचनाएँ निकली हैं उसको मैंने बहुत ही ठंडे दिल से पढ़ना शुरू किया। मगर कविता को समझने वाली दृष्टि की व्यापकता और उसके मर्म को समझने वाली रुचि का चारों तरफ अकाल-सा मालूम होता था। अधिकांश जौहरियों ने एक-एक शेर को लेकर उनसे बहस की थी, और इसमें शक नहीं कि वे पाठक की हैसियत से उस शेर के पहलुओं को खूब समझते थे। मगर आलोचक का कहीं पता न था। नजर की गहराई गायब थी। समग्र कविता पर निगाह डालने वाला कवि, गहरे भावों तक पहुँचने वाला कोई आलोचक दिखाई न दिया।

3.

एक रोज़ मैं प्रेतों की दुनिया से निकलकर घूमता हुआ अजमेर की पब्लिक लाइब्रेरी में जा पहुँचा। दोपहर का वक्त था। मैंने मेज पर झुककर देखा कि कोई नयी रचना हाथ आ जाये तो दिल बहलाऊँ। यकायक मेरी निगाह एक सुंदर पत्र की तरफ गयी जिसका नाम था 'कलामें अख्तर'। जैसे भोला बच्चा खिलौने कि तरफ लपकता है उसी तरह झपटकर मैंने उस किताब को उठालिया। उसकी लेखिका मिस आयशा आरिफ़ थीं। दिलचस्पी और भी ज्यादा हुई। मैं इत्मीनान से बैठकर उस किताब को पढ़ने लगा। एक ही पन्ना पढ़ने के बाद दिलचस्पी ने बेताबी की सूरत अख्तिyar की। फिर तो मैं बेसुधी की दुनिया में पहुँच गया। मेरे सामने गोया सूक्ष्म अर्थों की एक नदी लहरें मार रही थी। कल्पना की उठान, रुचि की स्वच्छता, भाषा की नर्मो। काव्य-दृष्टि ऐसी थी कि हृदय धन्य-धन्य हो उठता था। मैं एक पैराग्राफ पढ़ता, फिर विचार की ताज़गी से प्रभावित होकर एक लंबी साँस लेता और तब सोचने लगता, इस किताब को सरसरी तौर पर पढ़ना असम्भव था। यह औरत थी या सुरुचि की देवी। उसके इशारों से मेरा कलाम बहुत कम बचा था मगर जहां उसने मुझे दाद दी थी वहां सच्चाई के मोती बरसा दिये थे। उसके एतराजों में हमदर्दी और प्रशंसा में भक्ति था। शायर के कलाम को दोषों की दृष्टियों से नहीं देखना चाहिये। उसने क्या नहीं किया, यह ठीक कसौटी नहीं। बस यही जी चाहता था कि लेखिका के हाथ और कलम चूम लूँ। 'सफ़ीर' भोपाल के दफ्तर से एक पत्रिका प्रकाशित हुई थी। मेरा पक्का इरादा हो गया, तीसरे दिन शाम के वक्त मैं मिस आयशा के खूबसूरत बंगले के सामने हरी-हरी घास पर टहल रहा था। मैं नौकरानी के साथ एक कमरे में दाखिल हुआ। उसकी सजावट बहुत सादी थी। पहली चीज़ पर निगाहें पड़ीं वह मेरी तस्वीर थी जो दीवार पर लटक रही थी। सामने एक आइना रखा हुआ था। मैंने खुदा जाने क्यों उसमें अपनी सूरत देखी। मेरा चेहरा पीला और

कुम्हलाया हुआ था, बाल उलझे हुए, कपड़ों पर गर्द की एक मोटी तह जमी हुई, परेशानी की जिंदा तस्वीर थी।

उस वक्त मुझे अपनी बुरी शक्ल पर सख्त शर्मिंदगी हुई। मैं सुंदर न सही मगर इस वक्त तो सचमुच चेहरे पर फटकार बरस रही थी। अपने लिबास के ठीक होने का यकीन हमें खुशी देता है। अपने फुहड़पन का जिस्म पर इतना असर नहीं होता जितना दिल पर। हम बुजदिल और बेहौसला हो जाते हैं।

मुझे मुश्किल से पांच मिनट गुजरे होंगे कि मिस आयशा तशरीफ़ लायीं। सांवला रंग था, चेहरा एक गंभीर घुलावट से चमक रहा था। बड़ी-बड़ी नरगिसी आंखों से सदाचार की, संस्कृति की रोशनी झलकती थी। क्रद मझोले से कुछ कम। अंग-प्रत्यंग छरहरे, सुथरे, ऐसे हल्की-फुल्की कि जैसे प्रकृति ने उसे इस भौतिक संसार के लिए नहीं, किसी काल्पनिक संसार के लिए सिरजा है। कोई चित्रकार कला की उससे अच्छी तस्वीर नहीं खींच सकता था।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखा मगर देखते-देखते उसकी गर्दन झुक गयी और उसके गालों पर लाज की एक हल्की-परछाई नाचती हुई मालूम हुई। जमीन से उठकर उसकी आंखें मेरी तस्वीर की तरफ गयीं और फिर सामने पर्दे की तरफ जा पहुँचीं। शायद उसकी आड़ में छिपना चाहती थीं।

मिस आयशा ने मेरी तरफ दबी निगाहों से देखकर पूछा—आप स्वर्गीय अख्तर के दोस्तों में से हैं?

मैंने सिर नीचा किये हुए जवाब दिया—मैं ही बदनसीब अख्तर हूँ।

आयशा एक बेखुदी के आलम में कुर्सी पर से खड़ी हुई और मेरी तरफ हैरत से देखकर बोलीं—‘दुनियाए हुस्न’ के लिखने वाले?

अंधविश्वास के सिवा और किसने इस दुनिया से चले जानेवाले को देखा है? आयशा ने मेरी तरफ कई बार शक से भरी निगाहों से देखा।

उनमें अब शर्म और हया की जगह के बजाय हैरत समायी हुई थी। मेरे कब्र से निकलकर भागने का तो उसे यकीन आ ही नहीं सकता था, शायद वह मुझे दीवाना समझ रही थी। उसने दिल में फैसला किया कि इस आदमी मरहूम शायर का कोई करीबी अजीज है। शकल जिस तरह मिल रही थी वह दोनों के एक खानदान के होने का सबूत थी। मुमकिन है कि भाई हो। वह अचानक सदमे से पागल हो गया है। शायद उसने मेरी किताब देखी होगी और हाल पूछने के लिए चला आया। अचानक उसे खयाल गुजरा कि किसी ने अखबारों को मेरे मरने की झूठी खबर दे दी हो और मुझे उस खबर को काटने का मौका न मिला हो। इस खयाल से उसकी उलझन दूर हुई बोली—अखबारों में आपके बारे में एक निहायत मनहूस खबर छप गयी थी? मैंने जवाब दिया—वह खबर सही थी।

अगर पहले आयशा को मेरे दिवानेपन में कुछ था तो वह दूर हो गया। आखिर मैंने थोड़े लफ़्जों में अपनी दास्तान सुनायी और जब उसको यकीन हो गया कि 'दुनियाए हुस्न' का लिखनेवाला अख़्तर अपने इन्सानी चोले में है तो उसके चेहरे पर खुशी की एक हल्की सुर्खी दिखायी दी और यह हल्का रंग बहुत जल्द खुददारी और रुप-गर्व के शोख रंग से मिलकर कुछ का कुछ हो गया। ग़ालिबन वह शर्मिदा थी कि क्यों उसने अपनी क्रद्रदानी को हद से बाहर जाने दिया। कुछ देर की शर्मिली खामोशी के बाद उसने कहा—मुझे अफसोस है कि आपको ऐसी मनहूस खबर निकालने की जरूरत हुई।

मैंने जोश में भरकर जवाब दिया—आपके क़लम की जबान से दाद पाने की कोई सूरत न थी। इस तनक़ीद के लिए मैं ऐसी-ऐसी कई मौते मर सकता था।

मेरे इस बेधड़क अंदाज ने आयशा की जबान को भी शिष्टाचार और संकोच की क़ैद से आज़ाद किया, मुस्कराकर बोली—मुझे बनावट पसंद नहीं है। डाक्टरों ने कुछ बतलाया नहीं? उसकी इस मुस्कराहट ने मुझे

दिल्लगी करने पर आमादा किया, बोला—अब मसीहा के सिवा इस मर्ज का इलाज और किसी के हाथ नहीं हो सकता।

आयशा इशारा समझ गई, हँसकर बोली—मसीहा चौथे आसमान पर रहते हैं।

मेरी हिम्मत ने अब और कदम बढ़ाये---रुहों की दुनिया से चौथा आसमान बहुत दूर नहीं है।

आयशा के खिले हुए चेहरे से संजीदगी और अजनबियत का हल्का रंग उड़ गया। ताहम, मेरे इन बेधड़क इशारों को हृद से बढ़ते देखकर उसे मेरी जबान पर रोक लगाने के लिए किसी क्रूर खुददारी बरतनी पड़ी। जब मैं कोई घंटे-भर के बाद उस कमरे से निकला तो बजाय इसके कि वह मेरी तरफ अपनी अंग्रेजी तहजीब के मुताबिक हाथ बढ़ाये उसने चोरी-चोरी मेरी तरफ देखा। फैला हुआ पानी जब सिमटकर किसी जगह से निकलता है तो उसका बहाव तेज़ और ताकत कई गुना ज्यादा हो जाती है आयशा की उन निगाहों में अस्मत् की तासीर थी। उनमें दिल मुस्कराता था और जज्बा नाजता था। आह, उनमें मेरे लिए दावत का एक पुरजोर पैगाम भरा हुआ था। जब मैं मुस्लिम होटल में पहुँचकर इन वाक्यात पर गौर करने लगा तो मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि गो मैं ऊपर से देखने पर यहां अब तक अपरिचित था लेकिन भीतरी तौर पर शायद मैं उसके दिल के कोने तक पहुँच चुका था।

4.

जब मैं खाना खाकर पलंग पर लेटा तो बावजूद दो दिन रात-रात-भर जागने के नींद आंखों से कोसों दूर थी। जज्बात की कशमकश में नींद कहाँ। आयशा की सूरत, उसकी खातिरदारियाँ और उसकी वह छिपी-छिपी निगाह दिल में एकसासों का तूफान-सा बरपा रही थी उस आखिरी निगाह ने दिल में तमन्नाओं की रुम-धूम मचा दी। वह आरजुएं जो बहुत अरसा हुआ, मर मिटी थीं फिर जाग उठीं और आरजुओं के साथ कल्पना ने भी मुंदी हुई आंखे खोल दीं।

दिल में जज्बात और कैफ़ियात का एक बेचैन करनेवाला जोश महसूसहुआ। यही आरजुएं, यही बेचैनिया और यही कोशिशें कल्पना के दीपक के लिए तेल हैं। जज्बात की हरारत ने कल्पना को गरमाया। मैं क्रलम लेकर बैठ गया और एक ऐसी नज़म लिखी जिसे मैं अपनी सबसे शानदार दौलत समझता हूँ।

मैं एक होटल मे रह रहा था, मगर किसी-न-किसी हीले से दिन में कम-से-कम एक बार जरूर उसके दर्शन का आनंद उठाता। गोआयशा ने कभी मेरे यहाँ तक आने की तकलीफ नहीं की तो भी मुझे यह यकीन करने के लिए शहादतों की जरूरत न थीकिवहाँ किस क्रदर सरगर्मी से मेरा इंतजार किया जाता था, मेरे क्रदमों की पहचानी हुई आहटे पाते ही उसका चेहरा कैसे कमल की तरह खिल जाता था और आंखों से कामना की किरणें निकलने लगती थीं।

यहां छः महीने गुजर गये। इस जमाने को मेरी जिंदगी की बहार समझना चाहिये। मुझे वह दिन भी याद है जब मैं आरजुओं और हसरतों के ग़म से आजाद था। मगर दरिया की शांतिपूर्ण खानी में थिरकती हुई लहरों की बहार कहाँ, अब अगर मुहब्बत का दर्द था तो उसका प्राणदायी मज़ा भी था। अगर आरजुओं की घुलावट थी तो उनकी उमंग भी थी। आह, मेरी यह प्यासी आंखें उस रूप के स्रोत से किसी तरह तप्त न होंती। जब मैं अपनी नशें

में डूबी हुई आंखों से उसे देखता तो मुझे एक आत्मिक तरावट-सी महसूस होती। मैं उसके दीदार के नशे से बेसुध-सा हो जाता और मेरी रचना-शक्ति का तो कुछ हद-हिसाब न था। ऐसा मालूम होता था कि जैसे दिल में मीठे भावों का सोता खुल गया था। अपनी कवित्व शक्ति पर खुद अचम्भा होता था। क्रलम हाथ में ली और रचना का सोता-सा बह निकला। 'नैरंग' में ऊँची कल्पनाएँ न हो, बड़ी गूढ़ बातें न हों, मगर उसका एक-एक शेर प्रवाह और रस, गर्मी और घुलावट की दाद दे रहा है। यह उस दीपक का वरदान है, जो अब मेरे दिल में जल गया था और रोशनी दे रहा था। यह उस फूल की महक थी जो मेरे दिल में खिला हुआ था। मुहब्बत रुह की खुराक है। यह अमृत की बूंद है जो मेरे हुए भावों को जिंदा कर देती है। मुहब्बत आत्मिक वरदान है। यह जिंदगी की सबसे पाक, सबसे ऊँची, मुबारक बरक्रत है। यही अक्सीर थी जिसकी अनजाने ही मुझे तलाश थी। वह रात कभी नहीं भूलेगी जब आयशा दुल्हन बनी हुई मेरे घर में आयी। 'नैरंग' उसकी मुबारक जिंदगी की यादगार है। 'दुनियाए हुस्न' एक कली थी, 'नैरंग' खिला हुआ फूल है और उस कली को खिलाने वाली कौन-सी चीज है? वही जिसकी मुझे अनजाने ही तलाश थी और जिसे मैं अब पा गया था।

....उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

अपनी करनी

आह, अभाग मैं! मेरे कर्मों के फल ने आज यह दिन दिखाये कि अपमान भी मेरे ऊपर हंसता है। और यह सब मैंने अपने हाथों किया। शैतान के सिर इलजाम क्यों दूँ, किस्मत को खरी-खोटी क्यों सुनाऊँ, होनी का क्यों रोऊँ? जों कुछ किया मैंने जानते और बूझते हुए किया। अभी एक साल गुजरा जब मैं भाग्यशाली था, प्रतिष्ठित था और समृद्धि मेरी चेरी थी। दुनिया की नेमतें मेरे सामने हाथ बांधे खड़ी थीं लेकिन आज बदनामी और कंगाली और शर्मिंदगी मेरी दुर्दशा पर आंसू बहाती है। मैं ऊँचे खानदान का, बहुत पढ़ा-लिखा आदमी था, फारसी का मुल्ला, संस्कृत का पण्डित, अंग्रेजी का ग्रेजुएट। अपने मुंह मियां मिट्टू क्यों बनूँ लेकिन रुप भी मुझको मिला था इतना कि दूसरे मुझसे ईर्ष्या कर सकते थे। ग़रज एक इंसान को खुशी के साथ जिंदगी बसर करने के लिए जितनी अच्छी चीजों की जरूरत हो सकती है वह सब मुझे हासिल थीं। सेहत का यह हाल कि मुझे कभी सरदर्द की भी शिकायत नहीं हुई। फ़िटन की सैर, दरिया की दिल फ़रेबियां, पहाड़ के सुंदर दृश्य — उन खुशियों का जिक्र ही तकलीफ़ देह है। क्या मजे की जिंदगी थी!

आह, यहाँ तक तो अपना दर्देदिल सुना सकता हूँ लेकिन इसके आगे फिर होंठों पर खामोशी की मुहर लगी हुई है। एक सती-साध्वी, प्रतिप्राणा स्त्री और दो गुलाब के फूल-से बच्चे इंसान के लिए जिन खुशियों, आरजुओं, हौसलों और दिलफ़रेबियों का खजाना हो सकते हैं वह सब मुझे प्राप्त था। मैं इस योग्य नहीं कि उस पतिव्रत स्त्री का नाम जबान पर लाऊँ। मैं इस योग्य नहीं कि अपने को उन लड़कों का बाप कह सकूँ। मगर नसीब का कुछ ऐसा खेल था कि मैंने उन बिहिश्ती नेमतों की कद्र न की। जिस औरत ने मेरे हुक्म और अपनी इच्छा में कभी कोई भेद नहीं किया, जो मेरी सारी बुराइयों के बावजूद कभी शिकायत का एक हफ़्त ज़बान पर नहीं लायी, जिसका गुस्सा कभी आंखों से आगे नहीं बढ़ने पाया-गुस्सा क्या था कुआर की बरखा थी, दो-चार

हलकी-हलकी बूंदें पड़ी और फिर आसमान साफ़ हो गया—अपनी दीवानगी के नशे में मैंने उस देवी की कद्र न की। मैंने उसे जलाया, रुलाया, तड़पाया। मैंने उसके साथ दगा की। आह! जब मैं दो-दो बजे रात को घर लौटता था तो मुझे कैसे-कैसे बहाने सूझते थे, नित नये हीले गढ़ता था, शायद विद्यार्थी जीवन में जब बैण्ड के मजे से मदरसे जाने की इजाज़त न देते थे, उस वक्त भी बुद्धि इतनी प्रखर न थी। और क्या उस क्षमा की देवी को मेरी बातों पर यक़ीन आता था? वह भोली थी मगर ऐसी नादान न थी। मेरी खुमार-भरी आंखे और मेरे उथले भाव और मेरे झूठे प्रेम-प्रदर्शन का रहस्य क्या उससे छिपा रह सकता था? लेकिन उसकी रग-रग में शराफ़त भरी हुई थी, कोई कमीना ख़याल उसकी जबान पर नहीं आ सकता था। वह उन बातों का ज़िक्र करके या अपने संदेहों को खुले आम दिखलाकर हमारे पवित्र संबंध में खिचाव या बदमज़गी पैदा करना बहुत अनुचित समझती थी। मुझे उसके विचार, उसके माथे पर लिखे मालूम होते थे। उन बदमज़गियों के मुकाबले में उसे जलना और रोना ज्यादा पसंद था, शायद वह समझती थी कि मेरा नशा खुद-ब-खुद उतर जाएगा। काश, इस शराफ़त के बदले उसके स्वभाव में कुछ ओछापन और अनुदारता भी होती। काश, वह अपने अधिकारों को अपने हाथ में रखना जानती। काश, वह इतनी सीधी न होती। काश, अब अपने मन के भावों को छिपाने में इतनी कुशल न होती। काश, वह इतनी मक्कार न होती। लेकिन मेरी मक्कारी और उसकी मक्कारी में कितना अंतर था, मेरी मक्कारी हरामकारी थी, उसकी मक्कारी आत्मबलिदानी।

एक रोज़ मैं अपने काम से फुसरत पाकर शाम के वक्त मनोरंजन के लिए आनंदवाटिकामे पहुँचा और संगमरमर के हौज पर बैठकर मछलियों का तमाशा देखने लगा। एकाएक निगाह ऊपर उठी तो मैंने एक औरत का बेले की झाड़ियों में फूल चुनते देखा। उसके कपड़े मैले थे और जवानी की ताजगी और गर्व को छोड़कर उसके चेहरे में कोई ऐसी खास बात न थी उसने मेरी तरफ़ आंखें उठायीं और फिर फूल चुनने में लग गयी गोया

उसने कुछ देखा ही नहीं। उसके इस अंदाज ने, चाहे वह उसकी सरलता ही क्यों न रही हो, मेरी वासना को औरभी उद्दीप्त कर दिया। मेरे लिए यह एक नयी बात थी कि कोई औरत इस तरह देखे कि जैसे उसने नहीं देखा। मैं उठा और धीरे-धीरे, कभी जमीन और कभी आसमान की तरफ ताकते हुए बेले की झाड़ियों के पास जाकर खुद भी फूल चुनने लगा। इस ढिठाई का नतीजा यह हुआ कि वह मालिन की लड़की वहां से तेजी के साथ बाग के दूसरे हिस्से में चली गयी।

उस दिन से मालूम नहीं वह कौन-सा आकर्षण था जो मुझे रोज शाम के वक्त आनंदवाटिका की तरफ खींच ले जाता। उसे मुहब्बत हरगिज नहीं कह सकते। अगर मुझे उस वक्त भगवान् न करें, उस लड़की के बारे में कोई, शोक-समाचार मिलता तो शायद मेरी आंखों से आंसू भी न निकले, जोगिया धारण करने की तो चर्चा ही व्यर्थ है। मैं रोज जाता और नये-नये रूप धरकर जाता लेकिन जिस प्रकृति ने मुझे अच्छा रूप-रंग दिया था उसी ने मुझे वाचालता से वंचित भी कर रखा था। मैं रोज जाता और रोज लौट जाता, प्रेम की मंजिल में एक क़दम भी आगे न बढ़ पाता था। हां, इतना अलबत्ता हो गया कि उसे वह पहली-सी झिझक न रही।

आखिर इस शांतिपूर्ण नीति को सफल बनाने न होते देख मैंने एक नयी युक्ति सोची। एक रोज मैं अपने साथ अपने शैतान बुलडागटामी को भी लेता गया। जब शाम हो गयी और वह मेरे धैर्य का नाश करने वाली फूलों से आंचल भरकर अपने घर की ओर चली तो मैंने अपने बुलडाग को धीरे से इशारा कर दिया। बुलडाग उसकी तरफ़ बाज की तरफ झपटा, फूलमती ने एक चीख मारी, दो-चार कदम दौड़ी और जमीन पर गिर पड़ी। अब मैं छड़ी हिलाता, बुलडाग की तरफ गुस्सेभरी आंखों से देखता और हांय-हांय चिल्लाता हुआ दौड़ा और उसे जोर से दो-तीन डंडे लगाये। फिर मैंने बिखरे हुए फूलों को समेटा, सहमी हुई औरत का हाथ पकड़कर बिठा दिया और

बहुत लज्जित और दुखी भाव से बोला—यह कितना बड़ा बदमाश है, अब इसे अपने साथ कभी नहीं लाऊंगा। तुम्हें इसने काट तो नहीं लिया?

फूलमती ने चादर से सर को ढांकते हुए कहा—तुम न आ जाते तो वह मुझे नोच डालता। मेरे तो जैसे मन-मन-भर में पैर हो गये थे। मेरा कलेजा तो अभी तक धड़क रहा है।

यह तीर लक्ष्य पर बैठा, खामोशी की मुहर टूट गयी, बातचीत का सिलसिला क्रायम हुआ। बांध में एक दरार हो जाने की देर थी, फिर तो मन की उमंगो ने खुद-ब-खुद काम करना शुरू किया। मैंने जैसे-जैसे जाल फैलाये, जैसे-जैसे स्वांग रचे, वह रंगीन तबियत के लोग खूब जानते हैं। और यह सब क्यों? मुहब्बत से नहीं, सिर्फ जरा देर दिल को खुश करने के लिए, सिर्फ उसके भरे-पूरे शरीर और भोलेपन पर रीझकर। यों मैं बहुत नीच प्रकृति का आदमी नहीं हूँ। रूप-रंग में फूलमती का इंदु से मुकाबला न था। वह सुंदरता के सांचे में ढली हुई थी। कवियों ने सौंदर्य की जो कसौटियां बनायी हैं वह सब वहां दिखायी देती थीं लेकिन पता नहीं क्यों मैंने फूलमती की धंसी हुई आंखों और फूले हुए गालों और मोटे-मोटे होठों की तरफ अपने दिल का ज्यादा खिंचाव देखा। आना-जाना बढ़ा और महीना-भर भी गुजरने न पाया कि मैं उसकी मुहब्बत के जाल में पूरी तरह फंस गया। मुझे अब घर की सादा जिंदगी में कोई आनंद न आता था। लेकिन दिल ज्यों-ज्यों घर से उचटता जाता था त्यों-त्यों मैं पत्नी के प्रति प्रेम का प्रदर्शन और भी अधिक करता था। मैं उसकी फ़रमाइशों का इंतजार करता रहता और कभी उसका दिल दुखानेवाली कोई बात मेरी जबान पर न आती। शायद मैं अपनी आंतरिक उदासीनता को शिष्टाचार के पर्दे के पीछे छिपाना चाहता था।

धीरे-धीरे दिल की यह कैफ़ियत भी बदल गयी और बीवी की तरफ से उदासीनता दिखायी देने लगी। घर में कपड़े नहीं है लेकिन मुझसे इतना न होता कि पूछ लूं। सच यह है कि मुझे अब उसकी खातिरदारी करते हुए एक डर-सा मालूम होता था कि कहीं उसकी खामोशी की दीवार टूट न

जाय और उसके मन के भाव जबान पर न आ जायें। यहां तक कि मैंने गिरस्ती की जरूरतों की तरफ से भी आंखें बंद कर लीं। अब मेरा दिल और जान और रुपया-पैसा सब फूलमती के लिए था। मैं खुद कभी सुनार की दुकान पर न गया था लेकिन आजकल कोई मुझे रात गए एक मशहूर सुनार के मकान पर बैठा हुआ देख सकता था। बजाज की दुकान में भी मुझे रुचि हो गयी।

एक रोज शाम के वक्त रोज की तरह मैं आनंदवाटिका में सैर कर रहा था और फूलमतीसोहलों सिंगार किए, मेरी सुनहरी-रुपहली भेंटो से लदी हुई, एक रेशमी साड़ी पहने बाग की क्यारियों में फूल तोड़ रही थी, बल्कि यों कहो कि अपनी चुटकियोमे मेरे दिल को मसल रही थी। उसकी छोटी-छोटी आंखे उस वक्त नशे के हुस्न में फैल गयी थीं और उनमें शोखी और मुस्कराहट की झलक नज़र आती थी।

अचानक महाराजा साहब भी अपने कुछ दोस्तों के साथ मोटर पर सवार आ पहुँचे। मैं उन्हें देखते ही अगवानी के लिए दौड़ा और आदाब बजा लाया। बेचारी फूलमती महाराजा साहब को पहचानती थी लेकिन उसे एक घने कुंज के अलावा और कोई छिपने की जगह न मिल सकी। महाराजा साहब चले तो हौज की तरफ़ लेकिन मेरा दुर्भाग्य उन्हें क्यारी पर ले चला जिधर फूलमती छिपी हुई थर-थर कांप रही थी।

महाराजा साहब ने उसकी तरफ़ आश्चर्य से देखा और बोले—यह कौन औरत है? सब लोग मेरी ओर प्रश्न-भरी आंखों से देखने लगे और मुझे भी उस वक्त यही ठीक मालूम हुआ कि इसका जवाब मैं ही दूँ वरना फूलमती न जाने क्या आफत ढ़ा दे। लापरवाही के अंदाज से बोला—इसी बाग के माली की लड़की है, यहां फूल तोड़ने आयी होगी।

फूलमती लज्जा और भय के मारे जमीन में धंसी जाती थी। महाराजा साहब ने उसे सर से पांव तक गौर से देखा और तब संदेहशील भाव से मेरी तरफ़ देखकर बोले—यह माली की लड़की है?

मैं इसका क्या जवाब देता। इसी बीच कम्बख्तदुर्जन माली भी अपनी फटी हुई पाग संभालता, हाथ मे कुदाल लिए हुए दौड़ता हुआ आया और सर को घुटनों से मिलाकर महाराज को प्रणाम किया महाराजा ने जरा तेज लहजे में पूछा—यह तेरी लड़की हैं?

माली के होश उड़ गए, कांपता हुआ बोला--हुजूर।

महाराज—तेरी तनख्वाह क्या है?

दुर्जन—हुजूर, पांच रुपये।

महाराज—यह लड़की कुंवारी है या ब्याही?

दुर्जन—हुजूर, अभी कुंवारी है

महाराज ने गुस्से में कहा—या तो तू चोरी करता है या डाका मारता है वरना यह कभी नहीं हो सकता कि तेरी लड़की अमीरजादी बनकर रह सके। मुझे इसी वक्त इसका जवाब देना होगा वरना मैं तुझे पुलिस के सुपुर्द कर दूँगा। ऐसे चाल-चलन के आदमी को मैं अपने यहां नहीं रख सकता।

माली की तो घिघ्मी बंध गयी और मेरी यह हालत थी कि काटो तो बदन में लहू नहीं। दुनिया अंधेरी मालूम होती थी। मैं समझ गया कि आज मेरी शामत सर पर सवार है। वह मुझे जड़ से उखाड़कर दम लेगी। महाराजा साहब ने माली को जोर से डांटकर पूछा—तू खामोश क्यों है, बोलता क्यों नहीं?

दुर्जन फूट-फटकर रोने लगा। जब ज़रा आवाज सुधरी तो बोला—हुजूर, बाप-दादे से सरकार का नमक खाता हूँ, अब मेरे बुढ़ापे पर दया कीजिए, यह सब मेरे फूटे नसीबों का फेर है धर्मावतार। इस छोकरी ने मेरी नाक कटा दी, कुल का नाम मिटा दिया। अब मैं कहीं मुंह दिखाने लायक नहीं हूँ, इसको सब तरह से समझा-बुझाकर हार गए हुजूर, लेकिन मेरी बात सुनती ही नहीं तो क्या करूँ। हुजूर माईबाप हैं, आपसे क्या पर्दा करूँ, उसे अब अमीरों के साथ रहना अच्छा लगता है और आजकल के रईसों और अमीरों को क्या कहूँ, दीनबंधु सब जानते हैं।

महाराजा साहब ने जरा देर गौर करके पूछा—क्या उसका किसी सरकारी नौकर से संबंध है?

दुर्जन ने सर झुकाकर कहा—हुजूर।

महाराज साहब—वह कौन आदमी है, तुम्हें उसे बतलाना होगा।

दुर्जन—महाराज जब पूछेंगे बता दूँगा सांच को आंच क्या।

मैंने तो समझा था कि इसी वक्त सारा पर्दाफास हुआ जाता है लेकिन महाराजा साहब ने अपने दरबार के किसी मुलाजिम की इज्जत को इस तरह मिट्टी में मिलाना ठीक नहीं समझा। वे वहां से टहलते हुए मोटर पर बैठकर महल की तरफ चले।

3.

इस मनहूस वाक्य के एक हफ्ते बाद एक रोज मैं दरबार से लौटा तो मुझे अपने घर में से एक बूढ़ी औरत बाहर निकलती हुई दिखाई दी। उसे देखकर मैं ठिठका। उसे चेहरे पर बनावटी भोलापन था जो कुटनियों के चेहरे की खास बात है। मैंने उसे डांटकर पूछा—तू कौन है, यहां क्यों आयी है?

बुढ़िया ने दोनों हाथ उठाकर मेरी बलाये लीं और बोली—बेटा, नाराज न हो, गरीब भिखारी हूँ, मालिकिन का सुहाग भरपुर रहे, उसे जैसा सुनती थी वैसा ही पाया। यह कह कर उसने जल्दी से क्रदम उठाए और बाहर चली गई। मेरे गुस्से का पारा चढ़ा मैंने घर जाकर पूछा—यह कौन औरत थी?

मेरी बीवी ने सर झुकाये धीरे से जवाब दिया—क्या जानूं, कोई भिखरिन थी।

मैंने कहा, भिखारिनों की सूरत ऐसी नहीं हुआ करती, यह तो मुझे कुटनी-सी नजर आती है। साफ़-साफ़ बताओं उसके यहां आने का क्या मतलब था।

लेकिन बजाय कि इन संदेह-भरी बातों को सुनकर मेरी बीवी गर्व से सिर उठाये और मेरी तरफ़ उपेक्षा-भरी आंखों से देखकर अपनी साफ़दिली का सबूत दे, उसने सर झुकाए हुए जवाब दिया—मैं उसके पेट में थोड़े ही बैठी थी। भीख मांगने आयी थी भीख दे दी, किसी के दिल का हाल कोई क्या जाने!

उसके लहजे और अंदाज से पता चलता था कि वह जितना जबान से कहती है, उससे ज्यादा उसके दिल में है। झूठा आरोप लगाने की कला में वह अभी बिल्कुल कच्ची थी वर्नातिरियाचरित्तर की थाह किसे मिलती है। मैं देख रहा था कि उसके हाथ-पांव थरथरा रहे हैं। मैंने झपटकर उसका हाथ पकड़ा और उसके सिर को ऊपर उठाकर बड़े गंभीर क्रोध से बोला—इंदु, तुम जानती हो कि मुझे तुम्हारा कितना एतबार है लेकिन अगर तुमने इसी वक्त सारी घटना सच-सच न बता दी तो मैं नहीं कह सकता कि इसका नतीजा क्या

होगा। तुम्हारा ढंग बतलाता है कि कुछ-न-कुछ दाल में काला जरूर है। यह खूब समझ रखो कि मैं अपनी इज्जत को तुम्हारी और अपनी जानों से ज्यादा अजीज समझता हूँ। मेरे लिए यह डूब मरने की जगह है कि मैं अपनी बीवी से इस तरह की बातें करूँ, उसकी ओर से मेरे दिल में संदेह पैदा हो। मुझे अब ज्यादा सब्र की गुंजाइश नहीं है बोलो क्या बात है?

इंदुमती मेरे पैरो पर गिर पड़ी और रोकर बोली—मेरा कसूर माफ कर दो।

मैंने गरजकर कहा—वह कौन सा कसूर है?

इंदुमति ने संभलकर जवाब दिया—तुम अपने दिल में इस वक्त जो ख्याल कर रहे हो उसे एक पल के लिए भी वहां न रहने दो, वर्ना समझ लो कि आज ही इस जिंदगी का खात्मा है। मुझे नहीं मालूम था कि तुम मेरे ऊपर जो जुल्म किए हैं उन्हें मैंने किस तरह झेला है और अब भी सब-कुछ झेलने के लिए तैयार हूँ। मेरा सर तुम्हारे पैरो पर है, जिस तरह रखोगे, रहूँगी। लेकिन आज मुझे मालूम हुआ कि तुम खुद हो वैसा ही दूसरों को समझते हो। मुझसे भूल अवश्य हुई है लेकिन उस भूल की यह सजा नहीं कि तुम मुझ पर ऐसे संदेह न करो। मैंने उस औरत की बातों में आकर अपने सारे घर का चिट्ठा बयान कर दिया। मैं समझती थी कि मुझे ऐसा नहीं करना चाहिये लेकिन कुछ तो उस औरत की हमदर्दी और कुछ मेरे अंदर सुलगती हुई आग ने मुझसे यह भूल करवाई और इसके लिए तुम जो सजा दो वह मेरे सर-आंखों पर।

मेरा गुस्सा जरा धीमा हुआ। बोला-तुमने उससे क्या कहा?

इंदुमति ने दिया—घर का जो कुछ हाल है, तुम्हारी बेवफाई, तुम्हारी लापरवाही, तुम्हारा घर की जरूरतों की फ्रिक न रखना। अपनी बेवकूफी का क्या कहूँ, मैंने उसे यहां तक कह दिया कि इधर तीन महीने से उन्होंने घर के लिए कुछ खर्च भी नहीं दिया और इसकी चोट मेरे गहनो पर पड़ी। तुम्हें शायद मालूम नहीं कि इन तीन महीनों में मेरे साढ़े चार सौ रुपये के जेवर बिक गये। न मालूम क्यों मैं उससे यह सब कुछ कह गयी। जब इंसान का दिल जलता है

तो जबान तक उसी आंच आ ही जाती है। मगर मुझसे जो कुछ खता हुई उससे कई गुनी सख्त सजा तुमने मुझे दी है; मेरा बयान लेने का भी सब्र न हुआ। खैर, तुम्हारे दिल की कैफियत मुझे मालूम हो गई, तुम्हारा दिल मेरी तरफ़ से साफ़ नहीं है, तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं रहा वरना एक भिखारिन औरत के घर से निकलने पर तुम्हें ऐसे शुबहे क्यों होते।

मैं सर पर हाथ रखकर बैठ गया। मालूम हो गया कि तबाही के सामान पूरे हुए जाते हैं।

4.

दूसरे दिन मैं ज्यों ही दफ्तर में पहुँचा चोबदार ने आकर कहा- महाराज साहब ने आपको याद किया है।

मैं तो अपनी किस्मत का फैसला पहले से ही किये बैठा था। मैं खूब समझ गया था कि वह बुढ़िया खुफ़िया पुलिस की कोई मुखबिर है जो मेरे घरेलू मामलों की जांच के लिए तैनात हुई होगी। कल उसकी रिपोर्ट आयी होगी और आज मेरी तलबी है। खौफ़ से सहमा हुआ लेकिन दिल को किसी तरह संभाले हुए कि जो कुछ सर पर पड़ेंगी देखा जाएगा, अभी से क्यों जान दूं, मैं महाराजा की खिदमत में पहुँचा। वह इस वक्त अपने पूजा के कमरे में अकेले बैठे हुए थे, क्रागजों का एक ढेर इधर-उधर फैला हुआ था ओर वह खुद किसी ख्याल में डूबे हुए थे। मुझे देखते ही वह मेरी तरफ मुखातिब हुए, उनके चेहरे पर नाराज़गी के लक्षण दिखाई दिये, बोले कुंअर श्यामसिंह, मुझे बहुत अफसोस है कि तुम्हारी बावत मुझे जो बातें मालूम हुईं वह मुझे इस बात के लिए मजबूर करती हैं कि तुम्हारे साथ सख्ती का बर्ताव किया जाए। तुम मेरे पुराने वसीक़ादार हो और तुम्हें यह गौरव कई पीढ़ियों से प्राप्त है। तुम्हारे बुजुर्गों ने हमारे खानदान की जान लगाकर सेवाएं की हैं और उन्हीं के सिलें में यह वसीक़ा दिया गया था लेकिन तुमने अपनी हरकतों से अपने को इस कृपा के योग्य नहीं रक्खा। तुम्हें इसलिए वसीक़ा मिलता था कि तुम अपने खानदान की परवरिश करो, अपनेलड़कों को इस योग्य बनाओ कि वह राज्य की कुछ खिदमत कर सकें, उन्हें शारीरिक और नैतिक शिक्षा दो ताकि तुम्हारी जात से रियासत की भलाई हो, न कि इसलिए कि तुम इस रुपये को बेहूदा ऐशपस्ती और हरामकारी में खर्च करो। मुझे इस बात से बहुत तकलीफ़ होती है कि तुमने अब अपने बाल-बच्चों की परवरिश की जिम्मेदारी से भी अपने को मुक्त समझ लिया है। अगर तुम्हारा यही ढंग रहा तो यकीनन वसीक़ादारों का एक पुराना खानदान मिट जाएगा। इसलिए हाज से हमने तुम्हारा नाम वसीक़ादारों की फ़ेहरिस्त से खारिज कर दिया और तुम्हारी जगह

तुम्हारी बीवी का नाम दर्ज किया गया। वह अपने लड़कों को पालने-पोसने की जिम्मेदार है। तुम्हारा नाम रियासत के मालियों की फ़ेहरिस्त में लिया जाएगा, तुमने अपने को इसी के योग्य सिद्ध किया है और मुझे उम्मीद है कि यह तबादला तुम्हें नागवार न होगा। बस, जाओ और मुमकिन हो तो अपने किये पर पछताओ।

5.

मुझे कुछ कहने का साहस न हुआ। मैंने बहुत धैर्यपूर्वक अपने क्रिस्मत का यह फ़ैसला सुना और घर की तरफ़ चला। लेकिन दो ही चार क़दम चला था कि अचानक ख़चाल आया किसके घर जा रहे हो, तुम्हारा घर अब कहां है ! मैं उलटे क़दम लौटा। जिस घर का मैं राजा था वहां दूसरों का आश्रित बनकर मुझसे नहीं रहा जाएगा और रहा भी जाये तो मुझे रहना चाहिए। मेरा आचरण निश्चय ही अनुचित था लेकिन मेरी नैतिक संवेदना अभी इतनी थोथी न हुई थी। मैंने पक्का इरादा कर लिया कि इसी वक्त इस शहर से भाग जाना मुनासिब है वरना बात फैलते ही हमदर्दों और बुरा चेतनेवालों का एक जमघट हालचाल पूछने के लिए आ जाएगा, दूसरों की सूखी हमदर्दियां सुननी पड़ेंगी जिनके पर्दे में खुशी झलकती होगी एक बारख़ सिर्फ़ एक बार, मुझे फूलमती का खयाल आया। उसके कारण यह सब दुर्गत हो रही है, उससे तो मिल ही लूं। मगर दिल ने रोका, क्या एक वैभवशाली आदमी की जो इज्जत होती थी वह अब मुझे हासिल हो सकती है? हरगिज़ नहीं। रूप की मण्डी में वफ़ा और मुहब्बत के मुक़ाबिले में रुपया-पैसा ज्यादा क़ीमती चीज़ है। मुमकिन है इस वक्त मुझ पर तरस खाकर या क्षणिक आवेश में आकर फूलमती मेरे साथ चलने पर आमदा हो जाये लेकिन या क्षणिक आवेश में आकर फूलमती मेरे साथ चलने पर आमदा हो जाये लेकिन उसे लेकर कहां जाऊंगा, पांवों में बेड़ियां डालकर चलना तो ओर भी मुश्किल है।

इस तरह सोच-विचार कर मैंने बम्बई की राहली और अब दो साल से एक मिल में नौकर हूँ, तनख्वाह सिर्फ़ इतनी है कि ज्यों-त्यों जिन्दगी का सिलसिला चलता रहे लेकिन ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ और इसी को यथेष्ट समझता हूँ। मैं एक बार गुप्त रूप से अपने घर गया था। फूलमती ने एक दूसरे रईस से रूप का सौदा कर लिया है, लेकिन मेरी पत्नी ने अपने प्रबन्ध-कौशल से घर की हालत ख़ूब संभाल ली है। मैंने अपने मकान को रात के समय लालसा-भरी आंखों से देखा-दरवाज़े पर पर दो लालटेनें जल रही थीं

और बच्चे इधर-उधर खेल रहे थे, हर सफ़ाई और सुथरापन दिखायी देता था। मुझे कुछ अखबारों के देखने से मालूम हुआ कि महीनों तक मेरे पते-निशान के बारे में अखबारों में इशतहार छपते रहे। लेकिन अब यह सूरत लेकर मैं वहां क्या जाऊंगा ओर यह कालिख-लगा मुंह किसको दिखाऊंगा। अब तो मुझे इसी गिरी-पड़ी हालत में जिन्दगी के दिन काटने हैं, चाहे रोककर काटूं या हंसकर। मैं अपनी हरकतों पर अब बहुत शर्मिदा हूँ। अफसोस मैंने उन नेमतों की कद्र न की, उन्हें लात से ठोकर मारी, यह उसी की सजा है कि आज मुझे यह दिन देखना पड़ रहा है। मैं वह परवाना हूँ। मैं वह परवाना हूँ जिसकी खाक भी हवा के झोंकों से नहीं बची।

-‘जमाना’, सितंबर-अक्तूबर, 1994

गौरत की कटारे

कितनी अफ़सोसनाक, कितनी दर्दभरी बात है कि वही औरत जो कभी हमारे पहलू में बसती थी उसी के पहलू में चुभने के लिए हमारा तेज खंजर बेचैन हो रहा है। जिसकी आंखें हमारे लिए अमृत के छलकते हुए प्याले थीं वही आंखें हमारे दिल में आग और तूफान पैदा करें। रूप उसी वक्त तक राहत और खुशी देता है जब तक उसके भीतर एक रूहानी नेमत होती है और जब तक उसके अन्दर औरत की वफ़ा की रूह हरकत कर रही हो वरना वह एक तकलीफ़ देने चाली चीज़ है, ज़हर और बदबू से भरी हुई, इसी क़ाबिल कि वह हमारी निगाहों से दूर रहे और पंजे और नाखून का शिकार बने। एक जमाना वह था कि नईमा हैदर की आरजुओं की देवी थी, यह समझना मुश्किल था कि कौन तलबगार है और कौन उस तलब को पूरा करने वाला। एक तरफ़ पूरी-पूरी दिलजोई थी, दूसरी तरफ़ पूरी-पूरी रजा। तब तकदीर ने पांसा पलटा। गुलो-बुलबुल में सुबह की हवा की शरारतें शुरू हुईं। शाम का वक्त था। आसमान पर लाली छाई हुई थी। नईमा उमंग और ताजुगी और शौक से उमड़ी हुई कोठे पर आयी। शफ़क़ की तरह उसका चेहरा भी उस वक्त खिला हुआ था। ऐन उसी वक्त वहां का सूबेदारनासिर अपने हवा की तरह तेज घोड़े पर सवार उधर से निकला, ऊपर निगाह उठी तो हुस्न का करिश्मा नजर आया कि जैसे चांद शफ़क़ के हौज में नहाकर निकला है। तेज़ निगाह जिगर के पार हुई। कलेजा थामकर रह गया। अपने महल को लौटा, अधमरा, टूटा हुआ। मुसाहबों ने हकीम की तलाश की और तब राह-रास्म पैदा हुई। फिर इश्क की दुश्वार मंजिलों तय हुईं। वफ़ा ओर हया ने बहुत बेरुखी दिखायी। मगर मुहब्बत के शिकवे और इश्क की कुफ़्रतोड़नेवाली धमकियां आखिर जीतीं। अस्मत का खलाना लुट गया।

उसके बाद वही हुआ जो हो सकता था। एक तरफ से बदगुमानी, दूसरी तरफ से बनावट और मक्कारी। मनमुटाव की नौबत आयी, फिर एक-दूसरे के दिल को चोट पहुँचाना शुरू हुआ। यहां तक कि दिलों में मैल पड़ गयी। एकदूसरे के खून के प्यासे हो गये। नईमा ने नासिर की मुहब्बत की गोद में पनाह ली और आज एक महीने की बेचैन इन्तजारी के बाद हैदर अपने जज्बात के साथ नंगी तलवार पहलू में छिपाये अपने जिगर के भड़कते हुए शोलों को नईमा के खून से बुझाने के लिए आया हुआ है।

आधी रात का वक्त था और अंधेरी रात थी। जिस तरह आसमान के हरमसरा में हुसन के सितारे जगमगा रहे थे, उसी तरह नासिर का हरम भी हुस्न के दीपों से रोशन था। नासिर एक हफ्ते से किसी मोर्चे पर गया हुआ है इसलिए दरबान गाफ़िल हैं। उन्होंने हैदर को देखा मगर उनके मुंह सोने-चांदी से बन्द थे। ख्वाजासराओं की निगाह पड़ी लेकिन वह पहले ही एहसान के बोझ से दब चुके थे। खवासों और कनीजों ने भी मतलब-भरी निगाहों से उसका स्वागत किया और हैदर बदला लेने के नशे में गुनहगार नईमा के सोने के कमरे में जा पहुँचा, जहाँ की हवा संदल और गुलाब से बसी हुई थी।

कमरे में एक मोमी चिराग़ जल रहा था और उसी की भेद-भरी रोशनी में आराम और तकल्लुफ़ की सजावटें नज़र आती थीं जो सतीत्व जैसी अनमोल चीज़ के बदले में खरीदी गयी थीं। वहीं वैभव और ऐश्वर्य की गोद में लेटी हुई नईमा सो रही थी।

हैदर ने एक बार नईया को आँख भर देखा। वही मोहिनी सूरत थी, वही आकर्षक जावण्य और वही इच्छाओं को जगानेवाली ताजगी। वही युवती जिसे एक बार देखकर भूलना असम्भव था।

हाँ, वही नईमा थी, वही गोरी बाँहें जो कभी उसके गले का हार बनती थीं, वही कस्तूरी में बसे हुए बाल जो कभी कन्धों पर लहराते थे, वही फूल जैसे गाल जो उसकी प्रेम-भरी आंखों के सामने लाल हो जाते थे। इन्हीं गोरी-गोरी कलाईयों में उसने अभी-अभी खिली हुई कलियों के कंगन पहनाये थे और जिन्हें वह वफा के कंगन समझ था। इसकी गले में उसने फूलों के हार सजाये थे और उन्हें प्रेम का हार खयाल किया था। लेकिन उसे क्या मालूम था कि फूलों के हार और कलियों के कंगन के साथ वफा के कंगन और प्रेम के हार भी मुरझा जायेंगे।

हां, यह वही गुलाब के-से होंठ हैं जो कभी उसकी मुहब्बत में फूल की तरह खिल जाते थे जिनसे मुहब्बत की सुहानी महक उड़ती थी और यह वही सीना है जिसमें कभी उसकी मुहब्बत और वफ़ा का जलवा था, जो कभी उसके मुहब्बत का घर था।

मगर जिस फूल में दिल की महक थी, उसमें दगा के कांटे हैं।

3.

हैदर ने तेज कटार पहलू से निकाली और दबे पांव नईमा की तरफ़ आया लेकिन उसके हाथ न उठ सके। जिसके साथ उम्र-भर जिन्दगी की सैर की उसकी गर्दन पर छुरी चलाते हुए उसका हृदय द्रवित हो गया। उसकी आंखें भीग गयीं, दिल में हसरत-भरी यादगारों का एक तूफ़ान-सा तक्रदीर की क्या खूबी है कि जिस प्रेम का आरम्भ ऐसा खुशी से भरपूर हो उसका अन्त इतना पीड़ाजनक हो। उसके पैर थरथराने लगे। लेकिन स्वाभिमान ने ललकारा, दीवार पर लटकी हुई तस्वीरों उसकी इस कमजोरी पर मुस्करायीं।

मगर कमजोर इरादा हमेशा सवाल और अलील की आड़ लिया करता है। हैदर के दिल में खयाल पैदा हुआ, क्या इस मुहब्बत के बाब्र को उजाड़ने का अलज़ाम मेरे ऊपर नहीं है? जिस वक्त बदगुमानियों के अंखुए निकले, अगर मैंने तानों और धिक्कारों के बजाय मुहब्बत से काम लिया होता तो आज यह दिन न आता। मेरे जुल्मों ने मुहब्बत और वफ़ा की जड़ काटी। औरत कमजोर होती है, किसी सहारे के बग़ैर नहीं रह सकती। जिस औरत ने मुहब्बत के मज़े उठाये हों, और उलफ़ात की नाजबरदारियां देखी हों वह तानों और जिल्लतों की आंच क्या सह सकती है? लेकिन फिर औरत ने उकसाया, कि जैसे वह धुंधला चिराग़ भी उसकी कमजोरियों पर हंसने लगा।

स्वाभिमान और तर्क में सवाल-जवाब हो रहा था कि अचानक नईमा ने करवट बदली ओर अंगड़ाई ली। हैदर ने फौरन तलवार उठायी, जान के खतरे में आगा-पीछा कहाँ? दिल ने फैसला कर लिया, तलवार अपना काम करनेवाली ही थी कि नईमा ने आंखें खोल दीं। मौत की कटार सिर पर नजर आयी। वह घबराकर उठ बैठी। हैदर को देखा, परिस्थिति समझ में आ गयी। बोली-हैदर!

हैदर ने अपनी झेंप को गुस्से के पर्दे में छिपाकर कहा- हां, मैं हूँ हैदर!

नईमा सिर झुकाकर हसरत-भरे ढंग से बोली—तुम्हारे हाथों में यह चमकती हुई तलवार देखकर मेरा कलेजा थरथरा रहा है। तुम्हीं ने मुझे नाज़बरदारियों का आदी बना दिया है। ज़रा देर के लिए इस कटार को मेरी आँखों से छिपा लो। मैं जानती हूँ कि तुम मेरे खून के प्यासे हो, लेकिन मुझे न मालूम था कि तुम इतने बेरहम और संगदिल हो। मैंने तुमसे दगा की है, तुम्हारी खतावार हूँ लेकिन हैदर, यक़ीन मानो, अगर मुझे चन्द आखिरी बातें कहने का मौक़ा न मिलता तो शायद मेरी रूह को दोज़ख में भी यही आरजू रहती। मौत की सज़ा से पहले आपने घरवालों से आखिरी मुलाक़ात की इजाज़त होती है। क्या तुम मेरे लिए इतनी रियायत के भी रवादार न थे? माना कि अब तुम मेरे लिए कोई नहीं हो मगर किसी वक़्त थे और तुम चाहे अपने दिल में समझते हो कि मैं सब कुछ भूल गयी लेकिन मैं मुहब्बत को इतनी जल्दी भूल जाने वाली नहीं हूँ। अपने ही दिल से फैसला करो। तुम मेरी बेवफ़ाइयां चाहे भून जाओ लेकिन मेरी मुहब्बत की दिल तोड़नेवालीयादगारें नहीं मिटा सकते। मेरी आखिरी बातें सुन लो और इस नापाक जिन्दगी का हिस्सा पाक करो। मैं साफ़-साफ़ कहती हूँ इस आखिरी वक़्त में क्यों डरूँ। मेरी कुछ दुर्गत हुई है उसके जिम्मेदार तुम हो। नाराज न होना। अगर तुम्हारा ख़याल है कि मैं यहां फूलों की सेज पर सोती हूँ तो वह ग़लत है। मैंने औरत की शर्म खोकर उसकी क़द्र जानी है। मैं हसीन हूँ, नाजुक हूँ; दुनिया की नेमतें मेरे लिए हाज़िर हैं, नासिर मेरी इच्छा का गुलाम है लेकिन मेरे दिल से यह खयाल कभी दूर नहीं होता कि वह सिर्फ़ मेरे हुस्न और अदा का बन्दा है। मेरी इज्जत उसके दिल में कभी हो भी नहीं सकती। क्या तुम जानते हो कि यहां खवासों और दूसरी बीवियों के मतलब-भरे इशारे मेरे खून और जिगर को

नहीं लजाते? ओफ़, मैंने अस्मत खोकर अस्मत की क़द्र जानी है लेकिन मैं कह चुकी हूँ और फिर कहती हूँ, कि इसके तुम जिम्मेदार हो।

हैदर ने पहलू बदलकर पूछा—क्योंकर?

नईमा ने उसी अन्दाज से जवाब दिया—तुमने बीवी बनाकर नहीं, माशूक बनाकर रक्खा। तुमने मुझे नाजुबरदारियों का आदी बनाया लेकिन फ़र्ज का सबक नहीं पढ़ाया। तुमने कभी न अपनी बातों से, न कामों से मुझे यह खयाल करने का मौक़ा दिया कि इस मुहब्बत की बुनियाद फ़र्ज पर है, तुमने मुझे हमेशाहुसन और मस्तिख़ों के तिलिस्म में फंसाए रक्खा और मुझे ख्वाहिशों का गुलाम बना दिया। किसी किशती पर अगर फ़र्ज का मल्लाह न हो तो फिर उसे दरिया में डूब जाने के सिवा और कोई चारा नहीं। लेकिन अब बातों से क्या हासिल, अब तो तुम्हारी ग़ैरत की कटार मेरे खून की प्यासी है ओर यह लो मेरा सिर उसके सामने झुका हुआ है। हाँ, मेरी एक आखिरी तमन्ना है, अगर तुम्हारी इजाजत पाऊँ तो कहूँ।

यह कहते-कहते नईमा की आंखों में आंसुओं की बाढ़ आ गई और हैदर की ग़ैरत उसके सामने ठहर न सकी। उदास स्वर में बोला—क्या कहती हो?

नईमा ने कहा—अच्छा इजाज़त दी है तो इनकार न करना। मुझे एक बार फिर उन अच्छे दिनों की याद ताज़ा कर लेने दो जब मौत की कटार नहीं, मुहब्बत के तीर जिगर को छेदा करते थे, एक बार फिर मुझे अपनी मुहब्बत की बांहों में ले लो। मेरी आखिरी बिनती है, एक बार फिर अपने हाथों को मेरी गर्दन का हार बना दो। भूल जाओ कि मैंने तुम्हारे साथ दगा की है, भूल जाओ कि यह जिस्म गन्दा और नापाक है, मुझे मुहब्बत से गले लगा लो और यह मुझे दे दो। तुम्हारे हाथों में यह अच्छी नहीं मालूम होती। तुम्हारे हाथ मेरे ऊपर न उठेंगे। देखो कि एक कमजोर औरत किस तरह ग़ैरत की कटार को अपने जिगर में रख लेती है।

यह कहकर नईमा ने हैदर के कमजोर हाथों से वह चमकती हुई तलवार छीन ली और उसके सीने से लिपट गयी। हैदर झिझका लेकिन वह सिर्फ ऊपरी झिझक थी। अभिमान और प्रतिशोध-भावना की दीवार टूट गयी। दोनों आलिंगन पाश में बंध गए और दोनों की आंखें उमड़ आयीं।

नईमा के चेहरे पर एक सुहानी, प्राणदायिनी मुस्कराहट दिखायी दी और मतवाली आंखों में खुशी की लाली झलकने लगी। बोली-आज कैसा मुबारक दिन है कि दिल की सब आरजुएंपूरीद होती हैं लेकिन यह कम्बख्त आरजुएं कभी पूरी नहीं होतीं। इस सीने से लिपटकर मुहब्बत की शराब के बगैर नहीं रहा जाता। तुमने मुझे कितनी बार प्रेम के प्याले हैं। उस सुराही और उस प्याले की याद नहीं भूलती। आज एक बार फिर उल्फत की शराब के दौर चलने दो, मौत की शराब से पहले उल्फत की शराब पिला दो। एक बार फिर मेरे हाथों से प्याला ले लो। मेरी तरफ़ उन्हीं प्यार की निगाहों से देखकर, जो कभी आंखों से न उतरती थीं, पी जाओ। मरती हूं तो खुशी से मरूं।

नईमा ने अगर सतीत्व खोकर सतीत्व का मूल्य जाना था, तो हैदर ने भी प्रेम खोकर प्रेम का मूल्य जाना था। उस पर इस समय एक मदहोशी छायी हुई थी। लज्जा और याचना और झुका हुआ सिर, यह गुस्से और प्रतिशोध के जानी दुश्मन हैं और एक गौरत के नाजुक हाथों में तो उनकी काट तेज तलवार को मात कर देती है। अंगूरी शराब के दौर चले और हैदर ने मस्त होकर प्याले पर प्याले खाली करने शुरू किये। उसके जी में बार-बार आता था कि नईमा के पैरों पर सिर रख दूं और उस उजड़े हुए आशियाने को आदाब कर दूं। फिर मस्ती की कैफ़ियत पैदा हुई और अपनी बातों पर और अपने कामों पर उसे अख़्तियार न रहा। वह रोया, गिड़गिड़ाया, मिन्नतें कीं, यहां तक कि उन दगा के प्यालों ने उसका सिर झुका दिया।

5.

हैदर कई घण्टे तक बेसुध पड़ा रहा। वह चौंका तो रात बहुत कम बाक़ी रह गयी थी। उसने उठना चाहा लेकिन उसके हाथ-पैर रेशम की डोरियों से मजबूत बंधे हुए थे। उसने भौचक होकर इधर-उधर देखा। नईमा उसके सामने वही तेज़ कटार लिये खड़ी थी। उसके चेहरे पर एक क्रांतिलों जैसी मुसकराहट की लाली थी। फ़र्जी माशूक के खूनीपन और खंजरबाजी के तराने वह बहुत बार गा चुका था मगर इस वक़्त उसे इस नज्जारे से शायराना लुत्फ़ उठाने का जीवट न था। जान का खतरा, नशे के लिए तुर्शी से ज्यादा क्रांतिल है। घबराकर बोला-नईम!

नईमा ने लहजे में कहा-हां, मैं हूं नईमा।

हैदर गुस्से से बोला-क्या फिर दगा का वार किया?

नईमा ने जवाब दिया-जब वह मर्द जिसे खुदा ने बहादुरी और कूवत का हौसला दिया है, दगा का वार करता है तो उसे मुझसे यह सवाल करने का कोई हक़ नहीं। दगा और फ़रेब औरतों के हथियार हैं क्योंकि औरत कमजोर होती है। लेकिन तुमको मालूम हो गया कि औरत के नाजुक हाथों में ये हथियार कैसी काट करते हैं। यह देखो-यह आबदार शमशीर है, जिसे तुम ग़ैरत की कटार कहते थे। अब वह ग़ैरत की कटार मेरे जिगर में नहीं, तुम्हारे जिगर में चुभेगी। हैदर, इन्सान थोड़ा खोकर बहुत कुछ सीखता है। तुमने इज्जत और आबरू सब कुछ खोकर भी कुछ न सीखा। तुम मर्द थे। नासिर से तुम्हारी होड़ थी। तुम्हें उसके मुक़ाबिले में अपनी तलवार के जौहर दिखाना था लेकिन तुमने निराला ढंग अख्तियार किया और एक बेकस और पर दगा का वार करना चाहा और अब तुम उसी औरत के समाने बिना हाथ-पैर के पड़े हुए हो। तुम्हारी जान बिलकुल मेरी मुट्ठी में है। मैं एक लहमे में उसे मसल सकती हूं और अगर मैं ऐसा करूं तो तुम्हें मेरा शुक्रगुज़ार होना चाहिये क्योंकि एक मर्द के लिए ग़ैरत की मौत बेग़ैरती की जिन्दगी से अच्छी है। लेकिन मैं तुम्हारे ऊपर रहम करूंगी: मैं तुम्हारे साथ फ़ैयाजी का बर्ताव

करूंगी क्योंकि तुम ग़ैरत की मौत पाने के हक़दार नहीं हो। जो ग़ैरत चन्द मीठी बातों और एक प्याला शराब के हाथों बिक जाय वह असली ग़ैरत नहीं है। हैदर, तुम कितने बेवकूफ़ हो, क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि जिस औरत ने अपनी अस्मत जैसी अनमोल चीज़ देकर यह ऐश ओर तकल्लुफ़ पाया वह जिन्दा रहकर इन नेमतों का सुख जूटना चाहती है। जब तुम सब कुछ खोकर जिन्दगी से तंग नहीं हो तो मैं कुछ पाकर क्यों मौत की ख्वाहिश करूँ? अब रात बहुत कम रह गयी है। यहां से जान लेकर भागो वरना मेरी सिफ़ारिश भी तुम्हें नासिर के गुस्से की आग से रन बचा सकेगी। तुम्हारी यह ग़ैरत की कटार मेरे क़ब्जे में रहेगी और तुम्हें याद दिलाती रहेगी कि तुमने इज्जत के साथ ग़ैरत भी खो दी।

-‘जमाना’, जुलाई, 1995

घमण्ड का पुतला

शाम हो गयी थी। मैं सरयू नदी के किनारे अपने कैम्प में बैठा हुआ नदी के मजे ले रहा था कि मेरे फुटबाल ने दबे पांव पास आकर मुझे सलाम किया कि जैसे वह मुझसे कुछ कहना चाहता है।

फुटबाल के नाम से जिस प्राणी का जिक्र किया गया वह मेरा अर्दली था। उसे सिर्फ एक नजर देखने से यक्रीन हो जाता था कि यह नाम उसके लिए पूरी तरह उचित है। वह सिर से पैर तक आदमी की शकल में एक गेंद था। लम्बाई-चौड़ाई बराबर। उसका भारी-भरकम पेट, जिसने उस दायरे के बनाने में खास हिस्सा लिया था, एक लम्बे कमरबन्द में लिपटा रहता था, शायद इसलिए कि वह इन्तहा से आगे न बढ़ जाए। जिस वक्त वह तेजी से चलता था बल्कि यों कहिए जुढ़कता था तो साफ़ मालूम होता था कि कोई फुटबाल ठोकर खाकर लुढ़कता चला आता है। मैंने उसकी तरफ देखकर पूछ-क्या कहते हो?

इस पर फुटबाल ने ऐसी रोनी सूरत बनायी कि जैसे कहीं से पिटकर आया है और बोला-हुजूर, अभी तक यहां रसद का कोई इन्तजाम नहीं हुआ। जमींदार साहब कहते हैं कि मैं किसी का नौकर नहीं हूँ।

मैंने इस निगाह से देखा कि जैसे मैं और ज्यादा नहीं सुनना चाहता। यह असम्भव था कि मलिस्ट्रेट की शान में जमींदार से ऐसी गुस्ताखी होती। यह मेरे हाकिमाना गुस्से को भड़काने की एक बदतमीज़ कोशिश थी। मैंने पूछा, ज़मींदार कौन है?

फुटबाल की बाँछें खिल गयीं, बोला-क्या कहूँ, कुंअर सज्जनसिंह। हुजूर, बड़ा ढीठ आदमी है। रात आयी है और अभी तक हुजूर के सलाम को भी नहीं आया। घोड़ों के सामने न घास है न दाना। लश्कर के सब आदमी भूखे बैठे हुए हैं। मिट्टी का एक बर्तन भी नहीं भेजा।

मुझे जमींदारों से रात-दिन साबक़ा रहता था मगर यह शिकायत कभी सुनने में नहीं आयी थी। इसके विपरीत वह मेरी खातिर-तवाजों में ऐसी जाँफ़िशानी से काम लेते थे जो उनके स्वाभिमान के लिए ठीक न थी। उसमें दिल खोलकर आतिथ्य-सत्कार करने का भाव तनिक भी न होता था। न उसमें शिष्टाचार था, न वैभव का प्रदर्शन जो ऐब है। इसके बजाय वहाँ बेजा रसूख की फ़िक्र और स्वार्थ की हवस साफ़ दिखायी देती थी और इस रसूख बनाने की कीमत काव्योचित अतिशयोक्ति के साथ गरीबों से वसूल की जाती थी, जिनका बेकसी के सिवा और कोई हाथ पकड़ने वाला नहीं। उनके बात करने के ढंग में वह मुलामियत और आजिजी बरती जाती थी जिसका स्वाभिमान से बैर है और अक्सर ऐसे मौके आते थे, जब इन खातिरदारियों से तंग होकर दिल चाहता था कि काश इन खुशामदी आदमियों की सूरत न देखनी पड़ती।

मगर आज फुटबाल की ज़बान से यह कैफियत सुनकर मेरी जो हालत हुई उसने साबित कर दिया कि रोज-रोज की खातिरदारियों और मीठी-मीठी बातों ने मुझ पर असर किये बिना नहीं छोड़ा था। मैं यह हुक्म देनेवाला ही था कि कुंअर सज्जनसिंह को हाजिर करो कि एकाएक मुझे खयाल आया कि इन मुफ़्तख़ोर चपरासियों के कहने पर एक प्रतिष्ठित आदमी को अपमानित करना न्याय नहीं है। मैंने अर्दली से कहा-बनियों के पास जाओ, नक़द दाम देकर चीजें लाओ और याद रखो कि मेरे पास कोई शिकायत न आये।

अर्दली दिल में मुझे कोसता हुआ चला गया।

मगर मेरे आश्चर्य की कोई सीमा न रही, जब वहाँ एक हफ़्ते तक रहने पर भी कुंअर साहब से मेरी भेंट न हुई। अपने आदमियों और लश्करवालों की ज़बान से कुंअर साहब की ढिठाई, घमण्ड और हेकड़ी की कहानियाँ रोलु सुना करता। और मेरे दुनिया देखेहुए पेशकार ने ऐसे अतिथि-सत्कार-शून्य गांव में पड़ाव डालने के लिए मुझे कई बार इशारों से समझाने

बुझाने की कोशिश की। गालिबन मैं पहला आदमी था जिससे यह भूल हुई थी और अगर मैंने जिले के नक्शे के बदले लश्करवालों से अपने दौरे का प्रोग्राम बनाने में मदद ली होती तो शायद इस अप्रिय अनुभव की नौबत न आती। लेकिन कुछ अजब बात थी कि कुंअर साहब को बुरा-भला कहना मुझ पर उल्टा असर डालता था। यहाँ तक कि मुझे उस आदमी से मुलामात करने की इच्छा पैदा हुई जो सर्वशक्तिमान् आफ़सरोँ से इतना ज्यादा अलग-थलग रह सकता है।

2.

सूबह का वक्त था, मैं गढ़ी में गढ़ी में गया। नीचे सरयू नदी लहरें मार रही थी। उस पार साखू का जंगल था। मीलों तक बादामी रेत, उस पर खरबूज और तरबूज की क्यारियाँ थीं। पीले-पीले फूलों-से लहराती हुई बगुलों और मुर्गाबियों के गोल-के-गोल बैठे हुए थे! सूर्य देवता ने जंगलों से सिर निकाला, लहरें जगमगायीं, पानी में तारे निकले। बड़ा सुहाना, आत्मिक उल्लास देनेवाला दृश्य था।

मैंने खबर करवायी और कुंअर साहब के दीवानखाने में दाखिल हुआ लम्बा-चौड़ा कमरा था। फर्श बिछा हुआ था। सामने मसनद पर एक बहुत लम्बा-तड़ंगा आदमी बैठा था। सर के बाल मुड़े हुए, गले में रुद्राक्ष की माला, लाल-लाल, ऊंचा माथा-पुरुषोचित अभिमान की इससे अच्छी तस्वीर नहीं हो सकती। चेहरे से रोबदाब बरसता था।

कुअर साहब ने मेरे सलाम को इस अन्दाज से लिया कि जैसे वह इसके आदी हैं। मसनद से उठकर उन्होंने बहुत बड़प्पन के ढंग से मेरी अगवानी की, खैरियत पूछी, और इस तकलीफ़ के लिए मेरा शुक्रिया अदा रिते के बाद इतर और पान से मेरी तवाजो की। तब वह मुझे अपनी उस गढ़ी की सैर कराने चले जिसने किसी ज़माने में ज़रूररआसफुद्दौला को ज़िच किया होगा मगर इस वक्त बहुत टूटी-फोटी हालत में थी। यहां के एक-एक रोड़े पर कुंअर साहब को नाज़ था। उनके खानदानी बड़प्पन ओर रोबदाब का जिक्र उनकी ज़बान से सुनकर विश्वास न करना असम्भव था। बयान करने का ढंग यक़ीन को मजबूर करता था और वे उन कहानियों के सिर्फ़ पासबान ही न थे बल्कि वह उनके ईमान का हिस्सा थीं। और जहां तक उनकी शक्ति में था, उन्होंने अपनी आन निभाने में कभी कसर नहीं की।

कुअर सज्जनसिंह खानदानी रईस थे। उनकी वंश-परंपरा यहां-वहां टूटती हुई अन्त में किसी महात्मा ऋषि से जाकर मिल जाती थी। उन्हें तपस्या और भक्ति और योग का कोई दावा न था लेकिन इसका गर्व उन्हें अवश्य था

कि वे एक ऋषि की सन्तान हैं। पुरखों के जंगली कारनामे भी उनके लिए गर्व का कुछ कम कारण न थे। इतिहास में उनका कहीं जिक्र न हो मगकर खानदानी भाट ने उन्हें अमर बनाने में कोई कसर न रखी थी और अगर शब्दों में कुछ ताकत है तो यह गढ़ी रोहतास या कालिंजर के किलों से आगे बढ़ी हुई थी। कम-से-कम प्राचीनता और बर्बादी के बाह्य लक्षणों में तो उसकी मिसाल मुश्किल से मिल सकती थी, क्योंकि पुराने जमाने में चाहे उसने मुहासरो और सुरंगों को हेच समझा हो लेकिन वक्त वह चींटियों और दीमकों के हमलों का भी सामना न कर सकती थी।

कुंअर सज्जनसिंह से मेरी भेंट बहुत संक्षिप्त थी लेकिन इस दिलचस्प आदमी ने मुझे हमेशा के लिए अपना भक्त बना लिया। बड़ा समझदार, मामले को समझनेवाला, दूरदर्शी आदमी था। आखिर मुझे उसका बिन पैसों का गुलाम बनना था।

3.

बरसात में सरयू नदी इस जोर-शोर से चढ़ी कि हज़ारों गांव बरबाद हो गए, बड़े-बड़े तनावरदरख्त तिनकों की तरह बहते चले जाते थे। चारपाइयों पर सोते हुए बच्चे-औरतें, खूंटों पर बंधे हुए गाय और बैल उसकी गरजती हुई लहरों में समा गए। खेतों में नाच चलती थी।

शहर में उड़ती हुई खबरें पहुंचीं। सहायता के प्रस्ताव पास हुए। सैकड़ों ने सहानुभूति और शौक के अरजेण्ट तार जिल के बड़े साहब की सेवा में भेजे। टाउनहाल में क्रौमी हमदर्दी की पुरशोर सदाएं उठीं और उस हंगामे में बाढ़-पीड़ितों की दर्दभरी पुकारें दब गयीं।

सरकार के कानों में फरियाद पहुँची। एक जांच कमीशन तैयार किया गया। जमींदारों को हुक्म हुआ कि वे कमीशन के सामने अपने नुकसानों को विस्तार से बतायें और उसके सबूत दें। शिवरामपुर के महाराजा साहब को इस कमीशन का सभापति बनाया गया। जमींदारों में रेल-पेल शुरू हुई। नसीब जागे। नुकसान के तखमीन का फैलला करने में काव्य-बुद्धि से काम लेना पड़ा। सुबह से शाम तक कमीशन के सामने एक जमघट रहता। आनरेबुल महाराजा सहब को सांस लेने की फुरसत न थी दलील और शाहदत का काम बात बनाने और खुशामद से लिया जाता था। महीनों यही कैफ़ियत रही। नदी किनारे के सभी जमींदार अपने नुकसान की फरियादें पेश कर गए, अगर कमीशन से किसी को कोई फायदा नहीं पहुँचा तो वह कुंअर सज्जनसिंह थे। उनके सारे मौजे सरयू के किनारे पर थे और सब तबाह हो गए थे, गढ़ी की दीवारें भी उसके हमलों से न बच सकी थीं, मगर उनकी जबान ने खुशामद करना सीखा ही न था और यहां उसके बगैर रसाई मुश्किल थी। चुनांचे वह कमीशन के सामने न आ सके। मियाद खतम होने पर कमीशन ने रिपोर्ट पेश की, बाढ़ में डूबे हुए इलाकों में लगान की आम माफी हो गयी। रिपोर्ट के मुताबिक सिर्फ सज्जनसिंह वह भाग्यशाली जमींदार थे। जिनका कोई नुकसान नहीं हुआ था। कुंअर साहब ने रिपोर्ट सुनी, मगर माथे पर बल

न आया। उनके आसामी गढ़ी के सहन में जमा थे, यह हुक्म सुना तो रोने-धोने लगे। तब कुंअर साहब उठे और बुलन्दआवाजु में बोले-मेरे इलाके में भी माफी है। एक कौड़ी लगान न लिया जाए। मैंने यह वाकया सुना और खुद ब खुद मेरी आंखों से आंसू टपक पड़े बेशक यह वह आदमी है जो हुकूमत और अख्तियार के तूफान में जड़ से उखड़ जाय मगर झुकेगा नहीं।

4.

वह दिन भी याद रहेगा जब अयोध्या में हमारे जादू-सा करनेवाले कवि शंकर को राष्ट्र की ओर से बधाई देने के लिए शानदार जलसा हुआ। हमारा गौरव, हमारा जोशीला शंकर योरोप और अमरीका पर अपने काव्य का जादू करके वापस आया था। अपने कमालों पर घमण्डकरनेवाले योरोप ने उसकी पूजा की थी। उसकी भावनाओं ने ब्राउनिंग और शेली के प्रेमियों को भी अपनी वफ़ा का पाबन्द न रहने दिया। उसकी जीवन-सुधा से योरोप के प्यासे जी उठे। सारे सभ्य संसार ने उसकी कल्पना की उड़ान के आगे सिर झुका दिये। उसने भारत को योरोप की निगाहों में अगर ज्यादा नहीं तो यूनान और रोम के पहलू में बिठा दिया था।

जब तक वह योरोप में रहा, दैनिक अखबारों के पत्रे उसकी चर्चा से भरे रहते थे। यूनिवर्सिटियों और विद्वानों की सभाओं ने उस पर उपाधियों की मूसलाधार वर्षा कर दी। सम्मान का वह पदक जो योरोपवालों का प्यारा सपना और जिन्दा आरजू है, वह पदक हमारे जिन्दादिल शंकर के सीने पर शोभा दे रहा था और उसकी वापसी के बाद उन्हीं राष्ट्रीय भावनाओं के प्रति श्रद्धा प्रकट करने के लिए हिन्दोस्तान के दिल और दिमाग आयोध्या में जमा थे।

इसी अयोध्या की गोद में श्री रामचंद्र खेलते थे और यहीं उन्होंने वाल्मीकि की जादू-भरी लेखनी की प्रशंसा की थी। उसी अयोध्या में हम अपने मिठे कवि शंकर पर अपनी मुहब्बत के फूल चढ़ाने आये थे।

इस राष्ट्रीय कतैव्य में सरकारी हुक्काम भी बड़ी उदारतापूर्वक हमारे साथ सम्मिलित थे। शंकर ने शिमला और दार्जिलिंग के फरिश्तों को भी अयोध्या में खींच लिया था। अयोध्या को बहुत अन्तजार के बाद यह दिन देखना नसीबहुआ।

जिस वक्त शंकर ने उस विराट पण्डाल में पैर रखा, हमारे हृदय राष्ट्रीय गौरव और नशे से मतवाले हो गये। ऐसा महसूस होता था कि हम उस

वक्त किसी अधिक पवित्र, अधिक प्रकाशवान् दुनिया के बसनेवाले हैं। एक क्षण के लिए-अफसोस है कि सिर्फ एक क्षण के लिए-अपनी गिरावट और बर्बादी का खयाल हमारे दिलों से दूर हो गया। जय-जय की आवाजों ने हमें इस तरह मस्त कर दिया जैसे महुअर नाग को मस्त कर देता है।

एड्रेस पढ़ने का गौरव मुझको प्राप्त हुआ था। सारे पण्डाल में खामोशी छाई हुई थी। जिस वक्त मेरी जबान से यह शब्द निकले-ऐ राष्ट्र के नेता! ऐ हमारे आत्मिक गुरु! हम सच्ची मुहब्बत से तुम्हें बधाई देते हैं और सच्ची श्रद्धा से तुम्हारे पैरों पर सिर झुकाते हैं...यकायक मेरी निगाह उठी और मैंने एक हृष्ट-पुष्ट हैकल आदमी को ताल्लुकेदारों की कतार से उठकर बाहर जाते देखा। यह कुंअर सज्जन सिंह थे।

मुझे कुंअर साहब की यह बेमौक़ा हरकत, जिसे अशिष्टता समझने में कोई बाधा नहीं है, बुरी मालूम हुई। हजारों आंखें उनकी तरफ हैरत से उठीं।

जलसे के खत्म होते ही मैंने पहला काम जो किया वह कुंअर साहब से इस चीज के बारे में जवाब तलब करना था।

मैंने पूछा-क्यों साहब आपके पास इस बेमौक़ा हरकत का क्या जवाब है?

सज्जनसिंह ने गम्भीरता से जवाब दिया-आप सुनना चाहें तो जवाब हूँ।

“शौक से फरमाइये।”

“अच्छा तो सुनिये। मैं शंकर की कविता का प्रेमी हूँ। शंकर की इज्जत करता हूँ, शंकर पर गर्व करता हूँ, शंकर को अपने और अपनी कौम के ऊपर एहसान करनेवाला समझता हूँ मगर उसके साथ ही उन्हें अपना आध्यात्मिक गुरु मानने या उनके चरणों में सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं हूँ।”

मैं आश्चर्य से उसका मुंह ताकता रह गया। यह आदमी नहीं, घमण्ड का पुतला हैं देखें यह सिर कभी झुकता या नहीं।

5.

पूरनमासी का पूरा चांद सरयू के सुनहरे फर्श पर नाचता था और लहरें खुशी से गलु मिल-मिलकर गाती थीं। फागुन का महीना था, पेड़ों में कोपलें निकली थीं और कोयल कूकने लगी थी।

मैं अपना दौरा करके सदर लौटता था। रास्ते में कुंअर सज्जनसिंह से मिलने का चाव मुझे उनके घर तक ले गया, जहां अब मैं बड़ी बेतकल्लुफी से जाता-आता था।

मैं शाम के वक्त नदी की सैर को चला। वह प्राणदायिनी हवा, वह उड़ती हुई लहरें, वह गहरी निस्तबधता-सारा दृश्य एक आकर्षक सुहाना सपना था। चांद के चमकते हुए गीत से जिस तरह लहरें झूम रही थीं, उसी तरह मीठी चिन्ताओं से दिल उमड़ा आता था।

मुझे ऊंचे कगार पर एक पेड़ के नीचे कुछ रोशनी दिखायी दी। मैं ऊपर चढ़ा। वहां बरगद की घनी छाया में धूनी जल रही थी। उसके सामने एक साधू पैर फैलाये बरगद की एक मोटी जटा के सहारे लेटे हुए थे। उनका चमकता हुआ चेहरा आग की चमक को लजाता था। नीले तालाब में कमल खिला हुआ था।

उनके पैरों के पास एक दूसरा आदमी बैठा हुआ था। उसकी पीठ मेरी तरफ थी। वह उस साधू के पैरों पर अपना सिर रखे हुए था। पैरों को चूमता था और आंखों से लगता था। साधू अपने दोनों हाथ उसके सिर पर रखे हुए थे कि जैसे वासना धैर्य और संतोष के आंचल में आश्रय ढूंढ़ रही हो। भोला लड़का मां-बाप की गोद में आ बैठा था।

एकाएक वह झुका हुआ सर उठा और मेरी निगाह उसके चेहरे पर पड़ी। मुझे सकता-सा हो गया। यह कुंअर सज्जनसिंह थे। वह सर जो झुकना न जानता था, इस वक्त जमीन छू रहा था।

वह माथा जो एक ऊंचे मंसबदार के सामने न झुका, जो एक प्रतानी वैभवशाली महाराज के सामने न झुका, जो एक बड़े देशप्रेमी कवि और

दार्शनिक के सामने न झूका, इस वक्त एक साधु के क्रदमों पर गिरा हुआ था। घमण्ड, वैराग्य के सामने सिर झुकाये खड़ा था।

मेरे दिल में इस दृश्य से भक्ति का एक आवेग पैदा हुआ। आंखों के सामने से एक परदा-सा हटा और कुंअर सज्जन सिंह का आत्मिक स्तर दिखायी दिया। मैं कुंअर साहब की तरफ से लिपट गया और बोला-मेरे दोस्त, मैं आज तक तुम्हारी आत्मा के बड़प्पन से बिल्कुल बेखबर था। आज तुमने मेरे हृदय पर उसको अंकित कर दिया कि वैभव और प्रताप, कमाल और शोहरत यह सब घटिया चीजें हैं, भौतिक चीजें हैं। वासनाओं में लिपटे हुए लोग इस योग्य नहीं कि हम उनके सामने भक्ति से सिर झुकायें, वैराग्य और परमात्मा से दिल लगाना ही वे महान् गुण हैं जिनकी ड्यौढ़ी पर बड़े-बड़े वैभवशाली और प्रतापी लोगों के सिर भी झुक जाते हैं। यही वह ताक़त है जो वैभव और प्रताप को, घमण्ड की शराब के मतवालों को और जड़ाऊ मुकुट को अपने पैरों पर गिरा सकती है। ऐ तपस्या के एकान्त में बैठनेवाली आत्माओ! तुम धन्य हो कि घमण्ड के पुतले भी पैरों की धूल को माथे पर चढ़ाते हैं।

कुंअर सज्जनसिंह ने मुझे छाती से लगाकर कहा-मिस्टर वागले, आज आपने मुझे सच्चे गर्व का रूप दिखा दिया और मैं कह सकता हूँ कि सच्चा गर्व सच्ची प्रार्थना से कम नहीं। विश्वास मानिये मुझे इस वक्त ऐसा मालूम होता है कि गर्व में भी आत्मिकता को पाया जा सकता है। आज मेरे सिर में गर्व का जो नशा है, वह कभी नहीं था।

-‘ज़माना’, अगस्त, 1996

विजय

शहज़ादा मसरूर की शादी मलकामखमूर से हुई और दोनों आराम से ज़िन्दगी बसर करने लगे। मसरूर ढोर चराता, खेत जोतता, मखमूर खाना पकाती और चरखा चलाती। दोनों तालाब के किनारे बैठे हुए मछलियों का तैरना देखते, लहरों से खेलते, बगीचे में जाकर चिड़ियों के चहचहे सुनते और फूलों के हार बनाते। न कोई फिक्र थी, न कोई चिन्ता थी।

लेकिन बहुत दिन न गुज़रने पाये थे उनके जीवन में एक परिवर्तन आया। दरबार के सदस्यों में बुलहवसख़ाँ नाम का एक फ़रसादी आदमी था। शाह मसरूर ने उसे नज़र बन्द कर रखा था। वह धीरे-धीरे मलकामखमूर के मिज़ाज में इतना दाखिल हो गया कि मलका उसके मशविरे के बग़ैर कोई काम न करती। उसने मलका के लिए एक हवाई जहाज़ बनाया जो महज़ इशारे से चलता था। एक सेकेण्ड में हज़ारों मील रोज़ जाता और देखते-देखते ऊपर की दुनिया की खबर लाता। मलका उस जहाज़ पर बैठकर योरोप और अमरीका की सैर करती। बुलहवस उससे कहता, साम्राज्य को फैलाना बादशाहों का पहला कर्तव्य है। इस लम्बी-चौड़ी दुनिया पर कब्ज़ा कीजिए, व्यापार के साधन बढ़ाइये, छिपी हुई दौलत निकालिये, फौजें खड़ी कीजिए, उनके लिए अस्त्र-शस्त्र जुटाइये। दुनिया हौसलामन्दों के लिए है। उन्हीं के कारनामे, उन्हीं की जीतें याद की जाती हैं। मलका उसकी बातों को खूब कान लगाकर सुनती। उसके दिल में हौसले का जोश उमड़ने लगता। यहां तक कि अपना सरल-सन्तोषी जीवन उसे रूखा-फीका मालूम होने लगा।

मगर शाह मसरूरसन्तोष का पुतला था। उसकी जिन्दी के वह मुबारक लमहे होते थे जब वह एकान्त के कुंज में चुपचाप बैठकर जीवन और उसके कारणों पर विचार करता और उसकी विराटता और आश्चर्यों को देखकर श्रद्धाके भाव से चीख उठता-आह! मेरी हस्ती कितनी नाचीज हैं, उसे मलका के मंसूबों और हौसलों से ज़रा भी दिलचस्पी न थी। नतीजा यह हुआ

कि आपस के प्यार और सच्चाई की जगह सन्देह पैदा हो गये। दरबारियों में गिरोह बनने लगे। जीवन का सन्तोष विदा हो गया। मसरूर को इन सब परेशानियों के लिए जो उसकी सभ्यता के रास्ते में बाधक होती थीं, धीरज न था। वह एक दिन उठा और सल्तनत मलका के सुपुर्द करके एक पहाड़ी इलाके में जा छिपा। सारा दरबार नयी उमंगों से मतवाला हो रहा था। किसी ने बादशाह को रोकने की कोशिश न की। महीनों, वर्षों हो गये, किसी को उनकी खबर न मिली।

लका मखमूर ने एक बड़ी फ़ौज खड़ी की और बुलहवस खां को चढ़ाइयों पर खाना दिया। उसने इलाके पर इलाके और मुल्क पर मुल्क जीतने शुरू किये। सोने-चांदी और हीरे-जवाहरात के अम्बार हवाई जहाजों पर लदकर राजधानी को आगे लगे।

लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि इन रोज-ब-रोज बढ़ती हुई तरक्कियों से मुल्क के अन्दरूनी मामलों में उपद्रव खड़े होने लगे। वह सूबे जो अब हुक्म के ताबेदार थे, बग़ावत के झण्डे करने लगे। कर्णसिंहबुन्देला एक फ़ौज लेकर चढ़ आया। मगर अजब फ़ौज थी, न कोई हरबे-हथियार, न तोपें, सिपाहियां, के हाथों में बंदूक और तीर-तुपक के बजाय बरबर-तम्बूरे और सारंगियां, बेलें, सितार और ताऊस थे। तोपों की धनगरज सदाओं के दले तबले और मृदंग की कुमक थी। बम गोलों की जगह जलतरंग, आर्गन और आर्केस्ट्रा था। मलकामखमूर ने समझा आन की आन में इस फ़ौज को तितर-बितर करती हूँ। लेकिन ज्यों ही उस की फ़ौज कर्णसिंह के मुकाबिले में खाना हुई, लुभावने, आत्मा को शान्ति पहुँचाने वाले स्वरों की वह बाढ़ आयी, मीठे और सुहाने गानों की वह बौछार हुई कि मलका की सेना पत्थर की मरतों की तरह आत्मविस्मृत होकर खड़ी रह गयी। एक क्षण में सिपाहियों की आंखें नशे में डूबने लगीं और वह हथेलियां बजा-बजा कर नाचने लगे, सर हिला-हिलाकर उछलने लगे, फिर सबके सब बेजान लाश की ताह गिर पड़े। और सिर्फ सिपाही ही नहीं, राजधानी में भी जिसके कानों में यह आवाजें गयीं वह बेहोश हो गया। सारे शहर में कोई जिन्दाआदमी नज़र न आता था। ऐसा मालूम होता था कि पत्थर की मूरतों का तिलस्म है। मलका अपने जहाज पर बैठी यह करिश्मा देख रही थी। उसने जहाज़ नीचे उतारा कि देखूँ क्या माजरा है? पर उन आवाजों के कान में पहुँचते ही उसकी भी वही दशा हो गयी। वह हवाई जहाज पर नाचने लगी और बेहोश होकर गिर पड़ी। जब कर्णसिंह शाही महल के करीब जा पहुँचा और गाने बन्द हो गये तो मलका की आंखें खुर्शी

जैसे किसी का नशा टूट जाये। उसने कहा-मैं वही गाने सुनूंगी, वही राग, वही अलाप, वही लुभाने वाले गीत। हाय, वह आवाज़ें कहो गर्यीं। कुछ परवाह नहीं, मेरा राज जाये, पाट जाये, मैं वही राग सुनूंगी।

सिपाहियों का नशा भी टूटा। उन्होंने उसके स्वर मिलाकर कहा-हम वही गीत सुनेंगे, वही प्यारे-प्यारे मोहक राग। बला से हम गिरफ्तार होंगे, गुलामी की बेड़ियां पहनेंगे, आजादी से हाथ धोयेंगे पर वही राग, वही तराने वही तानें, वही धुनें।

3.

सूबेदार लोचनदास को जब कर्णसिंह की विजय का हाल मालूम हुआ तो उसने भी विद्रोह करने की ठानी। अपनी फौज लेकर राजधानी पर चढ़ दौड़ा। मलका ने अबकी जान-तोड़ मुकाबला करने की ठानी। सिपाहियों को खूब ललकारा और उन्हें लोचनदास के मुकाबले में खड़ा किया मगर वाहरीहमलावन फौज! न कहीं सवार, न कहीं प्यादे, न तोप, न बन्दूक, न हरबे, न हथियार, सिपाहियों की जगह सुन्दर नर्तकियों के गोल थे और थियेटर के एक्टर। सवारों की जगह भांडों और बहुरूपियों के गोल। मोर्चों की जगह तीतर और बटेरों के जोड़ छूटे हुए थे तो बन्दूक की जगह सर्कस और बाइसकोप के खेमे पड़े थे। कहीं हीरे-जवाहरात अपनी आब-ताब दिखा रहे थे, कहीं तरह-तरह के चरिन्दों-परिन्दों की नुमाइश खुली हुई थी। मैदान के एक हिस्से में धरती की अजीब-अजीब चीजें, झने और बर्फिस्तानी चोटियां और बर्फ के पहाड़, पेरिस का बाजार, लन्दन का एक्स्चेंज या स्टन की मंडियां, अफ्रीका के जंगल, सहारा के रेगिस्तान, जापान की गुलकारियां, चीन के दरियाई शहर, दक्षिण अमरीका के आदमखोर, क्राफ़ की परियां, लैपलैण्ड के सुमूरपोशइन्सान और ऐसे सेकड़ों विचित्र आकर्षक दृश्य चलतेफिरते दिखायी पड़ते थे। मलका की फौज यह नज्ज़ारा देखते ही बेसुध होगर उसकी तरफ दौड़ी। किसी को सर-पैर का खयाल न रहा। लोगों ने बन्दुकें फेंक दीं, तलवारें और किरचें उतार फेंकीं और बेतहाशा इन दृश्यों के चारों तरफ जमा हो गये। कोई नाचने वालियोंकी मीठी अदाओं ओर नाजुक चलन पर दिल दे बैठा, कोई थियेटर के तमाशों पर रीझा। कुछ लोग तीतरों और बटेरों के जोड़ देखने लगे और सब के सब चित्र-लिखित-से मन्त्रमुग्ध खड़े रह गये। मलका अपने हवाई जहाज पर बैठी कभी थियेटर की तरफ जाती कभी सर्कस की तरफ दौड़ती, यहां तक कि वह भी बेहोश हो गयी।

लोचनदास जब विजय करता हुआ शाही महल में दाखिल हो गया तो मलका की आंखें खुलीं। उसने कहा-हाय, वह तमाशे कहां गये, वह

सुन्दर-सुन्दर दृश्य वह लुभावने दृश्य कहां गायब हो गये, मेरा राज जाये, पाट जाये लेकिन मैं यह सैर जरूर देखूँगी। मुझे आज मालूम हुआ कि ज़िन्दगी में क्या-क्या मज़े हैं!

सिपाही भी जागे। उन्होंने एक स्वर से कहा-हम वही सैर और तमाशे देखेंगे, हमें लड़ाई-भिड़ाई से कुछ मतलब नहीं, हमको आज़ादी की परवाह नहीं, हम गुलाम होकर रहेंगे, पैरों में बेड़ियां पहनेंगे पर इन दिलफरेबियों के बगैर नहीं रह सकेंगे।

4.

मलका मखमूर को अपनी सल्तनत का यह हाल देखकर बहुत दुःख होता। वह सोचती, क्या इसी तरह सारा देश मेरे हाथ से निकल जाएगा? अगर शाह मसरूर ने यों किनारा न कर लिया होता तो सल्तनत की यह हालत कभी न होती। क्या उन्हें यह कैफियतें मालूम न होंगी। यहां से दम-दम की खबरें उनके पास आ जाती हैं मगर जरा भी जुम्बिश नहीं करते। कितने बेरहम हैं। खैर, जो कुछ सर पर आयेगी सह लूंगी पर उनकी मिन्नत न करूंगी।

लेकिन जब वह उन आकर्षक गानों को सुनती और दूश्यों को देखती तो यह दुःखदायी विचार भूल जाते, उसे अपनी जिन्दगी बहुत आनन्द की मालूम होती।

बुलहवस खां ने लिखा-मैं देशमनों से घिर गया हूँ, नफरत अली और कीन खां और ज्वालासिंह ने चारों तरफ से हमला शुरू कर दिया है। तब तक ओर कुमक न आये, मैं मजबूर हूँ। पर मलका की फौज यह सैर और गाने छोड़कर जाने पर राजी न होती थी।

इतने में दो सूबेदसरो ने फिर बगावत की। मिर्जा शमीम और रसराजसिंह दोनों एक होकर राजधानी पर चढ़े। मलका की फौज में अब न लज्जा थी न वीरता, गाने-बजाने और सैर-तमाशे ने उन्हें आरामतलब बना दिया था। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से सज-सजा कर मैदान में निकले। दुश्मन की फौज इन्तजार करती खड़ी थी लेकिन न किसी के पास तलवार थी, न बन्दुक, सिपाहियों के हाथों में फूलों के खुलदस्ते थे, किसी के हाथ में इतर की शीशियां, किसी के हाथ में गुलाब के फ़व्वाहर, कहीं लवण्डर की बोतलें, कहीं मुश्क वगैरह की बहार-सारा मैदान अत्तार की दूकान बना हुआ था। दूसरी तरफ रसराज की सेना थी। उन सिपाहियों के हाथों में सोने के तश्त थे, जरबफ्त के खनपेशों से ढके हुए, किसी में बर्फी और मलाई थी, किसी में कोरमे और कबाब, किसी में खुबानी और अंगूर, कहीं कश्मीर की नेमतें सजी

हुई थीं, कहीं इटली की चटनियों की बहार थी और कहीं पुर्तगाल और फ्रांस की शराबें शीशियों में महक रही थीं।

मलका की फौज यह संजीवनी सुगन्ध सुंघते ही मतवाली हो गयी। लोगों ने हथियार फेंक दिये और इन स्वादिष्ट पदार्थों की ओर दौड़े, कोई हलुवे पर गिरा, और कोई मलाई पर टूटा, किसी ने कोरमे और कबाब पर हाथ बढ़ाये, कोई खुबानी और अंगूर चखने लगा, कोई कश्मीरी मुरब्बों पर लपका, सारी फौज भिखमंगों की तरह हाथ फैलाये यह नेमतें मांगती थी और बेहद चाव से खाती थी। एक-एक कौर के लिए, एक चमचा फीरनी के लिए, शराब के एक प्याले के लिए खुशामदें करते थे, नाकें रगड़ते थे, सिजदे करते थे। यहां तक कि सारी फौज पर एक नशा छा गया, बेदम होकर गिर पड़ी। मलका भी इटली के मरब्बों के सामने दामन फैला-फैलाकर मिन्नतें करती और कहती थी कि सिर्फ-एक लुकमा और एक प्याला दो और मेरा राज लो, पाट लो, मेरा सब कुछ ले लो लेकिन मुझे जी-भर खा-पी लेने दो। यहां तक कि वह भी बेहोश होकर गिर पड़ी।

5.

मलका की हालत बेहद दर्दनाक थी। उसकी सल्तनत का एक छोटा-सा हिस्सा दुश्मनों के हाथ से बचा था। उसे एक दम के लिए भी इस गुलामी से नजात न मिलती। की कर्णसिंह के दरबार में हाजिर होती, कभी मिर्जा शमीम की खुशामद करती, इसके बगैर उसे चैन न आता। हां, जब कभी इस मुसाहिबी और जिल्लत से उसकी तबियत थक जाती तो वह अकेले बैठकर घंटों रोती और चाहती कि जाकर शाह मसरूर को मना लाऊं। उसे यकीन था कि उनके आते ही बागी काफूर हो जायेंगे पर एक ही क्षण में उसकी तबियत बदल जाती। उसे अब किसी हालत पर चैन आता था।

अभी तक बुलहवस खां स्वामिभक्ति में फर्क न आया था। लेकिन जब उसने सल्तनत की यह कमजोरी देखी तो वह भी बगावत कर बैठा। उसकी आजमाई हुई फौज के मुकाबले में मलका की फौज क्या ठहरती, पहले ही हमले में क्रदम उखड़ गये। मलका खुद गिरफ्तार हो गयी। बुलहवस खां ने उसे एक तिलस्माती कैदखाने में बंद कर दिया। सेवक वे स्वामी बनद बैठा।

यह कैदखाना इतना लम्बा-चौड़ा था कि कैदी कितना ही भागने की कोशिश करे, उसकी चहारदीवारी से बाहर नहीं निकल सकता था। वहां सन्तरी और पहरदार न थे लेकिन वहां की हवा में एक खिंचाव था। मलका के पैरों में न बेड़ियां थीं न हाथों में हथकड़ियां लेकिन शरीर का अंग-प्रत्यंग तारों से बंधा हुआ था। वह अपनी इच्छा से हिल भी न सकती थी। वह अब दिन के दिन बैठी हुई जमीन पर मिट्टी के घरोंदे बनाया करती और समझती यह महल है। तरह-तरह के स्वांग भरती और समझती दुनिया मुझे देखकर लड्डू हो जाती है। पत्थर टुकड़ों से अपना शरीर गूंध लेती ओर समझती कि अब हूरे भी मेरे सामने मात हैं। वह दरख्तों से पूछती, मैं कितनी खूबसूरत हूँ। शाखों पर बैठी चिड़ियों से पूछती, हीरे-जवाहरात का ऐसा गुलबन्द तुमने देखा है? मिट्टी की ठीकरों का अम्बार लगाती और आसमान से पूछती, इतनी दौलत तुमने देखी है?

मालूम नहीं, इस हालत में कितने दिन गुजर गये। मिर्जा शमीम, लाचनदास वगैरह हरदम उसे घेरे रहते थे। शायद वह उससे डरते थे। ऐसा न हो, यह शाह मासरूर को कोई संदेशा भेज दे। कैद में भी उस पर भरोसा न था। यहां तक कि मलका की तबियत इस कैद से बेज़ार हो गयी, वह निकल भागने की तदबीरें सोचने लगी।

इसी हालत में एक दिन मलका बैठी सोच रही थी, मैं क्या हो गई ? जो मेरे इशारों के गुलाम थे वह अब मेरे मालिक हैं, मुझे जिस कल चाहते हैं बिठाते हैं, जहां चाहते हैं घुमाते हैं। अफसोस, मैंने शाह मसरूर का कहना न माना, यह उसी की सजा है। काश, एक बार मुझे किसी तरह अस कैद से छुकारा मिल जाता तो मैं चलकर उनके पैरों पर सिर रख देती और कहती, लौंडी की खता माफ कीजिए। मैं खून के आंसु रोती और उन्हें मना लाती और फिर कभी उनके हुक्म से इनकार न करती। मैंने इस नमकहराम बुलहवस खां की बातों में पड़कर उन्हें निर्वासित कर दिया, मेरी अक्ल कहां चली गयी थी। यह सोचते-सोचते मलका रोने लगी कि यकायक उसने देखा, सामने एकखिले हुए मुखड़े वाला गम्भीर पुरुष सादा कपड़े खड़ा है। मलका ने आश्चर्यचकित होकर पूछा-आप कौन हैं? यहां मैंने आपको कभी नहीं देखा।

पुरुष-हां, इस कैदखाने में मैं बहुत कम आता हूँ। मेरा काम है कि जब कैदियों की तबियत यहां से बेज़ार हो तो उन्हें यहां से निकलने में मदद दूँ।

मलका-आपका नाम?

पुरुष-संतोखसिंह।

मलमा-आप मुझे इस कैद से छुटकारा दिला सकते हैं?

संतोख-हां, मेरा तो काम ही यह है, लेकिन मेरी हिदायतों पर चलना पड़ेगा।

मलका-मैं आपके हुक्म से जौ-भर भी इधर-उधर न करूंगी, खुदा के लिए मुझे यहां से जल्द से जल्द ले चलिए, मैं मरते दम तक आपकी शुक्रगुजार रहूंगी।

संतोख- आप कहां चलना चाहती हैं?

मलका-मैं शाह मसरूर के पास जाना चाहती हूँ। आपको मालूम है वह आलकल कहां हैं?

संतोख-हाँ, मालूम है, मैं उनका नौकर हूँ। उन्हीं की तरफ से मैं इस काम पर तैनात हूँ?

मलका-तो खुदा के वास्ते मुझे जल्द ले चलिए, मुझे अब यहां एक घड़ी रहना जी पर भारी हो रहा है।

संतोख-अच्छा तो यह रेशमी कपड़े और यह जवाहरात और सोने के जेवन उतारकर फेंक दो। बुलहवस ने इन्हीं जंजीरों से तुम्हें जाकड़ दिया है। मोटे से मोटा कपड़ा जो मिल सके पहन लो, इन मिट्टी के घरौंदों को गिरा दो। इतर और गुलाब की शीशियां, साबुन की बट्टियां, और यह पाउडर के डब्बे सब फेंक दो।

मलका ने शीशियों और पाउडर के तड़ाक-तड़ाक पटक दिये, सोने के जेवरों को उतारकर फेंक दिया कि इतने में बुलहवस खां धाड़ें मार कर रोता हुआ आकर खड़ा हुआ और हाथ बांधकर कहने लगा-दोनों जहानों की मलका, मैं आपका नाचीज़ गुलाम हूँ, आप मुझसे नाराज हैं?

मलका ने बदला लेने के अपने जोश में मिट्टी के घरौंदों को पैरों से ठुकरा दिया, ठीकरों के अम्बार को ठोकरें मारकर बिखेर दिया। बुलहवस के शरीर का एक-एक अंग कट-कटकर गिरने लगा। वह बेदम होकर जमीन पर गिर पड़ा और दम के दम में जहन्नुम रसीद हुआ। संतोखसिंह ने मलका से कहा-देखा तुमन? इस दुश्मन को तुम कितना डरावना समझती थीं, आन की आन में खाक में मिल गया।

मलका-काश, मुझे यह हिकमत मालूम होती तो मैं कभी की आजाद हो जाती। लेकिन अभी और भी तो दुश्मन हैं।

संतोख-उनको मारना इससे भी आसान है। चलो कर्णसिंह के पास, ज्यों ही वह अपना सुर अलापने लगे और मीठी-मीठी बातें करने लगे, कानों पर हाथ रख लो, देखो, अदृश्य के पर्दे से फिर चीज सामने आती है।

मलकाकर्णसिंह के दरबार में पहुँची। उसे देखते ही चारों तरफ से धुपद और तिल्लाने के वार होने लगे। पियानो बजने लगे। मलका ने दोनों कान बन्द कर लिये। कर्णसिंह के दरबार में आग का शोला उठने लगा। सारे दरबारी जलने लगे, कर्णसिंह दौड़ा हुआ आया और बड़े विनय-पूर्वक मलका के पैरों पर गिरकर बोला-हुजूर, अपने इस हमेशा के गुलाम पर रहम करें। कानों पर से हाथ हटा कर वर्रा इस गरीब की जान पर बन आयेगी। अब कभी हुजूर की शान में यह गुस्ताखी न होगी।

मलका ने कहा-अच्छा, जा तेरी जां-बख्शी की। अब कभी बगावत न करना वर्रा जान से हाथ धोएगा।

कर्णसिंह ने संतोखसिंह की तरफ प्रलय की आंखों से देखकर सिर्फ इतना कहा-‘जालिम, तुझे मौत भी नहीं आयी’ और बेतहाशा गिरता-पड़ता भागा। सेतोखसिंह ने मलका से कहा-देखा तुमने, इनको मारना कितना आसान था? अब चलो लोचनदान के पास। ज्योंही वह अपने करिश्मे दिखाने लगे, दोनों आंखें बन्द कर लेना।

मलकालोचनदास के दरबार में पहुँची। उसे देखते ही लोचन ने अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना शुरू किया। ड्रामे होने लगे, नर्तकों ने थिरकना शुरू किया। लालो-जमुरद की कशितयां सामने आने लगीं लेकिन मलका ने दोनों आंखें बन्द कर लीं।

आन की आन में वह ड्रामे और सर्कस और नाचनेवालों के गिरोह खाक में मिल गये। लोचनदास के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं, निराशापूर्ण धैर्य के साथ चिल्ला-चिल्लकर कहने लगा, यह तमाशा देखो, यह पेरिस के

क्रहवेखाने, यह मिस एलिन का नाच है। देखो, अंग्रेज रईस उस पर कितनी उदारता से सोने और हीरे-जवाहरात निछावर कर रहे हैं। जिसने यह सैर-तमाशे ने देखे उसकी जिन्दगी मौत से बदतर। लेकिन मलका ने आंखें न खोलीं।

तब लोचनदास बदहवास और घबराया हुआ, बेद के दरख्त की तरह कांपता हुआ मलका के सामने आ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर बोला-हुजूर, आंखें खोलें। अपने इस गुलाम पर रहम करें, नहीं तो मेरी जान पर बन जाएगी। गुलाम की गुस्ताखियां माफ़ीरमायें। अब यह बेअदबी न होगी।

मलका ने कहा-अच्छा जा, तेरी जांबखशी की लेकिन खबरदार, अब सर न उठाना नहीं तो जहन्नुम रसीद कर दूंगी।

लोचनदास यह सुनते ही गिरता-पड़ता जान लेकर भागा। पीछे फिरकर भी न देखा। संतोखसिंह ने मलका से कहा-अब चलो मिर्जा शमीम और रसरज के पास। वहाँ एक हाथ से नाक बन्द कर लेना और दूसरे हाथ से खानों के तश्त को जमीन पर गिरा देना।

मलकारसरज और शमीम के दरबार में पहुँची उन्होंने जो संतोख को मलका के साथ देखा तो होश उड़ गये। मिर्जा शमीम ने कस्तूरी और केसर की लपटें उड़ाना शुरू कीं। रसरज स्वादिष्ट खानों के तश्त सजा-सजाकर मलका के सामने लाने लगा, और उनकी तारीफ करने लगा-यह पुर्तगात की तीन आंच दी हुई शराब है, इसे पिये तो बुढ़ा भी जवान हो जाये। यह फ्रांस का शैम्पेन है, इसे पिये तो मुर्दा जिन्दा हो जाय। यह मथुरा के पेड़े हैं, उन्हें खाये तो स्वर्ग की नेमतों को भूल जाय।

लेकिन मलका ने एक साथ से नाक बन्द कर ली और दूसरे हाथ से उन तश्तों को लमीन पर गिरा दिया और बोटलों को ठोकरें मार-मारकर चूर कर दिया। ज्यों-ज्यों उसकी ठोकरें पड़ती थीं, दरबार के दरबारी चीख-चीख कर भागते थे। आखिर मिर्जा शमीम और रसरज दोनों परेशान और बेहाल, सर से खून जारी, अंग-अंग टूटा हुआ, आकर मलका के सामने खड़े हो गये

और गिड़गिड़ाकर बोले-हुजूर, गुलामों पर रहम करें। हुजूर की शान में जो गुस्ताखियां हुई हैं उन्हें मुआफ़ फरमायें, अब फिर ऐसी बेअदबी न होगी।

मनका ने कहा-रसराज को मैं जान से माना चाहती हूँ। उसके कारण मुझे जलील होना पड़ा।

लेकिन संतोखसिंह ने मना किया-नहीं, इसे जान से न मारिये। इस तरह का सेवक मिलना कठिन है। यह आपके सब सूबेदार अपने काम में यकता हैं सिर्फ़ इन्हें काबू में रखने की जरूरत है।

मलका ने कहा-अच्छा जाओ, तुम दोनों की भी जां-बख़्शी की लेकिन खबरदार, अब कभी उपद्रव मत खड़ा करना वरना तुम जानोगे।

दोनों गिरत-पड़ते भागे, दम के दम में नजरों से ओझल हो गये।

मलका की रिआया और फौज ने भेंटे दीं, घर-घर शादियाने बजने लगे। चारों बागी सूबेदारशहरपनाह के पास छापा मारने की घात में बैठ गये लेकिन संतोखसिंह जब रिआया और फौज को मसजिद में शुक्रिए की नमाज अदा करने के लिए ले गया तो बागियों को कोई उम्मीद न रही, वह निराश होकर चले गये।

जब इन कामों से फुर्सत हुई तो मलका ने संतोखसिंह से कहा-मेरे पास अलफ़ाज नहीं मैं इतनी ताकत है कि मैं आपके एहसानों का शुक्रिया अदा कर सकूँ। आपने मुझे गुलामी ताकत से छुटकारा दिया। मैं आखिरी दम तक आपका जस गाऊंगी। अब शाह मसरूर के पास मुझे ले चलि, मैं उनकी सेवा करके अपनी उम्र बसर करना चाहती हूँ। उनसे मुंह मोड़कर मैंने बहुत जिल्लत और मसीबत झेली। अब अभी उनके कदमों से जुदा न हूँगी।

संतोखसिंह-हां, हां, चलिए मैं तैयार हूँ लेकिन मंजिल सख्त है, घबराना मत।

मलका ने हवाई जहाज मंगाया। पर संतोखसिंह ने कहा-वहां हवाई जहाज का गुजर नहीं है, पैदलपड़ेगांमलका ने मजबूर होकर जहाज वापस कर दिया और अकेले अपने स्वाती को मनाने चली।

वह दिन-भर भूखी-प्यासी पैदल चलती रही। आंखों के सामने अंधेरा छाने लगा, प्यास से गले में कांटे पड़ने लगे। कांटों से पैर छलनी हो गये। उसने अपने मार्ग-दर्शक से पूछा-अभी कितनी दूर है?

संतोख-अभी बहुत दूर है। चुपचाप चली आओ। यहां बातें करने से मंजिल खोटी हो जाती है।

रात हुई, आसमान पर बादल छा गये। सामने एक नदी पड़ी, किशती का पता न था। मलका ने पूछा-किशती कहां है?

संतोष ने कहा-नदी में चलना पेड़गा, यहां किशती कहां है।

मलका को डर मालूम हुआ लेकिन वह जान पर खेलकर दरिया में चल पड़ी। मालूम हुआ कि सिर्फ आंख का धोखा था। वह रेतीली जमीन थी। सारी रात संतोखसिंह ने एक क्षण के लिए भी दम न लिया। जब भोर का तारा निकल आया तो मलका ने रोकर कहा-अभी कितनी दूर है, मैं तो मरी जाती हूँ। संतोखसिंह ने जवाब दिया-चूपचान चली आओ।

मलका ने हिम्मत करके फिर कदम बढ़ाये। उसने पक्का इरादा कर लिया था कि रास्ते में मर ही क्यों न जाऊँ पर नाकाम न लौटूँगी। उस कैद से बचने के लिए वह कड़ी मुसीबतें झेलने को तैयार थी।

सूरज निकला, सामने एक पहाड़ नजर आया जिसकी चोटियां आसमान में घुसी हुई थीं। संतोखसिंह ने पूछा-इसी पहाड़ी की सबसे ऊंची चोटी पर शाह मसरूर मिलेंगे, चढ़ सकोगी?

मलका ने धीरज से कहा-हां, चढ़ने की कोशिश करूंगी।

बादशाह से भेंट होने की उम्मीद ने उसके बेजान पैरों में पर लगा दिए। वह तेजी से कदम उठाकर पहाड़ों पर चढ़ने लगी। पहाड़ के बीचों बीच आत-आते वह थककर बैठ गयी, उसे ाश आ गया। मालूम हुआ कि दम निकल रहा है। उसने निराश आंखों से अपने मित्र को देखा। संतोखसिंह ने कहा-एक दफा और हिम्मत करो, दिल में खुदा की याद करो मलका ने खुदा की याद की। उसकी आंखें खुल गयीं। वह फुर्ती से उठी और एक ही हल्ले में

चोटी पर जा पहुँची। उसने एक ठंडी सांस ली। वहां शुद्ध हवा में सांस लेते ही मलका के शरीर में एक नयी जिंदगी का अनुभव हुआ। उसका चेहरा दमकने लगा। ऐसा मालूम होने लगा कि मैं चाहूँ तो हवा में उड़ सकती हूँ। उसने खुश होकर संतोखसिंह तरफ देखा और आश्चर्य के सागर में डूब गयी। शरीर वही था, पर चेहरा शाह मसरूर का था। मलका ने फिर उसकी तरफ अचरज की आंखों से देखा। संतोखसिंह के शरीर पर से एक बादल का पर्दा हट गया और मलका को वहां शाह मशरूर बड़े नजर आए-वही हल्का नीला कुर्ता, वही गेरुए रंग की तरह। उनके मुखमण्डल से तेज की कांति बरस रही थी, माथा तारों की तरह चमक रहा था। मलका उनके पैरों पर गिर पड़ी। शाह मसरूर ने उसे सीने से लगा लिया।

-‘जमाना’, अप्रैल, 1918

वफ़ा का खंजर

जयगढ़ और विजयगढ़ दो बहुत ही हरे-भरे, सुसंस्कृत, दूर-दूर तक फैले हुए, मजबूत राज्य थे। दोनों ही में विद्या और कलाद खूब उन्नत थी। दोनों का धर्म एक, रस्म-रिवाज एक, दर्शन एक, तरक्की का उसूल एक, जीवन मानदण्ड एक, और जबान में भी नाम मात्र का ही अन्तर था। जयगढ़ के कवियों की कविताओं पर विजयगढ़ वाले सर धुनते और विजयगढ़ी दार्शनिकों के विचार जयगढ़ के लिए धर्म की तरह थे। जयगढ़ी सुन्दरियों से विजयगढ़ के घर-बार रोशन होते थे और विजयगढ़ की देवियां जयगढ़ में पुजती थीं। तब भी दोनों राज्यों में ठनी ही नहीं रहती थी बल्कि आपसी फूट और ईर्ष्या-द्वेष का बाजार बुरी तरह गर्म रहता और दोनों ही हमेशा एक-दूसरे के खिलाफ़ खंजर उठाए थे। जयगढ़ में अगर कोई देश को सुधार किया जाता तो विजयगढ़ में शोर मच जाता कि हमारी जिंदगी खतरे में है। इसी तरह तो विजयगढ़ में कोई व्यापारिक उन्नति दिखायी देती तो जयगढ़ में शोर मच जाता था। जयगढ़ अगर रेलवे की कोई नई शाख निकालता तो विजयगढ़ उसे अपने लिए काला सांप समझता और विजयगढ़ में कोई नया जहाज तैयार होता तो जयगढ़ को वह खून पीने वाला घडियाल नजर आता था। अगर यह बदगुमानियाँ अनपढ़ या साधारण लोगों में पैदा होतीं तो एक बात थी, मजे की बात यह थी कि यह राग-द्वेष, विद्या और जागृति, वैभव और प्रताप की धरती में पैदा होता था। अशिक्षा और जड़ता की जमीन उनके लिए ठीक न थी। खास सोच-विचार और नियम-व्यवस्था के उपजाऊ क्षेत्र में तो इस बीज का बढ़ना कल्पना की शक्ति को भी मात कर देता था। नन्हा-सा बीज पलक मारते-भर में ऊँचा-पूरा दख्त हो जाता था। कूचे और बाजारों में रोने-पीटनेकी सदाएं गूंजने लगतीं, देश की समस्याओं में एक भूचाल-सा आता, अखबारों के दिल जलाने वाले शब्द राज्य में हलचल मचा देते, कहीं से आवाज आ जाती—जयगढ़, प्यारे जयगढ़, पवित्र के लिए यह कठिन परीक्षा का अवसर

है। दुश्मन ने जो शिक्षा की व्यवस्था तैयार की है, वह हमारे लिए मृत्यु का संदेश है। अब जरूरत और बहुत सख्त जरूरत है कि हम हिम्मत बांधें और साबित कर दें कि जयगढ़, अमर जयगढ़ इन हमलों से अपनी प्राण-रक्षा कर सकता है। नहीं, उनका मुंह-तोड़ जवाब दे सकता है। अगर हम इस वक्त न जागें तो जयगढ़, प्यारा जयगढ़, हस्ती के परदे से हमेशा के लिए मिट जाएगा और इतिहास भी उसे भुला देगा।

दूसरी तरफ़ से आवाज आती—विजयगढ़ के बेखबर सोने वालों, हमारे मेहरबान पड़ोसियों ने अपने अखबारों की जबान बन्द करने के लिए जो नये क्रायदे लागू किये हैं, उन पर नाराज़गी का इजहार करना हमारा फ़र्ज है। उनकी मंशा इसके सिवा और कुछ नहीं है कि वहां के मुआमलों से हमको बेखबर रक्खा जाए और इस अंधेरे के परदे में हमारे ऊपर धावे किये जाएं, हमारे गलों पर फेरने के लिए नये-नये हथियार तैयार किए जाएं, और आखिरकार हमारा नाम-निशान मिटा दिया जाए। लेकिन हम अपने दोस्तों को जता देना अपना फ़र्ज समझते हैं कि अगर उन्हें शरारत के हथियारों की ईजाद के कमाल हैं तो हमें भी उनकी काट करने में कमाल है। अगर शैतान उनका मददगार है तो हमको भी ईश्वर की सहायता प्राप्त है और अगर अब तक हमारे दोस्तों को मालूम नहीं है तो अब होना चाहिए कि ईश्वर की सहायता हमेशा शैतान को दबा देती है।

2.

यगढ़ बाकमालकलावन्तों का अखाड़ा था। शीरीं बाई इस अखाड़े की सब्ज परी थी, उसकी कला की दूर-दूर तक ख्याति थी। वह संगीत की राती थी जिसकी ड्योढ़ी पर बड़े-बड़े नामवर आकर सिर झुकाते थे। चारों तरफ़ विजय का डंका बजाकर उसने विजयगढ़ की ओर प्रस्थान किया, जिससे अब तक उसे अपनी प्रशंसा का कर न मिला था। उसके आते ही विजयगढ़ में एक इंकलाब-सा हो गया। राग-द्वेष और अनुचित गर्व हवा से उड़ने वाली सूखी पत्तियों की तरह तितर-बितर हो गए। सौंदर्य और राग के बाजार में धूल उड़ने लगी, थिएटरों और नृत्यशालाओं में वीरानी छा गयी। ऐसा मालूम होता था किजैसे सारी सृष्टि पर जादू छा गया है। शाम होते ही विजयगढ़ के धनी धोरी, जवान-बूढ़े शीरीं बाई की मजालिस की तरफ़ दौड़ते थे। सारा देश शीरीं की भक्ति के नशे में डूब गया।

विजयगढ़ के सचेत क्षेत्रों में देशवासियों के इस पागलपन से एक बेचैनी की हालत पैदा हुई, सिर्फ़ यही नहीं कि उनके देश की दौलत बर्बाद हो रही थी बल्कि उनका राष्ट्रीय अभिमान और तेज भी धूल में मिल जाता था। जयगढ़ की एक मामूली नाचनेवाली, चाहे वह कितनी ही मीठी अदाओं वाली क्यों न हो, विजयगढ़ के मनोरंजन का केंद्र बन जाय, यह बहुत बड़ा अन्याय था। आपस में मशविरे हुए और देश के पुरोहितों की तरफ़ से देश के मन्त्रियों की सेवा में इस खास उद्देश्य से एक शिष्टमण्डल उपस्थित हुआ। विजयगढ़ के आमोद-प्रमोद के कर्त्ताओं की ओर से भी आवेदनमत्र पेश होने लगे। अखबारों ने राष्ट्रीय अपमान और दुर्भाग्य के तराने छेड़े। साधारण लोगों के हलकों में सवालियों की बौछार होने लगी, यहां तक कि वजीर मजबूर हो गए, शीरीं बाई के नाम शाही फ़रमान पहुँचा—चूँकि तुम्हारे रहने से देश में उपद्रव होने की आशंका है इसलिए तुम फौरन विजयगढ़ से चली जाओ। मगर यह हुक्म अंतर्राष्ट्रीय संबंधों, आपसी इकरारनामे और सभ्यता के नियमों के सरासर खिलाफ़ था। जयगढ़ के राजदूत ने, जो विजयगढ़ में नियुक्त था, इस

आदेश पर आपत्ति की और शीरीं बाई ने आखिरकार उसको मानने से इनकार किया क्योंकि इससे उसकी आजादी और खुदगारी और उसके देश के अधिकारों और अभिमान पर चोट लगती थी।

3.

जयगढ़ के कूचे और बाजार खामोश थे। सैर की जगहें खाली। तफ़रीह और तमाशे बन्द। शाही महल के लम्बे-चौड़े सहने और जनता के हरे-भरे मैदानों में आदमियों की भीड़ थी, मगर उनकी जबानें बन्द थीं और आंखें लाल। चेहरे का भाव कठोर और क्षुब्ध, तयोरियां हुई, माथे पर शिकन, उमड़ी हुई काली घटा थी, डरावनी, ख़समोश, और बाढ़ को अपने दामन में छिपाए हुए।

मगर आम लोगों में एक बड़ा हंगामा मचा हुआ था, कोई सुलह का हामी था, कोई लड़ाई की मांग करता था, कोई समझौते की सलाह देता था, कोई कहता था कि छानबीने करने के लिए कमीशन बैठाओ। मामला नाजुक था, मौका तंग, तो भी आपसी बहस-मुबाहसों, बदगुमानियों, और एक-दूसरे परहमलों का बाजार गर्म था। आधी रात गुज़र गयी मगर कोई फैसला न हो सका। पूंजी की संगठित शक्ति, उसकी पहुँच और रोबदाब फ़ैसले की ज़बान बन्द किये हुए था।

तीन पहर रात जा चुकी थी, हवा नींद से मतवाली होकर अंगड़ाइयां ले रही थी और दरख्तों की आंख झपकती थीं। आकाश के दीपक भी झलमलाने लगे थे, दरबारी कभी दीवारों की तरफ़ ताकते थे, कभी छत की तरफ़। लेकिन कोई उपाय न सूझता था।

अचानक बाहर से आवाज आयी—युद्ध! युद्ध! सारा शहर इस बुलंद नारे से गंज उठा। दीवारों ने अपनी ख़ामोश जबान से जवाब दिया—युद्ध!युद्ध!

यह अदृष्ट से आने वाली एक पुकार थी जिसने उस ठहराव में हरकत पैदा कर दी थी। अब ठहरी हुई चीजों में ख़लबली-सी मच गयी। दरबारी गोया गलफ़त की नींद से चौंक पड़े। जैसे कोई भूली हुई बात याद आते ही उछल पड़े। युद्ध मंत्री सैयद असकरी ने फ़रमाया—क्या अब भी लोगों को लड़ाई का ऐलाल करने में हिचकिचाहट है? आम लोगों की जबान

खुदा का हुक्म और उसकी पुकार अभी आपके कानों में आयी, उसको पूरा करना हमारा फ़र्ज है। हमने आज इस लम्बी बैठक में यह साबित किया है कि हम ज़बान के धनी हैं, पर जबान तलवार है, ढाल नहीं। हमें इस वक़्त ढाल की जरूरत है, आइये हम अपने सीनों को ढाल बना लें और साबित कर दें कि हममें अभी वह जौहर बाकी है जिसने हमारे बुजुर्गों का नाम रोशन किया। कौमी ग़ैरत जिन्दगी की रूह है। वह नफे और नुक़सान से ऊपर है। वह हुण्डी और रोकड़, वसूल और बाकी, तेज़ी और मन्दी की पाबन्दियों से आजाद है। सारी खानों की छिपी हुई दौलत, सारी दुनिया की मण्डियां, सारी दुनिया के उद्योग-धंधे उसके पासंग हैं। उसे बचाइये वरना आपका यह सारा निजाम तितर-बितर हो जाएगा, शीरजा बिखर जाएगा, आप मिट जाएंगे। पैसे वालों से हमारा सवाल है—क्या अब भी आपको जंग के मामले में हिचकिचाहट है?

बाहर से सैकड़ों की आवाज़ें आयीं—जंग! जंग!

एक सेठ साहब ने फ़रमाया—आप जंग के लिए तैयार हैं?

असकरी—हमेशा से ज्यादा।

ख्वाजा साहब—आपको फ़तेह का यक़ीन है?

असकरी—पूरा यक़ीन है।

दूर-पास 'जंग'जंग' की गरजती हुई आवाज़ों का तांता बंध गया कि जैसे हिमालय के किसी अथाह खड्ड से हथौड़ों की झनकार आ रही हो। शहर कांपउठा, ज़मीन थराने लगी, हथियार बंटने लगे। दरबारियों ने एक मत लड़ाई का फ़ैसला किया। ग़ैरत जो कुछ ने कर सकती थीं, वह अवाम के बारे ने कर दिखाया।

4.

आज से तीस साल पहले एक जबर्दस्त इन्कलाब ने जयगढ़ को हिला डाला था। वर्षों तक आपसी लड़ाइयों का दौर रहा, हजारों खानदान मिट गये। सैकड़ों कस्बे बीरान हो गये। बाप, बेटे के खून का प्यासा था। भाई, भाई की जान का ग्राहक। जब आखिरकार आज़ादी की फ़तेह हुई तो उसने ताज के फ़िदाइयों को चुन-चुन कर मारा। मुल्क के क़ैदखाने देश-भक्तों से भर उठे। उन्हीं जाँबाजों में एक मिर्जा मंसूर भी था। उसे कन्नौज के किले में क़ैद किया गया जिसके तीन तरफ़ ऊंची दीवारें थीं। और एक तरफ़ गंगा नदी। मंसूर को सारे दिन हथौड़े चलान पड़ते। सिर्फ़ शाम को आध घंटे के लिए नमाज की छुट्टी मिलती थी। उस वक़्त मंसूर गंगा के किनारे आ बैठता और देश-भाइयों की हालत पर रोता। वह सारी राष्ट्रीय और सामाजिक व्यवस्था जो उसके विचार में राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग थी, इस हंगामे की बाढ़ में नष्ट हो रही थी। वह एक ठण्डी आह भरकर कहता—जयगढ़, अब तेरा खुदा ही रखवाला है, तूने खाक को अकसीर बनाया और अकसीर को खाक। तूने खानदान की इज्जत को, अदब और इखलाग का, इल्मो—कमाल को मिटा दिया।, बर्बाद कर दिया। अब तेरी बाग़डोर तेरे हाथ में नहीं है, चरवाहे तेरे रखवाले और बनिये तेरे दरबारी हैं। मगर देख लेना यह हवा है, और चरवाहे और साहूकार एक दिन तुझे खून के आंसू रूलायेंगे। धन और वैभव अपना ढंग न छोड़ेगा, हुकूमत अपना रंग न बदलेगी, लोग चाहे ल जाएं, लेकिन निज़ाम वही रहेगा। यह तेरे नए शुभ चिन्तक जो इस वक़्त विनय और सत्य और न्याय की मूर्तियाँ बने हुए हैं, एक दिन वैभव के नशे में मतवाले होंगे, उनकी शक्तियाँ ताज की शक्तियों से कहीं ज्यादा सख्त होंगी और उनके जुल्म कहीं इससे ज्यादा तेज़।

इन्हीं ख़यालों में डूबे हुए मंसूर को अपने वतन की याद आ जाती। घर का नक्शा आंखों के सामने खिंच जाता, मासूम बच्चे असकरी की प्यारी-प्यारी सूरत आंखों में फिर जाती, जिसे तक्रदीर ने मां के लाड़-प्यार से वंचित

कर दिया था। तब मंसूर एक ठण्डी आह खींचकर खड़ा होता और अपने बेटे से मिलने की पागल इच्छा में उसका जी चाहता कि गंगा में कूदकर पार निकल जाऊँ।

धीरे-धीरे इस इच्छा ने इरादे की सूरत अख्तियार की। गंगा उमड़ी हुई थी, ओर-छोर का कहीं पता नथ। तेज और गरजती हुई लहरें दौड़ते हुए पहाड़ों के समान थीं। पाट देखकर सनर में चक्कर-सा आ जाता था। मंसूर ने सोचा, नहीं उतरने दूँ। लेकिन नदी उतरने के बदले भयानक रोग की तरह बढ़ती जाती थी, यहां तक कि मंसूर को फिर धीरज न रहा, एक दिन वह रात को उठा और उस पुरशोर लहरों से भरे हुए अंधरे में कुछ पड़ा।

मंसूर सारी रात लहरों के साथ लड़ता-भिड़ता रहा, जैसे कोई नन्ही-सी चिड़िया तूफान में थपेड़े खा रही हो, कभी उनकी गोद में छिपा हुआ, कभी एक रेले में दस क़दम आगे, कभी एक धक्के में दस क़दम पीछे। ज़िन्दगी की लिखावट की ज़िन्दा मिसाल। जब वह नदी के पार हुआ तो एक बेजान लाश था, सिर्फ सांस बाक़ी थी और सांस के साथ मिलने की इच्छा।

इसके तीसरे दिन मंसूरविजयगढ़ जा पहुँचा। एक गोद में असकरी था और दूसरे हाथ में ग़रीबी का छोटा-सा एक बुकचा। वहां उसने अपना नाम मिर्जा जलाल बताया। हुलिया भी बदल लिया था, हड्डा-कड्डा सजीला जवान था, चेहरे पर शराफ़त और कुशीलनता की कान्ति झलकती थी; नौकरी के लिए किसी और सिफ़ारिश की जरूरत न थी। सिपाहियों में दाख़िल हो गया और पांच ही साल में अपनी ख़िदमतों और भरोसे की बदौलत मन्दौर के सरहद्दी पहाड़ी किले का सूबेदार बना दिया गया।

लेकिन मिर्जा जलाल को वतन की याद हमेशा सताया करती। वह असकरी को गोद में ले लेता और कोट पर चढ़कर उसे जयगढ़ की वह मुस्कराती हुई चरागाहें और मतवाले झरने और सुथरी बस्तियां दिखाता जिनके कंगूरे क़िले से नज़र आते। उस वक्त बेअख्तियार उसके जिगर से सर्द आह निकल जाती और आँखें डबड़बा आतीं। वह असकरी को गले लगा

लेता और कहता—बेटा, वह तुम्हारा देश है। वहीं तुम्हारा और तुम्हारे बुजुर्गों का घोंसला है। तुमसे हो सके तो उसके एक कोने में बैठे हुए अपनी उम्र ख़त्म कर देना, मगर उसकी आन में कभी बट्टा न लगाना। कभी उससे दया मत करना क्योंकि तुम उसी कि मिट्टी और पानी से पैदा हुए हो और तुम्हारे बुजुर्गों की पाक रूहें अब भी वहां मंडला रही हैं। इस तरह बचपनेसे ही असकरी के दिल पर देश की सेवा और प्रेम अंकित हो गया था। वह जवान हुआ, तो जयगढ़ पर जान देता था। उसकी शान-शौकत पर निसार, उसके रोबदाब की माला जपने वाला। उसकी बेहतरी को आगे बढ़ाने के लिए हर वक्त तैयार। उसके झण्डे को नयीअछूती धरती में गाड़ने का इच्छुक। बीस साल का सजीला जवान था, इरादा मज़बूत, हौसले बुलन्द, हिम्मत बड़ी, फ़ौलादी जिस्म, आकर जयगढ़ की फ़ौज में दाखिल हो गया और इस वक्त जयगढ़ की फ़ौज का चमकजा सूरज बन हुआ था।

5.

जयगढ़ ने अल्टीमेटम दे दिया—अगर चौबिस घण्टों के अन्दर शीरीं बाईं जयगढ़ न पहुँची तो उसकी अगवानी के लिए जयगढ़ की फ़ौज रवाना होगी।

विजयगढ़ ने जवाब दिया—जयगढ़ की फ़ौज आये, हम उसकी अगवानी के लिए हाजिर हैं। शीरीं बाईं जब तक यहां की अदालत से हुक्म-उदूली की सजा न पा ले, वह रिहा नहीं हो सकती और जयगढ़ को हमारे अंदरूनी मामलों में दखल देने का कोई हक नहीं।

असकरी ने मुंहमांगी मुराद पायी। खुफ़िया तौर पर एक दूत मिर्जा जलाल के पास रवाना किया और खत में लिखा—

‘आज विजयगढ़ से हमारी जंग छिड़ गयी, अब खुदा ने चाहा तो दुनिया जयगढ़ की तलवार का लोहा मान जाएगी। मंसूर का बेटा असकरीफ़तेह के दरबार का एक अदना दरबारी बन सकेगा और शायद मेरी वह दिली तमन्ना भी पूरी हो जो हमेशा मेरी रूह को तड़पाया करती है। शायद मैं मिर्जा मंसूर को फिर जयगढ़ की रियासत में एक ऊँची जगह पर बैठे देख सकूँ। हम मन्दौर में न बोलेंगे और आप भी हमें न छेड़िएगा लेकिन अगर खुदा न ख्वास्ता कोई मुसीबत आ ही पड़े तो आप मेरी यह मुहर जिस सिपाही या अफ़सर को दिखा देंगे वह आपकी इज्जत करेगा। और आपको मेरे कैम्प में पहुँचा देगा। मुझे यकीन है कि अगर जरूरत पड़े तो उस जयगढ़ के लिए जो आपके लिए इतना प्यारा है और उस असकरी के खातिर जो आपके जिगर का टुकड़ा है, आप थोड़ी-सी तकलीफ़ से (मुमकिन है वह रूहानी तकलीफ़ हो) दरेग न फ़रमायेंगे।’

इसके तीसरे दिन जयगढ़ की फ़ौज ने विजयगढ़ पर हमला किया और मन्दौर से पांच मील के फ़ासले पर दोनों फ़ौजों का मुकाबला हुआ। विजयगढ़ को अपने हवाई जहाजों, जहरीले गड़्डों और दूर तक मार करने वाली तोपों का घमण्ड था। जयगढ़ को अपनी फ़ौज की बहादुरी, जीवट,

समझदारी और बुद्धि का था। विजयगढ़ की फ़ौज नियम और अनुशासन की गुलाम थी, जयगढ़ वाले जिम्मेदारी और तमीज के क्रायल।

एक महीने तक दिन-रात, मार-काट के मार्के होता रहे। हमेशा आग और गोलों और जहरीली हवाओं का तूफ़ान उठा रहता। इन्सान थक जाता था, पर कले अथक थीं। जयगढ़ियों के हौसले पस्त हो गये, बार-बार हार पर हार खायी। असकरी को मालूम हुआ कि जिम्मेदारी फ़तेह में चाहे करिश्मे कर दिखाये, पर शिकस्त में मैदान हुक्म की पाबन्दी ही के साथ रहता है।

जयगढ़ के अखबारों ने हमले शुरू किये। असकरी सारी क़ौम की लानत-मलामत का निशाना बन गया। वही असकरी जिस पर जयगढ़ फ़िदा होता था सबकी नज़रों का कांटा हो गया। अनाथ बच्चों के आंसू, विधवाओं की आँहें, घायलों की चीख-पुकार, व्यापारियों की तबाही, राष्ट्र का अपमान— इन सबका कारण वही एक व्यक्ति असकरी था। कौम की अगुवाई सोने की राजसिंहासन भले ही हो पर फूलों की मेज वह हरगिज नहीं।

जब जयगढ़ की जान बचने की इसके सिवा और कोई सूरत न थी कि किसी तरह विरोधी सेना का सम्बन्ध मन्दौर के क़िले से काट दिया जाय, जो लड़ाई और रसद के सामान और यातायात के साधनों का केंद्र था। लड़ाई कठिन थी, बहुत खतरनाक, सफलता की आशा बहुत कम, असफलता की आशंका जी पर भारी। कामयाबी अगर सूखें धान का पानी थी तो नाकामी उसकी आग। मगर छुटकारे की और कोई दूसरी तस्वीर न थी। असकरी ने मिर्जा जलाल को लिखा—

‘प्यारे अब्बाजान, अपने पिछले खत में मैंने जिस जरूरत का इशारा किया था, बदक्रिस्मती से वह जरूरत आ पड़ी। आपका प्यारा जयगढ़ भेडियों के पंजे में फंसा हुआ है और आपका प्यारा असकरीनाउम्मीदों के भंवर में, दोनों आपकी तरफ़ आस लगाये ताक रहे हैं। आज हमारी आखिरी कोशिश, हम मुखालिफ़ फ़ौज को मन्दौर के क़िले से अलग करना चाहते हैं। आधी रात के बाद यह मार्का शुरू होगा। आपसे सिर्फ़ इतनी दरख्वास्त है कि अगर हम

सर हथेली पर लेकर किले के सामने तक पहुँच सकें, तो हमें लोहे के दरवाजे से सर टकराकर वापस न होना पड़े। वर्ना आप अपनी क्रौम की इज्जत और अपने बेटे की लाश को उसी जगह पर तड़पते देखेंगे और जयगढ़ आपको कभी मुआफ़ न करेगा। उससे कितनी ही तकलीफ़ क्यों न पहुँची हो मगर आप उसके हक़ों से सुबुकदोश नहीं हो सकते।

शाम हो चुकी थी, मैदाने जंग ऐसा नज़र आता था कि जैसे जंगल जल गया हो। विजयगढ़ी फ़ौज एक खूँरेजमार्के के बाद ख़न्दकों में आ रही थी, घायल मन्दौर के क़िले के अस्पताल में पहुँचाये जा रहे थे, तोपें थककर चुप हो गयी थीं और बन्दूकें जरा दम ले रही थीं। उसी वक्त जयगढ़ी फ़ौज का एक अफ़सर विजयगढ़ी वर्दी पहने हुए असकरी के खेमे से निकला, थकी हुई तोपें, सर झुकाये हवाई जहाज, घोडों की लाशें, औंधी पड़ी हुई हवागाडिया, और सजीव मगर टूटे-फूटे किले, उसके लिए पर्दे का काम करने लगे। उनकी आड़ में छिपता हुआ वह विजयगढ़ीघायलों की क्रतार में जा पहुँचा और चुपचाप जमीन पर लेट गया।

6.

आधी रात गुजर चुकी थी। मन्दौर या किलेदार मिर्जा जलाल किले की दीवार पर बैठा हुआ मैदाने जंग का तमाशा देख रहा था और सोचता था कि 'असकरी को मुझे ऐसा ख़त लिखने की हिम्मत क्योंकर हुई। उसे समझना चाहिए था कि जिस शख्स ने अपने उसूलों पर अपनी जिन्दगी न्यौछावर कर दी, देश से निकाला गया, और गुलामी का तौक्र गर्दन में डाला वह अब अपनी जिन्दगी के आखिरी दौर में ऐसा कोई काम न करेगा, जिससे उसको बट्टा लगे। अपने उसूलों को न तोड़ेगा। खुदा के दरबार में वतन और वतनवाले और बेटा एक भी साथ न देगा। अपने बुरे-भले की सजा या इनाम आप ही भुगतना पड़ेगा। हिसाब के रोज उसे कोई न बचा सकेगा।

'तौबा! जयगढ़ियों से फिर वही बेवकूफी हुई। ख़ाम! ख़ाहगोलेबारी से दुश्मनों को खबर देने की क्या ज़रूरत थी? अब इधर से भी जवाब दिया जायेगा और हज़ारों जानें जाया होंगी। रात के अचानक हमले के माने तो यह है कि दुश्मन सर पर आ जाए और कान खबर न हो, चौतरफ़ा खलबली पड़ जाय। माना कि मौजूदा हालत में अपनी हरकतों को पोशीदा रखना शायद मुश्किल है। इसका इलाज अंधेरे के ख़न्दक से करना चाहिये था। मगर आज शायद उनकी गोलेबारीमामूल से ज्यादा तेज है। विजयगढ़ की क़तारों और तमाम मोर्चेबन्दियों को चीरकर बज़ाहिर उनका यहां तक आना तो मुहाल मालूम होता था, लेकिन अगर मान लो आ ही जाएं तो मुझे क्या करना चाहिये। इस मामले को तय क्यों न कर लूँ? ख़ूब, इसमें तय करने की बात ही क्या है? मेरा रास्ता साफ़ है। मैं विजयगढ़ का नमक खाता हूँ। मैं जब बेघरबार, परेशान और अपने देश से निकला हुआ था तो विजयगढ़ ने मुझे अपनेदामन में पनाह दी और मेरी ख़िदमतों का मुनासिब लिहाज़ किया। उसकी बदौलत तीस साल तक मेरी जिन्दगी नेकनामी और इज्जत से गुजरी। उसके दगा करना हद दर्जे की नमक-हरामी है। ऐसा गुनाह जिसकी कोई सज़ा

नहीं! वह ऊपर शोर हो रहा है। हवाई जहाज़ होंगे, वह गोला गिरा, मगर खैरियत हुई, नीचे कोई नहीं था।

‘मगर क्या दगा हर एक हालत में गुनाह है? ऐसी हालतें भी तो हैं, जब दगा वफ़ा से भी ज्यादा अच्छी हो जाती है। अपने दुश्मन से दगा करना क्या गुनाह है? अपनी कौम के दुश्मन से दगा करना क्या गुनाह है? कितने ही काम जो जाती हैसियत से ऐसे होते हैं कि उन्हें माफ़ नहीं किया जा सकता, कौमी हैसियत से नेक काम हो जाते हैं। वही बेगुनाह का खून जो जाती हैसियत से सख्त सज़ा के क़ाबिल है, मज़हबी हैसियत से शहादत का दर्जा पाता है, और कौमी हैसियत से देश-प्रेम का। कितनी बेरहमियां और जुल्म, कितनी दगाएं और चालबाजियां, कौमी और मज़हबी नुक्ते-निगाह से सिर्फ़ ठीक ही नहीं, फ़र्जों में दाखिल हो जाती है। हाल की यूरोप की बड़ी लड़ाई में इसकी कितनी ही मिसालें मिल सकती हैं। दुनिया का इतिहास ऐसी दगाओं से भरा पड़ा है। इस नये दौर में भले और बुरे का जाती एहसास क़ौमी मसलहत के सामने कोई हकीकत नहीं रखता। क़ौमियत ने ज़ात को मिटा दिया है। मुमकिन है यही खुदा की मंशा हो। और उसके दरबार में भी हमारे कारनामों क़ौम की कसौटी ही पर परखे जायें। यह मसला इतना आसान नहीं है जितना मैं समझता था।

फ़िर आसमान में शोर हुआ इतना मगर शायद यह इधर की के हवाई जहाज़ हैं। जयगढ़ वाले बड़े दमखम से लड़ रहे हैं। इधर वाले दबते नजर आते हैं। आज यकीनन मैदान उन्हीं के हाथ में रहेगा। जान पर खेले हुए हैं। जयगढ़ी वीरों की बहादुरी मायूसी ही मे खूब खुलती है। उनकी हार जीत से भी ज्यादा शानदार होती है। बेशक, असकरीदाँव-पेंच का उस्ताद है, किस खूबसूरती से अपनी फ़ौज का रूख क़िले के दरवाजे की तरफ़ फेर दिया। मगर सख्त गलती कर रहे हैं। अपने हाथों अपनी क़ब्र खोद रहे हैं। सामने का मैदान दुश्मन के लिए खाली किये देते हैं। वह चाहे तो बिना रोक-टोक आगे बढ़ सकता है और सुबह तक किये देते हैं। वह चाहे तो बिना रोक-टोक आगे

बढ़ सकता है। और सुबह तक जयगढ़ की सरज़मीन में दाखिल हो सकता है। जयगढ़ियों के लिए वापसी या तो गैरमुमकिन है या निहायत ख़तरनाक। क़िले का दरवाज़ा बहुत मजबूत है। दीवारों की संधियों से उन पर बेशुमार बन्दूकों के निशाने पड़ेंगे। उनका इस आग में एक घण्टा भी ठहरना मुमकिन नहीं है। क्या इतने देशवासियों की जानें सिर्फ एक उसूल पर, सिर्फ हिसाब के दिन के डर पर, सिर्फ अपने इखलाक़ी एहसास पर कुर्बान कर दूँ? और महज जानें ही क्यों? इस फ़ौज की तबाही जयगढ़ की तबाही है। कल जयगढ़ की पाक सरज़मीन दुश्मन की जीत के नक्क़ारों से गूँज उठेगी। मेरी माएं, बहनें और बेटियां हया को जलाकर खाक कर देने वाली हरकतों का शिकार होंगी। सारे मुल्क में क्रतल और तबाही के हंगामे बरपा होंगे। पुरानी अदावत और झगड़ों के शोले भड़केंगे। कब्रिस्तान में सोयी हुई रूहें दुश्मन के क्रदमों से पामाल होंगी। वह इमारतें जो हमारे पिछले बड़प्पन की जिन्दनिशानियाँ हैं, वह यादगारें जो हमारे बुजुर्गों की देन हैं, जो हमारे कारनामों के इतिहास, हमारे कमालों का ख़जाना और हमारी मेहनतों की रोशन गवाहियां हैं, जिनकी सजावट और खूबी को दुनिया की क्रौमें स्पर्द्धा की आंखों से देखती हैं वह अर्द्ध-बर्बर, असभ्य लश्करियों का पड़ाव बनेंगी और उनके तबाही के जोश का शिकार। क्या अपनी क्रौम को उन तबाहियों का निशाना बनने दूँ? महज इसलिए कि वफ़ा का मेरा उसूल न टूटे?

‘उफ़, यह क़िले में ज़हरीले गैस कहां से आ गये। किसी जयगढ़ी जहाज की हरकत होगी। सर में चक्कर-सा आ रहा है। यहां से कुमक भेजी जा रही है। किले की दीवार के सूराखों में भी तोपें चढाई जा रही है। जयगढ़वाले क़िले के सामने आ गये। एक धावे में वह हुंमायूं दरवाजे तक आ पहुँचेंगे। विजयगढ़ वाले इस बाढ़ को अब नहीं रोक सकते। जयगढ़वालों के सामने कौन ठहर सकता है? या अल्लाह, किसी तरह दरवाजा खुद-ब-खुद खुल जाता, कोई जयगढ़ी हवाबाज़ मुझसे जबर्दस्ती कुंजी छीन लेता। मुझे मार डालता। आह, मेरे इतने अज़ीज हम-वतन प्यारे भाई आन की आन में

खाक में मिल जायेंगे और मैं बेबस हूँ! हाथों में जंजीर है, पैरों में बेड़ियाँ। एक-एक रोआं रस्सियों से जकड़ा हुआ है। क्यों न इस जंजीर को तोड़ दूँ, इन बेड़ियों के टुकड़े-टुकड़े कर दूँ और दरवाजे के दोनों बाजू अपने अजीज फ़तेह करने वालों की अगवानी के लिए खोल दूँ! माना कि यह गुनाह है पर यह मौक़ा गुनाह से ड़रने का नहीं। जहन्नुम की आग उगलने वाले सांप और खून पीन वाले जानवर और लपकते हुए शोले मेरी रूह को जलायें, तड़पायें कोई बात नहीं। अगर महज़ मेरी रूह की तबाही, मेरी क़ौम और वतन को मौत के गड्ढे से बचा सके तो वह मुबारक है। विजयगढ़ ने ज्यादती की है, उसने महजजयगढ़ को जलील करने के लिए सिर्फ़ उसको भड़काने के लिए शीरीं बाई को शहर-निकाले को हुक्म जारी किया जो सरासर बेजा था। हाय, अफ़सोस, मैंने उसी वक्त इस्तीफ़ा न दे दिया और गुलामी की इस क़ैद से क्यों न निकल गया।

‘हाय !जब, जयगढ़ी फ़ौज ख़न्दकों तक पहुँच गयी, या खुदा! इन जांबाजों पर रहम कर, इनकी मदद कर। कलदार तोपों से कैसे गोले बरस रहे हैं, गोया आसमान के बेशुमार तारे टूट पड़ते हैं। अल्लाह की पनाह, हुमायूँ दरवाजे पर गोलों की कैसी चोटें पड़ रही हैं। कान के परदे फ़टे जाते हैं। काश दरवाजा टूट जाता! हाय मेरा असकरी, मेरे जिगर का टुकड़ा, वह घोड़े पर सवार आ रहा है। कैसा बहादुर, कैसा जांबाज, कैसी पक्की हिम्मत वाला! आह, मुझ अभागे कलमुँहे की मौत क्यों नहीं आ जाती! मेरे सर पर कोई गोला क्यों नहीं आ गिरता! हाय, जिस पौधे को अपने जिगर के खून से पाला, जो मेरी पतझड़ जैसी ज़िन्दगी का सदाबहार फूल था, जो मेरी अंधेरी रात का चिरा, मेरी ज़िन्दगी की उम्मीद, मेरी हस्ती का दारोमदार, मेरी आरजू की इन्तहा था, वह मेरी आंखों के सामने आग के भंवर में पड़ा हुआ है, और मैं हिल नहीं सकता। इस कातिल जंजीर को क्योंकर तोड़ दूँ? इस बागी दिल को क्योंकर समझाऊँ? मुझे मुंह में कालिख लगाना मंजूर है, मुझे जहन्नुम की मुसीबतें झेलना मंजूर है, मैं सारी दुनिया के गुनाहों का बोझ अपने सर पर

लेने को तैयार हूँ, सिर्फ इस वक़्त मुझे गुनाही करने की, वफ़ा के पैमाने को तोड़ने की, नमकहराम बनने की तौफ़ीक़ दे! एक लम्हे के लिए मुझे शैतान के हवाले कर दे, मैं नमक हराम बनूँगा, दगाबाज बनूँगा पर क़ौमफ़रोश नहीं बन सकता!

‘आह, ज़ालिम सुरंगें उड़ाने की तैयारी कर रहे हैं। सिपहसालार ने हुक्म दे दिया। वह तीन आदमी तहखाने की तरफ़ चले। जिगर कांप रहा है, जिस्म कांप रहा है। यह आख़िरी मौका है। एक लमहा और, बस फिर अंधेरा है और तबाही। हाय, मेरे ये बेवफ़ा हाथ-पांव अब भी नहीं हिलते, जैसे इन्होंने मुझसे मुंह मोड़ लिया हो। यह खून अब भी गरम नहीं होता। आह, वह धमाके की आवाज हुई, खुदा की पनाह, जमीन काँप उठी हाय असकरी, असकरी, रूख़सत, मेरे प्यारे बेटे, रूख़सत, इस जालिम बेरहम बाप ने तुझे अपनी वफ़ा पर कुर्बान कर दिया! मैं तेरा बाप न था, तेरा दुश्मन था! मैंने तेरे गले पर छुरी चलयी। अब धुआं साफ़ हो गया। आह वह फ़ौज कहां है जो सैलाब की तरह बढ़ती आती थी और इन दीवारों से टकरा रही थी। ख़न्दकें लाशों से भरी हुई हैं और वह जिसका मैं दुश्मन था, जिसका क़ातिल, वह बेटा, वह मेरा दुलारा असकरी कहां है, कहीं नजर नहीं आता....आह....।’

—‘जमाना’, नवम्बर, 1918

मुबारक बीमारी

रात के नौ बज गये थे, एक युवती अंगीठी के सामने बैठी हुई आग फूंकती थी और उसके गाल आग के कुन्दनी रंग में दहक रहे थे। उसकी बड़ी-बड़ी आंखें दरवाजे की तरफ़ लगी हुई थीं। कभी चौंककर आंगन की तरफ़ ताकती, कभी कमरे की तरफ़। फिर आनेवालों की इस देरी से तयोरियों पर बल पड़ जाते और आंखों में हलका-सा गुस्सा नजर आता। कमल पानी में झकोले खाने लगता।

इसी बीच आनेवालों की आहट मिली। कहर बाहर पड़ा खराटे ले रहा था। बूढ़े लाला हरनामदास ने आते ही उसे एक ठोकर लगाकर कहा-कम्बख्त, अभी शाम हुई है और अभी से लम्बी तान दो!

नौजवान लाला हरिदास घर में दाखिल हुए—चेहरा बुझा हुआ, चिन्तित। देवकी ने आकर उनका हाथ पकड़ लिया और गुस्से व प्यार की मिली ही हुई आवाज में बोली—आज इतनी देर क्यों हुई?

दोनों नये खिले हुए फूल थे—एक पर ओस की ताज़गी थी, दूसरा धूप से मुरझाया हुआ।

हरिदास—हां, आज देर हो गयी, तुम यहां क्यों बैठी रहीं?

देवकी—क्या करती, आग बुझी जाती थी, खाना न ठन्डा हो जाता।

हरिदास—तुम ज़रा-से-काम के लिए इतनी आग के सामने न बैठो करो। बाज आया गरम खाने से।

देवकी—अच्छा, कपड़े तो उतारो, आज इतनी देर क्यों की?

हरिदास—क्या बताऊँ, पिताजी ने ऐसा नाक में दम कर दिया है कि कुछ कहते नहीं बनता। इस रोज-रोज की झंझट से तो यही अच्छा कि मैं कहीं और नौकरी कर लूं।

लाला हरनामदास एक आटे की चक्की के मालिक थे। उनकी जवानी के दिनों में आस-पास दूसरी चक्की न थी। उन्होंने खूब धन कमाया। मगर अब वह हालत न थी। चक्कियां कीड़े-मकोड़ों की तरह पैदा हो गयी थीं, नयी मशीनों और ईजादों के साथ। उसके काम करनेवाले भी जोशीले नौजवान थे, मुस्तैदी से काम करते थे। इसलिए हरनामदास का कारखाना रोज गिरता जाता था। बूढ़े आदमियों को नयी चीजों से चिढ़ हो जाती है। वह लाला हरनामदास को भी थी। वह अपनी पुरानी मशीन ही को चलाते थे, किसी किस्म की तरक्की या सुधार को पाप समझते थे, मगर अपनी इस मन्दी पर कुढ़ा करते थे। हरिदास ने उनकी मर्जी के खिलाफ़ कालेजियेट शिक्षा प्राप्त की थी और उसका इरादा था कि अपने पिता के कारखाने को नये उसूलों पर चलाकर आगे बढ़ायें। लेकिन जब वह उनसे किसी परिवर्तन या सुधार का जिक्र करता तो लाला साहब जामे से बाहर हो जाते और बड़े गर्व से कहते—कालेज में पढ़ने से तजुर्बा नहीं आता। तुम अभी बच्चे हो, इस काम में मेरे बाल सफेद हो गये हैं, तुम मुझे सलाह मत दो। जिस तरह मैं कहता हूँ, काम किये जाओ।

कई बार ऐसे मौके आ चुके थे कि बहुत ही छोटे मसलों में अपने पिता की मर्जी के खिलाफ़ काम करने के जुर्म में हरिदास को सख्त फटकारें पड़ी थीं। इसी वजह से अब वह इस काम में कुछ उदासीन हो गया था और किसी दूसरे कारखाने में किस्मत आजमाना चाहता था जहां उसे अपने विचारों को अमली सूरत देने की ज्यादा सहूलतें हासिल हों।

देवकी ने सहानुभूतिपूर्वक कहा—तुम इस फिक्र में क्यों जान खपाते हो, जैसे वह कहें, वैसे ही करो, भला दूसरी जगह नौकरी कर लोगे तो वह क्या कहेंगे? और चाहे वे गुस्से के मारे कुछ न बोलें, लेकिन दुनिया तो तुम्हीं को बुरा कहेगी।

देवकीनयी शिक्षा के आभूषण से वंचित थी। उसने स्वार्थ का पाठ न पढ़ा था, मगर उसका पति अपने ‘अलमामेटर’ का एक प्रतिष्ठित सदस्य था।

उसे अपनी योग्यता पर पूरा भरोसा था। उस पर नाम कमाने का जोश। इसलिए वह बूढ़े पिता के पुराने ढरों को देखकर धीरज खो बैठता था। अगर अपनी योग्यताओं के लाभप्रद उपयोग की कोशिश के लिए दुनिया उसे बुरा कहे, तो उसकी परवाह न थी। झुंझलाकर बोला—कुछ मैं अमरित की घरिया पीकर तो नहीं आया हूँ कि सारी उम्र उनके मरने का इंतजार करूँ। मूर्खों की अनुचित टीका-टिप्पणियों के डर से क्या अपनी उम्र बरबारकर दूँ? मैं अपने कुछ हमउम्रों को जानता हूँ जो हरगिज मेरी-सी योग्यता नहीं रखते। लेकिन वह मोटर पर हवा खाने निकलते हैं, बंगलों में रहते हैं और शान से जिन्दगी बसर करते हैं तो मैं क्यों हाथ पर हाथ रखे जिन्दगी को अमर समझे बैठा रहूँ! सन्तोष और निस्पृहता का युग बीत गया। यह संघर्ष का युग है। यह मैं जानता हूँ कि पिता का आदर करना मेरा धर्म है। मगर सिद्धांतों के मामले में मैं उनसे क्या, किसी से भी नहीं दब सकता।

इसी बीच कहार ने आकर कहा—लाला जी थाली मांगते हैं।

लाल हरनामदास हिन्दू रस्म-रिवाज के बड़े पाबन्द थे। मगर बुढ़ापे के कारण चौक के चक्कर से मुक्ति पा चुके थे। पहले कुछ दिनों तक जाड़ों में रात को पूरियां न हजम होती थीं इसलिए चपातियां ही अपनी बैठक में मंगा लिया करते थे। मजबूरी ने वह कराया था जो हुज्जत और दलील के काबू से बाहर था।

हरिदास के लिए भी देवकी ने खाना निकाला। पहले तो वह हजरत बहुत दुखी नजर आते थे, लेकिन बघार की खुशबू ने खाने के लिए चाव पैदा कर दिया था। अक्सर हम अपनी आंख और नाक से हाजमे का काम लिया करते हैं।

2.

लाला हरनामदास रात को भले-चंगे सोये लेकिन अपने बेटे की गुस्ताखियाँ और कुछ अपने कारबार की सुस्ती और मन्दी उनकी आत्मा के लिए भयानक कष्ट का कारण हो गयीं और चाहे इसी उद्विग्नता का असर हो, चाहे बुढ़ापे का, सुबह होने से पहले उन पर लकवे का हमला हो गया। जबान बन्द हो गयी और चेहरा ऐंठ गया। हरिदासड़ाक्टर के पास दौड़ा। ढ़ाक्टरआये, मरीज़ को देखा और बोले—डरने की कोई बात नहीं। सेहत होगी मगर तीन महीने से कम न लगेंगे। चिन्ताओं के कारण यह हमला हुआ है इसलिए कोशिश करनी चाहिये कि वह आराम से सोयें, परेशान न हों और जबान खुल जाने पर भी जहां तक मुमकिन हो, बोलने से बचें।

बेचारी देवकी बैठी रो रही थी। हरिदास ने आकर उसको सान्त्वना दी, और फिर ढ़ाक्टर के यहां से दवा लाकर दी। थोड़ी देर में मरीज़ को होश आया, इधर-उधर कुछ खोजती हुई-सी निगाहों से देखा कि जैसे कुछ कहना चाहते हैं और फिर इशारे से लिखन के लिए कागज मांगा। हरिदास ने कागज और पेंसिल रख दी, तो बूढ़े लाला साहब ने हाथों को खूब सम्हालकर लिख—इन्तजाम दीनानाथ के हाथ मे रहे।

ये शब्द हरिदास के हृदय में तीर की तरह लगे। अफ़सोस! अब भी मुझ पर भरोसा नहीं! यानी कि दीनानाथ मेरा मालिक होगा और मैं उसका गुलाम बनकर रहूँगा! यह नहीं होने का। कागज़ लिए देवकी के पास आये और बोले—लालाजी ने दीनानाथ को मैनेजर बनाया है, उन्हें मुझ पर इतना एतबार भी नहीं हैं, लेकिन मैं इस मौके को हाथ से न दूँगा। उनकी बीमारी का अफ़सोस तो जरूर है मगर शायद परमात्मा ने मुझे अपनी योग्यता दिखलाने का यह अवसर दिया है। और इससे मैं जरूर फायदा उठाऊँगा। कारखाने के कर्मचारियों ने इस दुर्घटना की खबर सुनी तो बहुत घबराये। उनमें कई निकम्मे, बेमसरफ़ आदमी भरे हुए थे, जो सिर्फ़ खुशामद और चिकनी-चुपड़ी बातों की रोटी खाते थे। मिस्त्री ने कई दूसरे कारखानों में मरम्मत का काम

उठा लिया था रोज किसी-न-किसी बहाने से खिसक जाता था। फायरमैन और मशीनमैन दिन को झूठ-मूठ चक्की की सफाई में काटते थे और रात के काम करके ओवर टाइम की मजदूरी लिया करते थे। दीनानाथ जरूर होशियार और तजुर्बेकार आदमी था, मगर उसे भी काम करने के मुकाबिले में 'जी हां' रटते रहने में ज्यादा मजा आता था। लाला हरनामदास मजदूरी देन में बहुत हीले-हवाले किया करते थे और अक्सर काट-कपट के भी आदी थे। इसी को वह कारबार का अच्छा उसूल समझाते थे।

हरिदास ने कारखाने में पहुँचते ही साफ शब्दों कह दिय कि तुम लोगों को मेरे वक्त में जी लगाकर काम करना होगा। मैं इसी महीने में काम देखकर सब की तरक्की करूंगा। मगर अब टाल-मटोल का गुजर नहीं, जिन्हें मंजूर न हो वह अपना बोरिया-बिस्तर सम्हालें और फिर दीनानाथ को बुलाकर कहा- भाई साहब, मुझे खूब मालूम है कि आप होशियार और स्खूँ-बूझ रखनेवाले आदमी हैं। आपने अब तक यह यहां का जो रंग देखा, वही अख्तियार किया है। लेकिन अब मुझे आपके तजुर्बे और मेहनत की जरूरत है। पुराने हिसाबों की जांच-पड़ताल किजिए। बाहर से काम मेरा जिम्मा है लेकिन यहां का इन्तजाम आपके सुपुर्द है। जो कुछ नफा होगा, उसमें आपका भी हिस्सा होगा। मैं चाहता हूँ कि दादा की अनुपस्थिति में कुछ अच्छा काम करके दिखाऊँ।

इस मुस्तैदी और चुस्ती का असर बहुत जल्द कारखाने में नजर आने लगा। हरिदास ने खूब इश्तहार बंटवाये। उसका असर यह हुआ कि काम आने लगा। दीनानाथ की मुस्तैदी की बदौलत ग्राहकों को नियत समय पर और किफायत से आटा मिलने लगा। पहला महीना भी खत्म न हुआ था कि हरिदास ने नयी मशीन मंगवायी। थोड़े अनुभवी आदमी रख लिये, फिर क्या था, सारे शहर में इस कारखाने की धूम मच गयी। हरिदास ग्राहकों से इतनी अच्छी तरह से पेश आता कि जो एक बार उससे मुआमला करता वह हमेशा के लिए उसका खरीदार बन जाता। कर्मचारियों के साथ उसका सिद्धांत था—

काम सख्त और मजदूरी ठीक। उसके ऊंचे व्यक्तित्व का भी स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ा। करीब-करीब सभी कारखानों का रंग फीका पड़ गया। उसने बहुत ही कम नफे पर ठेले ले लिये। मशीन को दम मारने की मोहलत न थी, रात और दिन काम होता था। तीसरा महीना खत्म होते-होते उस कारखाने की शकल ही बदल गयी। हाते में घुसते ही ठेले और गाड़ियों की भीड़ नज़र आती थी। कारखाने में बड़ी चहल-पहल थी-हर आदमी अपने अपने काम में लगा हुआ। इसके साथ की प्रबन्ध कौशल का यह वरदान था कि भद्दी हड़बड़ी और जल्दबाजी का कहीं निशान न था।

3.

लाला हरनामदास धीरे-धीरे ठीक होने लगे। एक महीने के बाद वह रूककर कुछ बोलने लगे। डाक्टर की सख्त ताकीद थी कि उन्हें पूरी शान्ति की स्थिति में रखा जाय मगर जब उनकी जबान खुली उन्हें एक दम को भी चैन न था। देवकी से कहा करते—सारा कारबार मिट्टी में मिल जाता है। यह लड़का मालूम नहीं क्या कर रहा है, सारा काम अपने हाथ में ले रखा है। मैंने ताकीद कर दी थी कि दीनानाथ को मैनेजर बनाना लेकिन उसने जरा भी परवाह न की। मेरी सारी उम्र की कमाई बरबाद हुई जाती है।

देवकी उनको सान्त्वना देती कि आप इन बातों की आशंका न करें। कारबार बहुत खूबी से चल रहा है और खूब नफ़ा हो रहा है। पर वह भी इस मामले में तूल देते हुए डरती थी कि कहीं लक़वे का फिर हमला न हो जाय। हूं-हां कहकर टालना चाहती थी। हरिदास ज्यों ही घर में आता, लाला जी उस पर सवाल्यों की बौछार कर देते और जब वह टालकर कोई दूसरा जिक्र छोड़ देता तो बिगड़ जाते और कहते—जालिम, तू जीते जी मेरे गले पर छुरी फेर रहा है। मेरी पूंजी उड़ा रहा है। तुझे क्या मालूम कि मैंने एकएक कौड़ी किस मशक्कत से जमा की है। तूने दिल में ठान ली है कि इस बुढ़ापे में मुझे गली-गली ठोकर खिलाये, मुझे कौड़ी-कौड़ी का मुहतात बनाये।

हरिदास फटकार का कोई जवाब न देता क्योंकि बात से बात बढ़ती है। उसकी चुप्पी से लाला साहब को यकीन हो जाता कि कारखाना तबाह हो गया।

एक रोज देवकी ने हरिदास से कहा—अभी कितने दिन और इन बातों का लालाजी से छिपाओगे?

हरिदास ने जवाब दिया—मैं तो चाहता हूँ कि नयी मशीन का रुपया अदा हो जाय तो उन्हें ले जाकर सब कुछ दिखा दूँ। तब तक डाक्टर साहब की हिदायत के अनुसार तीन महीने पूरे भी हो जायेंगे।

देवकी—लेकिन इस छिपाने से क्या फायदा, जब वे आठों पहर इसी की रट लगाये रहते हैं। इससे तो चिन्ता और बढ़ती ही है, कम नहीं होती। अससे तो यही अच्छा है, कि उनसे सब कुछ कह दिय जाए।

हरिदास—मेरे कहने का तो उन्हें यकीन आ चुका। हां, दीनानाथ कहें तो शायद यकीन हो

देवकी—अच्छा तो कल दीनानाथ को यहां भेज दो। लालाजी उसे देखते ही खुद बुला लेंगे, तुम्हें इस रोज-रोज की डांट-फटकर से तो छुट्टी मिल जाएगी।

हरिदास—अब मुझे इन फटकारों का जरा भी दुख नहीं होता। मेरी मेहनत और योग्यता का नतीजा आंखों के सामने मौजूद है। जब मैंने कारखाना आने हाथ में लिया था, आमदनी और खर्च का मीज़ान मुश्किल से बैठता था। आज पांच से का नफा है। तीसरा महीना खत्म होनेवाला है और मैं मशीन की आधी कीमत अदा कर चुका। शायद अगले महीने दो महीने में पूरी कीमत अदा हो जायेगी। उस वक्त से कारखाने का खर्च तिगुने से ज्यादा है लेकिन आमदनी पंचगुनी हो गयी है। हजरत देखेंगे तो आंखें खुल जाएंगी। कहां हाते में उल्लू बोलते थे। एक मेज़ पर बैठे आप ऊंघा करते थे, एक पर दीनानाथ कान कुरेदा करता था। मिस्त्री और फायरमैन ताश खेलते थे। बस, दो-चार घण्टे चक्की चल जाती थी। अब दम मारने की फुरसत नहीं है। सारी ज़िन्दगी में जो कुछ न कर सके वह मैंने तीन महीने में करके दिखा दिया। इसी तजुर्बे और कार्रवाई पर आपको इतना घमण्ड था। जितना काम वह एक महीने में करते थे उतना मैं रोज कर डालता हूँ।

देवकी ने भर्त्सनापूर्ण नेत्रों से देखकर कहा—अपने मुंह मियां मिट्टू बनना कोई तुमसे सीख ले! जिस तरह मां अपने बेटे को हमेशा दुबला ही समझती है, उसीतरह बाप बेटे को हमेशा नादान समझा करता है। यह उनकी ममता है, बुरा मानने की बात नहीं है।

हरिदास ने लज्जित होकर सर झुका लिया।

दूसरे रोज दीनानाथ उनको देखने के बहाने से लाला हरनामदास की सेवा में उपस्थित हुआ। लालाजी उसे देखते ही तकिये के सहारे उठ बैठे और पागलों की तरह बेचैन होकर पूछा—क्यों, कारबार सब तबाह हो गया कि अभी कुछ कसर बाकी है! तुम लोगों ने मुझे मुर्दा समझ लिया है। कभी बात तक न पूछी। कम से कम मुझे ऐसी उम्मीद न थी। बहू ने मेरी तीमारदारी ने की होती तो मर ही गया होती

दीनानाथ—आपका कुशल-मंगल रोज बाबू साहब से पूछ लिया करता था। आपने मेरे साथ जो नेकियां की हैं, उन्हें मैं भूल नहीं सकता। मेरा एक-एक रोआं आपका एहसानमन्द है। मगर इस बीच काम ही कुछ एकस था कि हाज़िर होने की मोहलत न मिली।

हरनामदास—खैर, कारखाने का क्या हाल है? दीवाला होने में क्या कसर बाकी है?

दीनानाथ ने ताज्जुब के साथ कहा—यह आपसे किसने कह दिया कि दीवाला होनेवाला है? इस अरसे में कारोबार में जो तरक्की हुई है, वह आप खुद अपनी आंखों से देख लेंगे।

हरनामदासव्यंग्यपूर्वक बोले—शायद तुम्हारे बाबू साहब ने तुम्हारी मनचाही तरक्की कर दी! अच्छा अब स्वामिभक्ति छोड़ो और साफ बतलाओ। मैंने ताकीद कर दी थी कि कारखाने का इन्तज़ाम तुम्हारे हाथ में रहेगा। मगर शायद हरिदास ने सब कुछ अपने हाथ में रखा।

दीनानाथ—जी हां, मगर मुझे इसका जरा भी दुख नहीं। वही रइस काम के लिए ठीक भी थे। जो कुछ उन्होंने कर दिखाया, वह मुझसे हरगिज न हो सकता।

हरनामदास—मुझे यह सुन-सुनकर हैरत होती है। बतलाओ, क्या तरक्की हुई?

दीनानाथ—तफ़सील तो बहुत ज्यादा होगी, मगर थोड़े में यह समझ लीजिए कि पहले हम लोग जितना काम एक महीने में करते थे उतना अब

रोज होता है। नयी मशीन आयी थी, उसकी आधी, कीमत अदा हो चुकी है। वह अक्सर रात को भी चलती है। ठाकुर कम्पनी का पांच हजार मन आटे का ठेका लिया था, वह पूरा होनेवाला है। जगत राम बनवारी लाल से कमसरियत का ठेका लिया है। उन्होंने हमको पांच सौ बोरे महावार का बयाना दिया है। इसी तरह और फुटकर काम कई गुना बढ़ गया है। आमदनी के साथ खर्च भी बढ़े हैं। कई आदमी नए रखे गये हैं, मुलाजिमों को मजदूरी के साथ कमीशन भी मिलता है मगर खालिस नफा पहले के मुकाबले में चौगुने के करीब है।

हरनामदास ने बड़े ध्यान से यह बात सुनी। वह गौर से दीनानाथ के चेहरे की तरफ देख रहे थे। शायद उसके दिन में पैठकर सच्चाई की तह तक पहुँचना चाहते थे। सन्देहपूर्ण स्वर में बोले—दीननाथ, तुम कभी मुझसे झूठ नहीं बोलते थे लेकिन तो भी मुझे इन बातों पर यकीन नहीं आता और जब तक अपनी आंखों से देख न लूंगा, यकीन न आयेगा।

दीनानाथ कुछ निराश होकर बिदा हुआ। उसे आशा थी कि लाला साहब तरक्की और कारगुजारी की बात सुनते ही फूले न समायेंगे और मेरी मेहनत की दाद देंगे। उस बेचारे को न मालूम था कि कुछ दिलों में सन्देह की जड़ इतनी मज़बूत होती है कि सबूत और दलील के हमले उस पर कुछ असर नहीं कर सकते। यहां तक कि वह अपनी आंख से देखने को भी धोखा या तिलिस्म समझता है।

दीनानाथ के चले जाने के बाद लाला हरनामदास कुछ देर तक गहरे विचार में डूबे रहे और फिर यकायक कहार से बग़्गी मंगवायी, लाठी के सहारे बग़्गी में आ बैठे और उसे अपने चक्कीघर चलने का हुक्म दिया।

दोपहर का वक्त था। कारखानों के मजदूर खाना खाने के लिए गोल के गोल भागे चले आते थे मगर हरिदास के कारखाने में काम जारी था। बग़्गीहाते में दाखिल हुई, दोनों तरफ फूलों की कतारें नजर आयीं, माली क्यारियों में पानी दे रहा था। ठेले और गाड़ियों के मारे बग़्गी को निकलने की

जगह न मिलती थी। जिधर निगाह जाती थी, सफाई और हरियाली नजर आती थी।

हरिदास अपने मुहर्रिर को कुछ खतों का मसौदा लिखा रहा था कि बूढ़े लाला जी लाठी टेकते हुए कारखाने में दाखिल हुए। हरिदास फौरन उड़ खड़ा हुआ और उन्हें हाथों से सहारा देते हुए बोला—‘आपने कहला क्यों न भेजा कि मैं आना चाहता हूँ, पालकी मंगवा देता। आपको बहुत तकलीफ़ हुई।’ यह कहकर उसने एक आराम-कुर्सी बैठने के लिए खिसका दी। कारखाने के कर्मचारी दौड़े और उनके चारों तरफ बहुत अदब के साथ खड़े हो गये। हरनामदास कुर्सी पर बैठ गये और बोरों के छत चूमनेवाले ढेर पर नजर दौड़ाकर बोले—मालूम होता है दीनानाथ सच कहता था। मुझे यहां कई नयी सूरतें नज़र आती हैं। भला कितना काम रोज होता है? भला कितना काम रोज होता है?

हरिदास—आजकल काम ज्यादा आ गया था इसलिए कोई पांच सौ मन रोजाना तैयार हो जाता था लेकिन औसत ढाई सौ मन का रहेगा। मुझे नयी मशीन की कीमत अदा करनी थी इसलिए अक्सर रात को भी काम होता है।

हरनामदास—कुछ क़र्ज लेना पड़ा?

हरिदास—एक कौड़ी नहीं। सिर्फ मशीन की आधी कीमत बाकी है।

हरनामदास के चेहरे पर इत्मीनाना का रंग नजर आया। संदेह ने वह विश्वास को जगह दी। प्यार-भरी आंखों से लड़के की तरफ देखा और करुण स्वर में बोले—बेटा, मैंने तुम्हारे ऊपर बड़ा जुल्म किया, मुझे माफ़ करों। मुझे आदमियों की पहचान पर बड़ा घमण्ड था, लेकिन मुझे बहुत धोखा हुआ। मुझे अब से बहुत पहले इस काम से हाथ खींच लेना चाहिए था। मैंने तुम्हें बहुत नुकसान पहुँचाया। यह बीमारी बड़ी मुबारक है जिसने तुम्हारी परख का मौका दिया और तुम्हें लियाक़त दिखाने का। काश, यह हमला पांच

साल पहले ही हुआ होता। ईश्वर तुम्हें खुश रखे और हमेशा उन्नति दे, यही तुम्हारे बूढ़े बाप का आशीर्वाद है।

—‘प्रेम बत्तीसी’ से

वासना की कड़ियाँ

बहादुर, भाग्यशाली क़ासिममुलतान की लड़ाई जीतकर घमंड के नशे से चूर चला आता था। शाम हो गयी थी, लश्कर के लोग आरामगाह की तलाश में नज़रें दौड़ाते थे, लेकिन क़ासिम को अपने नामदार मालिक की ख़िदमत में पहुंचन का शौक उड़ाये लिये आता था। उन तैयारियों का ख़याल करके जो उसके स्वागत के लिए दिल्ली में की गयी होंगी, उसका दिल उमंगों से भरपूर हो रहा था। सड़कें बन्दनवारों और झंडियों से सजी होंगी, चौराहों पर नौबतखाने अपना सुहाना राग अलापेंगे, ज्योंहि मैं सरे शहर के अन्दर दाखिल हूँगा। शहर में शोर मच जाएगा, तोपें अगवानी के लिए जोर-शोर से अपनी आवाजें बूलंद करेंगी। हवेलियों के झरोखों पर शहर की चांद जैसी सुन्दर स्त्रियां आँखें गड़ाकर मुझे देखेंगी और मुझ पर फूलों की बारिश करेंगी। जड़ाऊ हौदों पर दरबार के लोग मेरी अगवानी को आयेंगे। इस शान से दीवाने खास तक जाने के बाद जब मैं अपने हुजुर की ख़िदमत में पहुँचूँगा तो वह बाँहे खोले हुए मुझे सीने से लगाने के लिए उठेंगे और मैं बड़े आदर से उनके पैरों को चूम लूँगा। आह, वह शुभ घड़ी कब आयेगी? क़ासिम मतवाला हो गया, उसने अपने चाव की बेसुधी में घोड़े को एड़ लगायी।

कासिम लश्कर के पीछे था। घोड़ा एड़ लगाते ही आगे बढ़ा, कैदियों का झुण्ड पीछे छूट गया। घायल सिपाहियों की डोलियां पीछे छूटीं, सवारों का दस्ता पीछे रहा। सवारों के आगे मुलतान के राजा की बेगमों और मैं उन्हें और शहजादियों की पनसों और सुखपाल थे। इन सवारियों के आगे-पीछे हथियारबन्द ख्वाजासराओं की एक बड़ी जमात थी। क़ासिम अपने रौ में घोड़ा बढ़ाये चला आता था। यकायक उसे एक सजी हुई पालकी में से दो आंखें झाँकती हुई नजर आयीं। क़ासिम ठिठक गया, उसे मालूम हुआ कि मेरे हाथों के तोते उड़ गये, उसे अपने दिल में एक कंपकंपी, एक कमजोरी और

बुद्धि पर एक उन्माद-सा अनुभव हुआ। उसका आसन खुद-ब-खुद ढीला पड़ गया। तनी हुई गर्दन झुक गयी। नजरें नीची हुईं। वह दोनों आंखें दो चमकते और नाचते हुए सितारों की तरह, जिनमें जादू कासा आकर्षण था, उसके आदिल के गोशे में बैठीं। वह जिधर ताकता था वहीं दोनों उमंग की रोशनी से चमकते हुए तारे नजर आते थे। उसे बर्छी नहीं लगी, कटार नहीं लगी, किसी ने उस पर जादू नहीं किया, मंतर नहीं किया, नहीं उसे अपने दिल में इस वक्त एक मजेदार बेसुधी, दर्द की एक लज्जत, मीठी-मीठी-सी एक कैफ्रियत और एक सुहानी चुभन से भरी हुई रोने की-सी हालत महसूस हो रही थी। उसका रोने को जी चाहता था, किसी दर्द की पुकार सुनकर शायद वह रो पड़ता, बेताब हो जाता। उसका दर्द का एहसास जाग उठा था जो इश्क की पहली मंजिल है।

क्षण-भर बाद उसने हुक्म दिया—आज हमारा यहीं कयाम होगा।

2.

आधी रात गुजर चुकी थी, लश्कर के आदमी मीठी नींद सो रहे थे। चारों तरफ़ मशालें जलती थीं और तिलासे के जवान जगह-जगह बैठे जम्हाइयां लेते थे। लेकिन क़ासिम की आंखों में नींद न थी। वह अपने लम्बे-चौड़े पुरलुत्फ़ खेमे में बैठा हुआ सोच रहा था—क्या इस जवान औरत को एक नजर देख लेना कोई बड़ा गुनाह है? माना कि वह मुलतान के राजा की शहजादी है और मेरे बादशाह अपने हरम को उससे रोशन करना चाहते हैं लेकिन मेरी आरजू तो सिर्फ़ इतनी है कि उसे एक निगाह देख लूँ और वह भी इस तरह कि किसी को खबर न हो। बस। और मान लो यह गुनाह भी हो तो मैं इस वक्त वह गुनाह करूँगा। अभी हजारों बेगुनाहों को इन्हीं हाथों से क़त्ल कर आया हूँ। क्या खुदा के दरबार में गुनाहों की माफ़ी सिर्फ़ इसलिए हो जाएगी कि बादशाह के हुक्म से किये गये? कुछ भी हो, किसी नाज़नीन को एक नजर देख लेना किसी की जान लेने से बड़ा गुनाह नहीं। कम से कम मैं ऐसा नहीं समझता।

क़ासिमदीनदार नौजवान था। वह देर तक इस काम के नैतिक पहलू पर ग़ौर करता रहा। मुलतान को फ़तेह करने वाला हीरो दूसरी बाधाओं को क्यों खयाल में लाता?

उसने अपने खेमे से बाहर निकलकर देखा, बेगमों के खेमे थोड़ी ही दूर परगड़े हुए थे। क़ासिम ने तजान-बूझकर अपना खेमा उसके पास लगाया था। इन खेमों के चारों तरफ़ कई मशालें जल रही थीं और पांच हब्शी ख्वाजासरा रंगी तलवारें लिये टहल रहे थे। क़ासिम आकर मसनद पर लेट गया और सोचने लगा—इन कम्बख़्तों को क्या नींद न आयेगी? और चारों तरफ़ इतनी मशाले क्यों जला रखी हैं? इनका गुल होना जरूरी है। इसलिए पुकारा—मसरूर।

—हुजुर, फ़रमाइए?

—मशालें बुझा दो, मुझे नींद नहीं आती।

-हुजूर, रात अंधेरी है।

-हां।

-जैसी हुजूर की मर्जी।

ख्वाजासरा चला गया और एक पल में सब की सब मशालें गुल हो गयीं, अंधेरा छा गया। थोड़ी देर में एक औरत शहजादी के खेमे से निकलकर पूछा-मसरूम, सरकमार पूछती हैं, यह मशालें क्यों बुझा दी गयीं?

मशरूम बोला-सिपहदार साहब की मर्जी। तुम लोग होशियार रहना, मुझे उनकी नियत साफ़ नहीं मालूम होती।

3.

कासिम उत्सुकता से व्यग्र होकर कभी लेटता था, कभी उठ बैठता था, कभी टहलने लगता था। बार-बार दरवाजे पर आकर देखता, लेकिन पांचों ख्वाजासरादेवों की तरह खड़े नजर आते थे। कासिम को इस वक्त यही धुन थी कि शाहजादी का दर्शन क्योंकर हो। अंजाम की फ़िक्र, बदनामी का डर और शाही गुस्से का ख़तरा उस पुरज़ोर ख्वाहिश के नीचे दब गया था।

घड़ियाल ने एक बजाया। कासिम यों चौकं पड़ा गोया कोई अनहोनी बात हो गयी। जैसे कचहरी में बैठा हुआ कोई फ़रियाद अपने नाम की पुकार सुनकर चौंक पड़ता है। ओ हो, तीन घंटों से सुबह हो जाएगी। खेमे उखड़ जाएंगे। लश्कर कूच कर देगा। वक्त तंग है, अब देर करने की, हिचकचाने की गुंजाइश नहीं। कल दिल्ली पहुँच जायेंगे। आरमान दिल में क्यों रह जाये, किसी तरह इन हरामखोर ख्वाजासराओं को चकमा देना चाहिए। उसने बाहर निकल आवाज़ दी-मसरूर।

--हुजूर, फ़रमाइए।

--होशियार हो न?

--हुजूर पलक तक नहीं झपकी।

--नींद तो आती ही होगी, कैसी ठंडी हवा चल रही है।

--जब हुजूर ही ने अभी तक आराम नहीं फ़रमाया तो गुलामों को क्योंकर नींद आती।

--मैं तुम्हें कुछ तकलीफ़ देना चाहता हूँ।

--कहिए।

--तुम्हारे साथ पांच आदमी है, उन्हें लेकर जरा एक बार लश्कर का चक्कर लगा आओ। देखो, लोग क्या कर रहे हैं। अक्सर सिपाही रात को जुआ खेलते हैं। बाज आस-पास के इलाक़ों में जाकर ख़रमस्ती किया करते हैं। जरा होशियारी से काम करना।

मसरूर-मगर यहां मैदान खाली हो जाएगा।

क्रासिम-मे तुम्हारे आने तक खबरदार रहूँगा।

मसरूर-जो मर्जी हुजूर।

क्रासिम-मैने तुम्हें मोतबर समझकर यह ख़िदमत सुपुर्द की है, इसका मुआवजा इंशाअल्ला तुम्हें साकर से अता होगा।

मसरूम ने दबी ज़बान से कहा-बन्दा आपकी यह चालें सब समझता है। इंशाअल्ला सरकार से आपको भी इसका इनाम मिलेगा। और तब जोर बोला-आपकी बड़ी मेहरबानी है।

एक लम्हें में पाँचोंख्वाजासरा लश्कर की तरफ़ चले। क्रासिम ने उन्हें जाते देखा। मैदान साफ़ हो गया। अब वह बेधड़क खेमें में जा सकता था। लेकिन अब क्रासिम को मालूम हुआ कि अन्दर जाना इतना आसान नहीं है जितना वह समझा था। गुनाह का पहलू उसकी नजर से ओझल हो गया था। अब सिर्फ़ ज़ाहिरी मुश्किलों पर निगाह थी।

4.

कासिम दबे पांव शहजादी के खेमे के पास आया, हालांकि दबे पांव आने की जरूरत न थी। उस सन्नाटे में वह दौड़ता हुआ चलता तो भी किसी को खबर न होती। उसने खेमे से कान लगाकर सुना, किसी की आहट न मिली। इत्मीनान हो गया। तब उसने कमर से चाकू निकाला और कांपते हुए हाथों से खेमे की दो-तीन रस्सियां काट डालीं। अन्दर जाने का रास्ता निकल आया। उसने अन्दर की तरफ झांका। एक दीपक जल रहा था। दो बांदियां फर्श पर लेटी हुई थीं और शहजादी एक मखमली गद्दे पर सो रही थी। कासिम की हिम्मत बढ़ी। वह सरककर अन्दर चला गया, और दबे पांव शहजादी के करीब जाकर उसके दिल-फ़रेब हुस्न का अमृत पीने लगा। उसे अब वह भय न था जो खेमे में आते वक्त हुआ था। उसने जरूरत पड़ने पर अपनी भागने की राह सोच ली थी।

कासिम एक मिनट तक मूरत की तरह खड़ा शहजादी को देखता रहा। काली-काली लटें खुलकर उसके गालों को छिपाये हुए थी। गोया काले-काले अक्षरों में एक चमकता हुआ शायराना खयाल छिपा हुआ था। मिट्टी की अस दुनिया में यह मजा, यह घुलावट, वह दीप्ति कहां? कासिम की आंखें इस दृश्य के नशे में चूर हो गयीं। उसके दिल पर एक उमंग बढ़ाने वाला उन्माद सा छा गया, जो नतीजों से नहीं डरता था। उत्कण्ठा ने इच्छा का रूप धारण किया। उत्कण्ठा में अधिरता थी और आवेश, इच्छा में एक उन्माद और पीड़ा का आनन्द। उसके दिल में इस सुन्दरी के पैरों पर सर मलने की, उसके सामने रोने की, उसके क़दमों पर जान दे देने की, प्रेम का निवेदन करने की, अपने गम का बयान करने की एक लहर-सी उठने लगी वह वासना के भवंरमे पड़ गया।

5.

कासिम आध घंटे तक उस रूप की रानी के पैरो के पास सर झुकाये सोचता रहा कि उसे कैसे जगाऊँ। ज्यों ही वह करवट बदलती वह डर के मारे थरथरा जाता। वह बहादुरी जिसने मुलतान को जीता था, उसका साथ छोड़े देती थी।

एकाएक कासिम की निगाह एक सुनहरे गुलाबपोश पर पड़ी जो करीब ही एक चौकी पर रखा हुआ था। उसने गुलाबपोश उठा लिया और खड़ा सोचता रहा कि शहजादी को जगाऊँ या न जगाऊँ या न जगाऊँ? सेने की डली पड़ी हुई देखकर हमं उसके उठाने में आगा-पीछा होता है, वही इस वक्त उसे हो रहा था। आखिरकार उसने कलेजा मजबूत करके शहजादी के कान्तिमानमुखमण्डल पर गुलाब के कई छींटे दिये। दीपक मोतियों की लड़ी से सज उठा।

शहजादी ने चौंकर आंखें खोलीं और कासिम को सामने खड़ा देखकर फौरन मुंह पर नक्राब खींच लिया और धीरे से बोली-मसरूर।

कासिम ने कहा-मसरूर तो यहां नहीं है, लेकिन मुझे अपना एक अदना जांबाज़ खादिम समझिए। जो हुक्त होगा उसकी तामील में बाल बराबर उज्र न होगा।

शहजादी ने नक्राब और खींच लिया और खेमे के एक कोने में जाकर खड़ी हो गयी।

कासिम को अपनी वाक्-शक्ति का आज पहली बार अनुभव हुआ। वह बहुत कम बोलने वाला और गम्भीर आदमी था। अपने हृदय के भावों को प्रकट करने में उसे हमेशा झिझक होती थी लेकिन इस वक्त शब्द बारिश की बूंदों की तरह उसकी जबान पर आने लगे। गहरे पानी के बहाव में एक दर्द का स्वर पैदा हो जाता है। बोला-मैं जानता हूँ कि मेरी यह गुस्ताखी आपकी नाजुक तबियत पर नागवार गुजरी है। हुजूर, इसकी जो सजा मुनाशिव समझें उसके लिए यह सर झुका हुआ है। आह, मैं ही वह बदनसीब, काले दिल का

इंसान हूँ जिसने आपके बुजुर्ग बाप और प्यारे भाईयों के खून से अपना दामन नापाक किया है। मेरे ही हाथों मुलतान के हजारों जवान मारे गये, सल्तनत तबाह हो गयी, शाही खानदान पर मुसीबत आयी और आपको यह स्याह दिन देखना पडा। लेकिन इस वक़्त आपका यह मुजरिम आपके सामने हाथ बांधे हाज़िर है। आपके एक इशारे पर वह आपके कदमों पर न्योठावर हो जायेगा और उसकी नापाक जिन्दगी से दुनिया पाक हो जायेगी। मुझे आज मालूम हुआ कि बहादुरी के परदे में वासना आदमी से कैसे-कैसे पाप करवाती है। यह महज लालच की आग है, राख में छिपी हुई सिर्फ़ एक कातिल जहर है, खुशनुमा शीशे में बन्द! काश मेरी आंखें पहले खुली होतीं तो एक नामवर शाही खानदान यों खाक में न मिल जाता। पर इस मुहब्बत की शमा ने, जो कल शाम को मेरे सीने में रोशन हुई, इस अंधेरे कोने को रोशनी से भर दिया। यह उन रूहानी जज्बात का फैज है, जो कल मेरे दिल में जाग उठे, जिन्होंने मुझे लाजच की कैद से आज़ाद कर दिया।

इसके बाद क़ासिम ने अपनी बेक्रारी और दर्दे दिल और वियोग की पीड़ा का बहुत ही करूणशदों में वर्णन किया, यहां तक कि उसके शब्दों का भण्डार खत्म हो गया। अपना हाल कह सुनाने की लालसा पूरी हो गयी।

6.

लेकिन वह वासना बन्दी वहां से हिला नहीं। उसकी आरजुओं ने एक कदम और आगे बढ़ाया। मेरी इस रामकहानी का हासिल क्या? अगरसिर्फ़ दर्द दिल ही सुनाना था, तो किसी तसवीर को, सुना सकता था। वह तसवीर इससे ज्यादा ध्यान से और खामाशी से मेरे गम की दास्तान सुनती। काश, मैं भी इस रूप की रानी की मिठी आवाज सुनता, वह भी मुझसे कुछ अपने दिल का हाल कहती, मुझे मालूम होता कि मेरे इस दर्द के किस्से का उसके दिल पर क्या असर हुआ। काश, मुझे मालूम होता कि जिस आग में मैं फुंका जा रहा हूँ, कुछ उसकी आंच उधर भी पहुँचती है या नहीं। कौन जाने यह सच हो कि मुहब्बत पहले माशूक के दिल में पैदा होती है। ऐसा न होता तो वह सब्र को तोड़ने वाली निगाह मुझ पर पड़ती ही क्यों? आह, इस हुस्न की देवी की बातों में कितना लुप्त आयेगा। बुलबुल का गाना सुन सकता उसकी आवाज कितनी दिलकश होगी, कितनी पाकीजा, कितनी नूरानी, अमृत में डूबी हुई और जो कहीं वह भी मुझसे प्यार करती हो तो फिर मुझसे ज्यादा खुशनसीब दुनिया में और कौन होगा?

इस खयाल से क्रासिम का दिल उछलने लगा। रगों में एक हरकत-सी महसूस हुई। इसके बावजूद कि बांदियों के जग जाने और मसरूर की वापसी का धड़का लगा हुआ था, आपसी बातचीत की इच्छा ने उसे अधीर कर दिया, बोला-हुस्न की मलका, यह जख्मी दिल आपकी इनायत की नज़र की मुस्तहक है। कुड़ उसके हाल पर रहम न कीजिएगा?

शहजादी ने नकाब की ओट से उसकी तरफ़ ताका और बोली—जो खुद रहम का मुस्तहक हो, वह दूसरों के साथ क्या रहम कर सकता है? क्रैद में तड़पते हुए पंछी से, जिसके न बोल हैं न पर, गाने की उम्मीद रखना बेकार है। मैं जानती हूँ कि कल शाम को दिल्ली के ज़ालिम बादशाह के सामने बांदियों की तरह हाथ बांधे खड़ी हूंगी। मेरी इज्जत, मेरे रूतबे और मेरी शान का दारोमदार खानदानी इज्जत पर नहीं बल्कि मेरी सूरत पर होगा। नसीब का

हक पूरा हा जायेगा। कौन ऐसा आदमी है जो इस जिन्दगी की आरजू रखेगा? आह, मुल्तान की शहजादी आज एक जालिम, चालबाज, पापी आदमी की वासना का शिकार बनने पर मजबूर है। जाइए, मुझे मेरे हाल पर छोड़ दीजिए। मैं बदनसीब हूँ, ऐसा न हो कि मेरे साथ आपको भी शाही गुस्से का शिकार बनना पड़े। दिल मे कितनी ही बातें है मगर क्यों कहूँ, क्या हासिल? इस भेद का भेद बना रहना ही अच्छा है। आपमें सच्ची बहादुरी और खुद्वारी है। आप दुनिया में अपना नाम पैदा करेंगे, बड़े-बड़े काम करेंगे, खुदा आपके इरादों में बरकतदे—यही इस आफ़्रप की मारी हुई औरत की दुआ है। मैं सच्चे दिल से कहती हूँ कि मुझे आपसे कोई शिकायत नहीं है। आज मुझे मालूम हुआ कि मुहब्बत बैर से कितनी पाक होती है। वह उस दामन में मुंह छिपाने से भी परहेज नहीं करती जो उसके अजीजों के खून से लिथड़ा हुआ हो। आह, यह कम्बख्त दिल उबला पड़ता है। अपने काल बन्द कर लीजिए, वह अपने आपे में नहीं है, उसकी बातें न सुनिए। सिर्फ़ आपसे यही बिनती है कि इस ग़रीब को भूल न जाइएगा। मेरे दिल में उस मीठे सपने की याद हमेशा ताजा रहेगी, हरम की क़ैद में यही सपना दिल को तसकीन देता रहेगा, इस सपने को तोड़िए मत। अब खुदा के वास्ते यहां से जाइए, ऐसा न हो कि मसरूर आ जाए, वह एक ज़ालिम है। मुझे अंदेशा है कि उसने आपको धोखा दिया, अजब नहीं कि यहीं कहीं छुपा बैठा हो, उससे होथियार रहिएगा। खुदा हाफ़िज़!

7.

कासिम पर एक बेसुधी की सी हालत छा गयी। जैसे आत्मा का गीत सुनने के बाद किसी योगी की होती है। उसे सपने में भी जो उम्मीद न हो सकती थी, वह पूरी हो गयी थी। गर्व से उसकी गर्दन की रंगें तन गयीं, उसे मालूम हुआ कि दुनिया में मुझसे ज्यादा भाग्यशाली दूसरा नहीं है। मैं चाहूँ तो इस रूप की वाटिका की बहार लूट सकता हूँ, इस प्याले से मस्त हो सकता हूँ। आह वह कितनी नशीली, कितनी मुबारक जिन्दगी होती! अब तक कासिम की मुहब्बत ग्वाले का दूध थी, पानी से मिली हुई; शहजादी के दिल की तड़प ने पानी को जलाकर सच्चाई का रंग पैदा कर दिया। उसके दिल ने कहा—मैं इस रूप की रानी के लिए क्या कुछ नहीं कर सकता? कोई ऐसी मुसीबत नहीं है जो झेल न सकूँ, कोई आग नहीं, जिसमें कूद न सकूँ, मुझे किसका डर है! बादशाह का? मैं बादशाह का गुलाम नहीं, उसके सामने हाथ फैलानेवाला नहीं, उसका मोहताज नहीं। मेरे जौहर की हर एक दरबार में कद्र हो सकती है। मैं आज इस गुलामी की जंजीर को तोड़ डालूँगा और उस देश में जा बसूँगा, जहां बादशाह के फ़रिश्ते भी पर नहीं मार सकते। हुस्न की नेमत पाकर अब मुझे और किसी चीज़ की इच्छा नहीं। अब अपनी आरजुओं का क्यों गला घोटूँ? कामनाओं को क्यों निराशा का ग्रास बनने दूँ? उसने उन्माद की-सी स्थिति में कमर से तलवार निकाली और जोश के साथ बोला—जब तक मेरे बाजूओं में दम है, कोई आपकी तरफ़ आंख उठाकर देख भी नहीं सकता। चाहे वह दिल्ली का बादशाह ही क्यों ने हो! मैं दिल्ली के कूचे और बाजार में खून की नदी बहा दूँगा, सल्तनत की जड़े हिलाउदूँगा, शाही तख्त को उल्ट-पलट रख दूँगा, और कुछ न कर सकूँगा तो मर मिटूँगा। पर अपनी आंखों से आपकी याह जिल्लत न देखूँगा।

शहजादी आहिस्ता-आहिस्ता उसके क़रीब आयी बोली—मुझे आप पर पूरा भरोसा है, लेकिन आपको मेरी खातिर से जब्त और सब्र करना होगा। आपके लिए मैं महलहरा की तकलीफ़ें और जुल्म सब सह लूंगी। आपकी

मुहब्बत ही मेरी जिन्दगी का सहारा होगी। यह यक़ीन कि आप मुझे अपनी लौंडी समझते हैं, मुझे हमेशा सम्हालता रहेगा। कौन जाने तक़दीर हमें फिर मिलाये।

क्रासिम ने अकड़कर कहा-आप दिल्ली जायें ही क्यों! हम सबुह होते-होते भरतपुर पहुँच सकते हैं।

शहजादी—मगर हिन्दोस्तान के बाहर तो नहीं जा सकते। दिल्ली की आंख का कांटा बनकर मुमकिन है हम जंगलों और वीरानों में जिन्दगी के दिन काटें पर चैन नसीब न होगा। असलियत की तरफ से आंखे न बन्द की जाए, खुदा न आपकी बहादुरी दी है, पर तेगेइस्फ़हानी भी तो पहाड़ से टकराकर टुट ही जाएगी।

कासिम का जोश कुछ धीमा हुआ। भ्रम का परदा नजरों से हट गया। कल्पना की दुनिया में बढ़-बढ़कर बातें करना बाते करना आदमी का गुण है। क्रासिम को अपनी बेबसी साफ़ दिखाई पड़ने लगी। बेशक मेरी यह लनतरानियां मज़ाक की चीज़ हैं। दिल्ली के शाह के मुक़ाबिलें में मेरी क्या हस्ती है? उनका एक इशारा मेरी हस्ती को मिटा सकता है। हसरत-भरे लहजे में बोला-मान लीजिए, हमको जंगलो और बीरानों में ही जिन्दगी के दिन काटने पड़ें तो क्या? मुहब्बत करनेवाले अंधेरे कोने में भी चमन की सैर का लुप्त उठाते हैं। मुहब्बत में वह फ़क़ीरों और दरवेशों जैसा अलगाव है, जो दुनिया की नेमतों की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखता।

शहजादी—मगर मुझ से यह कब मुमकिन है कि अपनी भलाई के लिए आपको इन खतरों में डालूँ? मैशाहे दिल्ली के जुल्मों की कहानियां सुन चुकी हूँ, उन्हें याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। खुदा वह दिन न लाये कि मेरी वजह से आपका बाल भी बांका हो। आपकी लड़ाइयों के चर्चे, आपकी खैरियत की खबरे, उस क़ैद में मुझको तसकीन और ताक़त देंगी। मैं मुसीबते झेलूंगी और हंस—हंसकर आग में जलूंगी और माथे पर बल न आने दूंगी। हूँ मैशाहे

दिल्ली के दिल को अपना बनाऊँगी, सिर्फ आपकी खातिर से ताकि आपके लिए मौक़ा पड़ने पर दो-चार अच्छी बातें कह सकूँ।

8.

लेकिन क्रासिम अब भी वहां से न हिला। उसकर आरजूएं उम्मीद से बढ़कर पूरी होती जाती थीं, फिर हवस भी उसी अन्दाज से बढ़ती जाती थी। उसने सोचा अगर हमारी मुहब्बत की बहार सिर्फ कुछ लमहों की मेहमान है, तो फिर उन मुबारकबाद लमहों को आगे की चिन्ता से क्यों बेमजा करें। अगर तक्रदीर में इस हुस्न की नेमत को पाना नहीं लिखा है, तो इस मौक़े को हाथ से क्यों जाने दूँ। कौन जाने फिर मुलाकात हो या न हो? यह मुहब्बत रहे या न रहें? बोला-शहजादी, अगर आपका यही आखिरी फ़ैसाल है, तो मेरे लिए सिवाय हसरत और मायूसी के और क्या चारा है? दूख होगा, कुटूंगा, पर सब्र करूंगा। अब एक दम के लिए यहां आकर मेरे पहलू में बैठ जाइए ताकि इस बेकरार दिल को तस्कीन हो। आइए, एक लमहे के लिए भूल जाएं कि जुदाई की घड़ी हमारे सर पर खड़ी है। कौन जाने यह दिन कब आयें? शान-शौकत ग़रीबों की याद भूला देती है, आइए एक घड़ी मिलकर बैठें। अपनी जल्फ़ों की अम्बरी खुशबू से इस जलती हुई रूह को तरावट पहुँचाइए। यह बाँहें, गलो की जंजीरे बने जाएं। अपने बिल्लौर जैसे हाथों से प्रेम के प्याले भर-भरकर पिलाइए। सागर के ऐसे दौर चलें कि हम छक जाएं! दिलोपर सुरुर को ऐसा गाढ़ा रंग चढ़े जिस पर जुदाई की तुरशियों का असर न हो। वह रंगीन शराब पिलाइए जो इस झुलसी हुई आरजूओं की खेती को सींच दे और यह रूह की प्यास हमेशा के लिए बुझ जाए।

मएअग़वानी के दौर चलने लगे। शहजादी की बिल्लौरी हथेली में सुख शराब का प्याला ऐसा मालूम होता था जैसे पानी की बिल्लौरी सतह पर कमल का फूल खिला हो क्रासिमदीनो दुनिया से बेखबर प्याले पर प्याले चढ़ाता जाता था जैसे कोई डाकू लूट के माल पर टूटा हुआ हो। यहां तक कि उसकी आंखे लाल हो गयीं, गर्दन झुक गयी, पी-पीकर मदहोश हो गया। शहजादी की तरफ़ वसाना-भरी आंखों से ताकता हुआ। बाँहें खोले बढा कि घड़ियाल ने चार बजाये और कूच के डंके की दिल छेद देनेवाली आवाज़ें कान में आयीं। बाँहें

खुली की खुली रह गयीं। लौडियां उठ बैठी, शहजादी उठ खड़ी हुई और बदनसीब क्रासिम दिल की आरजुएं लिये खेमे से बाहर निकला, जैसे तक्रदीर के फ़ैलादी पंजे ने उसे ढकेलकर बाहर निकाल दिया हो। जब अपने खेमे में आया तो दिल आरजूओं से भरा हुआ था। कुछ देर के बाद आरजूओं ने हवस का रूप भरा और अब बाहर निकला तो दिल हरसतों से पामाल था, हवस का मकड़ी-जाल उसकी रूह के लिए लोहे की जंजीरें बना हुआ था।

9.

शाम का सुहाना वक्त था। सुबह की ठण्डी-ठण्डी हवा से सागर में धीरे धीरे लहरें उठ रही थीं। बहादुर, क्रिस्मत का धनी क्रासिममुलतान के मोर्चे को सर करके गर्व की मादिरापिये उसके नशे में चूर चला आता था। दिल्ली की सड़केबन्दनवारों और झंडियों से सजी हुई थीं। गुलाब और केवड़े की खुशब चारों तरफ उड़ रही थी। जगह-जगह नौबतखाने अपना सुहाना राग गया। तोपों ने अगवानी की घनगरजसदांएबुलन्द कीं। ऊपर झरोखों में नगर की सुन्दरियां सितारों की तरह चमकने लगीं। कासिम पर फूलों की बरखा होने लगी। वह शाही महल के करीब पहुँचा तो बड़े-बड़े अमीर-उमरा उसकी अगवानी के लिए क्रतार बांधे खड़े थे। इस शान से वह दीवाने खास तक पहुँचा। उसका दिमाग इस वक्त सातवें आसमान पर था। चाव-भरी आंखों से ताकता हुआ बादशाह के पास पहुँचा और शाही तख्त को चूम लिया। बादशाह मुस्काराकर तख्त से उतरे और बाँहें खोले हुए क्रासिम को सीने से लगाने के लिए बढ़े। क्रासिम आदर से उनके पैरों को चूमने के लिए झुका कि यकायक उसके सिर पर एक बिजली-सी गिरी। बादशाह को तेज खंजर उसकी गर्दन पर पड़ा और सर तन से जुदा होकर अलग जा गिरा। खून के फ़ौवारे बादशाह के क्रदमो की तरफ़, तख्त की तरफ़ और तख्त के पीछे खड़े होने वाले मसरूर की तरफ़ लपके, गोया कोई झल्लाया हुआ आग का सांप है।

घायल शरीर एक पल में ठंडा हो गया। मगर दोनों आंखे हसरत की मारी हुई दो मूरतों की तरह देर तक दीवारों की तरफ़ ताकती रहीं। आखिर वह भी बन्द हो गयीं। हवस ने अपना काम पूरा कर दिया। अब सिर्फ़ हसरत बाक़ी थी। जो बरसों तक दीवाने खास के दरोदीवार पर छापी रही और जिसकी झलक अभी तक क्रासिम के मज़ार पर घास-फूस की सूरत में नज़र आती है।

-‘प्रेम बत्तीसी’ से

पुत्र-प्रेम

बाबू चैतन्यादास ने अर्थशास्त्र खूब पढ़ा था, और केवल पढ़ा ही नहीं था, उसका यथायोग्य व्याहार भी वे करते थे। वे वकील थे, दो-तीन गांवों में उनकजमींदारी भी थी, बैंक में भी कुछ रुपये थे। यह सब उसी अर्थशास्त्र के ज्ञान का फल था। जब कोई खर्च सामने आता तब उनके मन में स्वाभावतः प्रश्न होता था-इससे स्वयं मेरा उपकार होगा या किसी अन्य पुरुष का? यदि दो में से किसी का कुछ भी उपहार न होता तो वे बड़ी निर्दयता से उस खर्च का गला दबा देते थे। 'व्यर्थ' को वे विष के समाने समझते थे। अर्थशास्त्र के सिद्धान्त उनके जीवन-स्तम्भ हो गये थे।

बाबू साहब के दो पुत्र थे। बड़े का नाम प्रभुदास था, छोटे का शिवदास। दोनों कालेज में पढ़ते थे। उनमें केवल एक श्रेणी का अन्तर था। दोनों ही चुतर, होनहार युवक थे। किन्तु प्रभुदास पर पिता का स्नेह अधिक था। उसमें सदुत्साह की मात्रा अधिक थी और पिता को उसकी जात से बड़ी-बड़ी आशाएं थीं। वे उसे विद्योन्नति के लिए इंग्लैण्ड भेजना चाहते थे। उसे बैरिस्टर बनाना उनके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा थी।

2.

किन्तु कुछ ऐसा संयोग हुआ कि प्रभादास को बी०ए० की परीक्षा के बाद ज्वर आने लगा। डाक्टरों की दवा होने लगी। एक मास तक नित्य डाक्टर साहब आते रहे, पर ज्वर में कमी न हुई दूसरे डाक्टर का इलाज होने लगा। पर उससे भी कुछ लाभ न हुआ। प्रभुदास दिनों दिन क्षीण होता चला जाता था। उठने-बैठने की शक्ति न थी यहां तक कि परीक्षा में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होने का शुभ-सम्बाद सुनकर भी उसक चेहरे पर हर्ष का कोई चिन्ह न दिखाई दिया। वह सदैव गहरी चिन्जा में डुबा रहा था। उसे अपना जीवन बोझ सा जान पड़ने लगा था। एक रोज चैतन्यादास ने डाक्टर साहब से पूछा यह क्या बात है कि दो महीने हो गये और अभी तक दवा कोई असर नहीं हुआ ?

डाक्टर साहब ने सन्देहजनक उत्तर दिया- मैं आपको संशय में नहीं डालना चाहता। मेरा अनुमान है कि यह ट्युबरक्युलासिस है।

चैतन्यादास ने व्यग्र होकर कहा — तपेदिक ?

डाक्टर - जी हां उसके सभी लक्षण दिखायी देते हैं।

चैतन्यदास ने अविश्वास के भाव से कहा मानों उन्हे विस्मयकारी बात सुन पड़ी हो — तपेदिक हो गया !

डाक्टर ने खेद प्रकट करते हुए कहा- यह रोग बहुत ही गुप्तरितिसे शरीर में प्रवेश करता है।

चैतन्यदास— मेरे खानदान में तो यह रोग किसी को न था।

डाक्टर — सम्भव है, मित्रों से इसके जर्म (कीटाणु) मिले हो।

चैतन्यदास कई मिनट तक सोचने के बाद बोले- अब क्या करना चाहिए।

डाक्टर -दवा करते रहिये। अभी फेफड़ों तक असर नहीं हुआ है इनके अच्छे होने की आशा है।

चैतन्यदास— आपके विचार में कब तक दवा का असर होगा?

डाक्टर — निश्चय पूर्वक नहीं कह सकता । लेकिन तीन चार महीने में वे स्वस्थ हो जायेंगे । जाड़ो में इसरोग का जोर कम हो जाया करता है ।

चैतन्यदास— अच्छे हो जाने पर ये पढ़ने में परिश्रम कर सकेंगे ?

डाक्टर — मानसिक परिश्रम के योग्य तो ये शायद ही हो सकें ।

चैतन्यदास— किसी सेनेटोरियम (पहाड़ी स्वास्थ्यालय) में भेज दूँ तो कैसा हो?

डाक्टर - बहुत ही उत्तम ।

चैतन्यदास तब ये पूर्णरीति से स्वस्थ हो जाएंगे?

डाक्टर - हो सकते हैं, लेकिन इस रोग को दबा रखने के लिए इनका मानसिक परिश्रम से बचना ही अच्छा है ।

चैतन्यदासनैराश्य भाव से बोले — तब तो इनका जीवन ही नष्ट हो गया ।

मी बीत गयी। बरसात के दिन आये, प्रभुदास की दशा दिनो दिन बिगड़ती गई। वह पड़े-पड़े बहुधा इस रोग पर की गई बड़े बड़े डाक्टरों की व्याख्याएं ग पढ़ा करता था। उनके अनुभवों से अपनी अवस्था की तुलना किया करता था। उनके अनुभवों से अपनी अवस्था की तुलना किया करता । पहले कुछ दिनो तक तो वह अस्थिरचित—सा हो गया था। दो चार दिन भी दशा संभली रहती तो पुस्तकें देखने लगता और विलायत यात्रा की चर्चा करता । दो चार दिन भीज्वर का प्रकोप बढ़ जाता तो जीवन से निराश हो जाता । किन्तु कई मास के पश्चात जब उसे विश्वास हो गया कि इसरोग से मुक्त होना कठिन है तब उसने जीवन की भी चिन्ता छोड़ दी पथ्यापथ्य का विचार न करता , घरवालों की निगाह बचाकर औषधियां जमीन पर गिरा देता मित्रों के साथ बैठकर जी बहलाता । यदि कोई उससे स्वास्थ्य केविषय में कुछ पूछता तोचिढ़कर मुंह मोड़ लेता । उसके भावों में एक शान्तिमय उदासीनता आ गई थी, और बातोमेंएक दार्शनिक मर्मज्ञता पाई जाती थी । वह लोक रीति और सामाजिक प्रथाओं पर बड़ी निर्भीकता से आलोचनारंग किया करता ।

यद्यपि बाबू चैतन्यदास के मन में रह — रहकर शंका उठा करती थी कि जब परिणाम विदित ही है तब इस प्रकार धन का अपव्यय करने से क्या लाभ तथापि वेकुछ तो पुत्र-प्रेम और कुछ लोक मत के भय से धैर्य के साथ दवा दर्पनकरतेक जाते थें ।

- जाड़े का मौसम था। चैतन्यदास पुत्र के सिरहाने बैठे हुए डाक्टर साहब की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देख रहे थे। जब डाक्टर साहब टेम्परचर लेकर (थर्मामीटर लगाकर) कुर्सी पर बैठे तब चैतन्यदास ने पूछा- अब तो जाड़ा आ गया। आपको कुछ अन्तर मालूम होता है ?

- डाक्टर — बिलकुल नहीं , बल्कि रोग और भी दुस्साध्य होता जाताहै ।

- चैतन्यदास ने कठोर स्वर में पूछा — तब आप लोग क्यो मुझे इस भ्रम में डाले हुए थे किजाड़े में अच्छे हो जायेंगे ? इस प्रकार दूसरो की सरलता का उपयोग करना अपनामतलब साधने का साधन हो तो हो इसे सज्जनताकदापि नहीं कह सकते।

- डाक्टर ने नम्रता से कहा- ऐसी दशाओं में हम केवल अनुमान कर सकते है। और अनुमान सदैव सत्य नहीं होते। आपको जेरबारी अवश्य हुई पर मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मेरी इच्छा आपको भ्रम में डालने के नहीं थी ।

- शिवादास बड़े दिन की छुट्टियों में आया हुआ था , इसी समय वहि कमरे में आगया और डाक्टर साहब से बोला — आप पिता जी की कठिनाइयों का स्वयं अनुमान कर सकते हैं । अगर उनकी बात नागवार लगी तो उन्हे क्षमा कीजिएगा ।

- चैतन्यदास ने छोटे पुत्र की ओर वात्सल्य की दृष्टि से देखकर कहा- तुम्हें यहां आने की जरूरत थी? मै तुमसे कितनी बार कह चुका हूँ कि यहाँआया करो । लेकिन तुमको सबर ही नहीं होता ।

- शिवादास ने लज्जित होकर कहा- मै अभी चला जाता हूँ। आप नाराज न हों । मै केवल डाक्टर साहब से यह पूछना चाहताथा कि भाई साहब के लिए अब क्या करना चाहिए ।

- डाक्टर साहब ने कहा- अब केवल एकहीसाधनऔर है इन्हेइटली के किसी सेनेटारियममे भेज देना चाहिये ।

- जचैतन्यदास ने सजग होकर पूछा- कितना खर्च होगा? ‘ज्यादा स ज्यादा तीन हजार । साल भसा रहना होगा?
- निश्चय है कि वहां से अच्छे होकर आवेंगे ।
- जी नहीं यहातो यह भयंकर रोग है साधारण बीमारीयो में भी कोई बात निश्चय रुप से नहीं कही जा सकती ।’
- इतना खर्च करनेपर भी वहां सेज्यो के त्यो लौटा आये तो?
- तो ईश्वारकीइच्छा । आपको यह तसकीन हो जाएगी कि इनके लिए मै जो कुछ कर सकता था । कर दिया ।

4.

आधी रात तक घर में प्रभुदास को इटली भेजने के प्रस्ताव पर वाद-विवाद होता रहा। चैतन्यदास का कथन था कि एक संदिग्ध फल केलिए तीन हजार का खर्च उठाना बुद्धिमत्ता के प्रतिकूल है। शिवादास फल उनसे सहमत था। किन्तु उसकी माता इस प्रस्ताव का बड़ी दृढ़ता के साथ विरोध कर रही थी। अंत में माता की धिक्कारों का यह फल हुआ कि शिवादास लज्जित होकर उसके पक्ष में हो गया बाबू साहब अकेले रह गये। तपेश्वरी ने तर्क से कामलिया। पति के सदभावो को प्रज्वलित करने की चेष्टा की। धन की नश्वरातकी लोकोक्तियां कहीं इन शस्त्रों से विजय लाभ न हुआ तो अश्रु वर्षा करने लगी। बाबू साहब जल-बिन्दुओं के इस शर प्रहार के सामने न ठहर सके। इन शब्दों में हार स्वीकार की- अच्छा भाई रोओ मत। जो कुछ कहती हो वही होगा।

तपेश्वरी—तो कब ?

‘रुपये हाथ में आने दो ।’

‘तो यह क्यों नहीं कहते कि भेजना ही नहीं चाहते?’

भेजना चाहता हूँ किन्तु अभी हाथ खाली हैं। क्या तुम नहीं जानती?’

‘बैक में तो रुपये हैं? जायदाद तो है? दो-तीन हजार का प्रबन्ध करना ऐसा क्या कठिन है?’

चैतन्यदास ने पत्नी को ऐसी दृष्टि से देखा मानो उसे खाजायेगें और एक क्षण के बाद बोले—बिलकूल बच्चों कीसी बातें करती हो। इटली में कोई संजीवनी नहीं रक्खी हुई है जो तुरन्त चमत्कार दिखायेगी। जब वहां भी केवल प्रारब्ध ही की परीक्षा करनी है तो सावधानी से कर लेगें। पूर्व पुरुषों की संचित जायदाद और रक्खहुए रुपये मैं अनिश्चित हित की आशा पर बलिदान नहीं कर सकता।

तपेश्वरी ने डरते—डरते कहा- आखिर, आधा हिस्सा तो प्रभुदास का भी है?

बाबू साहब तिरस्कार करते हुए बोले — आधा नहीं, उसमें मैं अपना सर्वस्व दे देता, जब उससे कुछ आशा होती, वह खानदान की मर्यादा मैं और ऐश्वर्य बढ़ाता और इस लगाये हुए लगाये हुए धन के फलस्वरूप कुछ कर दिखाता । मैं केवल भावुकता के फेर में पड़कर धन का हास नहीं कर सकता ।

तपेश्वीर अवाक रह गयी । जीतकर भी उसकी हार हुई ।

इस प्रस्ताव के छः महीने बाद शिवदासबी.ए पास होगया । बाबू चैतन्यदासने अपनी जमींदारी के दो आने बन्धक रखकर कानून पढने के निमित्त उसे इंग्लैंड भेजा । उसे बम्बई तक खुद पहुँचाने गये । वहां से लौटते उनके अंतःकरण में सदिच्छायों से परिमित लाभ होने की आशा थी उनके लौटने के एक सप्ताह पीछे अभागा प्रभुदास अपनी उच्च अभिलाषओं को लिये हुए परलोक सिधारा ।

5.

चैतन्यदास मणिकर्णिका घाट पर अपने सम्बन्धियों के साथ बैठे चिता — ज्वाला की ओर देख रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो रही थी। पुत्र — प्रेम एक क्षण के लिए अर्थ — सिद्धांत पर गालिब हो गया था। उस विरक्तावस्था में उनके मन में यह कल्पना उठ रही थी। - सम्भव है, इटली जाकर प्रभुदास स्वस्थ हो जाता। हाय! मैंने तीन हजार का मुंह देखा और पुत्र रत्न को हाथ से खो दिया। यह कल्पना प्रतिक्षण सजग होती थी और उनको ग्लानि, शोक और पश्चात्ताप के बाणों से बेध रही थी। रह रहकर उनके हृदय में बेदनाकीशूल सी उठती थी। उनके अन्तर की ज्वाला उस चिता — ज्वाला से कम दग्धकारिणी न थी। अकस्मात् उनके कानों में शहनाइयों की आवाज आयी। उन्होंने आंख ऊपर उठाई तो मनुष्यों का एक समूह एक अर्थी के साथ आता हुआ दिखाई दिया। वे सब के सब ढोल बजाते, गाते, पुष्प आदि की वर्षा करते चले आते थे। घाट पर पहुँचकर उन्होंने अर्थी उतारी और चिता बनाने लगे। उनमें से एक युवक आकर चैतन्यदास के पास खड़ा हो गया। बाबू साहब ने पूछा — किस मुहल्ले में रहते हो?

युवक ने जवाब दिया- हमारा घर देहात में है। कल शाम को चले थे। ये हमारे बाप थे। हम लोग यहां कम आते हैं, पर दादा की अन्तिम इच्छा थी कि हमें मणिकर्णिका घाट पर ले जाना।

चैतन्यदास - ये सब आदमी तुम्हारे साथ है?

युवक - हाँ और लोग पीछे आते हैं। कई सौ आदमी साथ आये हैं। यहां तक आने में सैकड़ों उठ गये पर सोचता हूँ कि बूढ़े पिता की मुक्ति तो बन गई। धन और ही किसलिए।

चैतन्यदास - उन्हें क्या बीमारी थी?

युवक ने बड़ी सरलता से कहा, मानो वह अपने किसी निजी सम्बन्धी से बात कर रहा हो। - बीमार का किसी को कुछ पता नहीं चला।

हरदम ज्वर चढा रहताथा। सूखकर कांटा हो गये थे। चित्रकूट हरिद्वार प्रयाग सभी स्थानों में ले लेकर घूमे। वैद्यो ने जो कुछ कहा उसमे कोई कसर नहीं की।

इतने में युवक का एक और साथी आ गया। और बोला—साहब, मुंह देखा बात नहीं, नारायण लड़का दे तो ऐसा दे। इसने रुपयों को ठीकरे समझा। घर की सारी पूंजी पिता की दवा दारु में स्वाहा कर दी। थोड़ी सी जमीन तक बेच दी पर काल बली के सामने आदमी का क्या बस है।

युवक ने गदगद स्वर से कहा—भैया, रुपया पैसा हाथ का मैल है। कहां आता है कहां जाता है, मुनष्य नहीं मिलता। जिन्दगानी है तो कमा खाउंगा। पर मन में यह लालसा तो नहीं रह गयी कि हाय! यह नहीं किया, उस वैद्य के पास नहीं गया नहीं तो शायद बच जाते। हम तो कहते हैं कि कोई हमारा सारा घर द्वार लिखा ले केवल दादा को एक बोल बुला दे। इसी माया—मोह का नाम जिन्दगानी हैं, नहीं तो इसमे क्या रक्खा है? धन से प्यारी जान जान से प्यारा ईमान। बाबू साहब आपसे सच कहता हूँ अगर दादा के लिए अपने बस की कोई बात उठा रखता तो आज रोते न बनता। अपना ही चित्त अपने को धिक्कारता। नहीं तो मुझे इस घड़ी ऐसा जान पड़ता है कि मेरा उद्धार एक भारी ऋण से हो गया। उनकी आत्मा सुख और शान्ति से रहेगी तो मेरा सब तरह कल्याण ही होगा।

बाबू चैतन्यादास सिर झुकाए ये बातें सुन रहे थे। एक-एक शब्द उनके हृदय में शर के समान चुभता था। इस उदारता के प्रकाश में उन्हें अपनी हृदय-हीनता, अपनी आत्मशून्यता अपनी भौतिकता अत्यन्त भयंकर दिखायी देती थी। उनके चित्त पर इस घटना का कितना प्रभाव पड़ा यह इसी से अनुमान किया जा सकता है कि प्रभुदास के अन्त्येष्टि संस्कार में उन्होंने हजारों रुपये खर्च कर डाले उनके सन्तप्त हृदय की शान्ति के लिए अब एकमात्र यही उपाय रह गया था।

‘सरस्वती’, जून, १९३२

इज्जत का खून

मैने कहानियों और इतिहासोमे तकदीर के उलट फेर की अजीबो-गरीब दास्तानेपढी हैं । शाह को भिखमंगा और भिखमंगों को शाह बनते देखा है तकदीर एक छिपा हुआ भेद हैं । गालियों में टुकड़े चुनती हुई औरते सोने के सिंहासन पर बैठ गई और वह ऐश्वर्य के मतवाले जिनके इशारे पर तकदीर भी सिर झुकाती थी ,आन की शान में चील कौओं का शिकार बन गये है।पर मेरे सर पर जो कुछ बीती उसकी नजीर कहीं नहीं मिलती आह उन घटानाओं को आज याद करतीहूं तो रोगटे खड़े हो जाते है ।और हैरत होती है । किअब तक मैक्यो और क्यॉकर जिन्दा हूँ । सौन्दर्य लालसाओं का स्रोत हैं । मेरे दिल में क्या लालसाएं न थीं पर आह ,निष्ठूर भाग्य के हाथों में मिटीं । मै क्या जानती थी कि वह आदमी जो मेरी एक-एक अदा पर कुर्बान होता था एक दिन मुझे इस तरह जलील और बर्बाद करेगा ।

आज तीन साल हुए जब मैने इस घर में कदम रक्खा उस वक्त यह एक हरा भरा चमन था ।मै इस चमन की बुलबूल थी , हवा में उड़ती थीख डालियों पर चहकती थी , फूलों पर सोती थी । सईद मेरा था। मैसईद की थी । इस संगमरमर के हौज के किनारे हम मुहब्बत के पासे खेलते थे । - तुम मेरी जान हो। मै उनसे कहती थी —तुम मेरे दिलदार हो । हमारी जायदाद लम्बी चौड़ी थी। जमाने की कोई फ्रिक,जिन्दगी का कोई गम न था । हमारे लिए जिन्दगी सशरीर आनन्द एक अनन्त चाह और बहार का तिलिस्म थी, जिसमें मुरादे खिलती थी । और ाखुशियाँ हंसती थी जमाना हमारी इच्छाओं पर चलने वाला था। आसमान हमारी भलाई चाहता था। और तकदीर हमारी साथी थी।

एक दिन सईद ने आकर कहा- मेरी जान , मै तुमसे एक विनती करने आया हूँ । देखना इन मुस्कराते हुए होठों पर इनकार का हर्फ न आये ।

मैं चाहता हूँ कि अपनी सारी मिलकियत, सारी जायदाद तुम्हारे नाम चढ़वा दूँ मेरे लिए तुम्हारी मुहब्बत काफी है। यही मेरे लिए सबसे बड़ी नेमत है मैं अपनी हकीकत को मिटा देना चाहता हूँ । चाहता हूँ कि तुम्हारे दरवाजे का फकीर बन करके रहूँ । तुम मेरी नूरजहाँ बन जाओ ;

मैं तुम्हारा सलीम बनूंगा , और तुम्हारी मूंगे जैसी हथेली के प्यालों पर उम्र बसर करूंगा ।

मेरी आंखें भर आयी । खुशियां चोटी पर पहुँचकर आंसु की बूंद बन गयीं ।

2.

पर अभी पूरा साल भी न गुजरा था कि मुझे सईद के मिजाज में कुछ तबदीली नजर

आने लगी। हमारे दरमियान कोई लड़ाई-झगड़ा या बदमजगी न हुई थी मगर अब वह सईद न था। जिसे एक लमहे के लिए भी मेरी जुदाई दूभर थी वह अब रात की रात गयाब रहता। उसकी आंखों में प्रेम की वह उमंग न थी न अन्दाजों में वह प्यास, न मिजाज में वह गर्मी।

कुछ दिनों तक इस रुखेपन ने मुझे खूब रुलाया। मुहब्बत के मजे याद आ आकर तड़पा देते। मैंने पढ़ा था कि प्रेम अमर होता है। क्या, वह स्रोत इतनी जल्दी सूख गया? आह, नहीं वह अब किसी दूसरे चमन को शादाब करता था। आखिर मैं भी सईद से आंखेचूराने लगी। बेदिली से नहीं, सिर्फ इसलिए कि अब मुझे उससे आंखे मिलाने की ताव न थी। उस देखते ही मुहब्बत के हजारों करिश्मे नजरोके सामने आ जाते और आंखे भर आती। मेरा दिल अब भी उसकी तरफ खिंचता था कभी — कभी बेअख्तियार जी चाहता कि उसके पैरों पर गिरूं और कहूं — मेरे दिलदार, यह बेरहमी क्यों? क्या तुमने मुझसे मुंह फेर लिया है। मुझसे क्या खता हुई? लेकिन इस स्वाभिमान का बुरा हो जो दीवार बनकर रास्ते में खड़ा हो जाता।

यहां तक कि धीरे-धीरे दिल में भी मुहब्बत की जगह हसद ने ले ली। निराशा के धैर्य ने दिल को तसकीन दी। मेरे लिए सईद अब बीते हुए बसन्त का एक भूला हुआ गीत था। दिल की गर्मी ठण्डी हो गयी। प्रेम का दीपक बुझ गया। यही नहीं, उसकी इज्जत भी मेरे दिल से रुखसत हो गयी। जिस आदमी के प्रेम के पवित्र मन्दिर में मैल भरा हुआ हो वह हरगिज इस योग्य नहीं कि मैं उसके लिए घुलूं और मरूं।

एक रोज शाम के वक्त मैं अपने कमरे में पलंग पर पड़ी एक किस्सा पढ़ रही थी, तभी अचानक एक सुन्दर स्त्री मेरे कमरे में आयी। ऐसा मालूम हुआ कि जैसे कमरा जगमगा उठा। रूप की ज्योति ने दरोदीवार को

रोशान कर दिया। गोया अभी सफेदी हुई हैं उसकी अलंकृत शोभा, उसका खिला हुआ फूला जैसा लुभावना चेहरा उसकी नशीली मिठास, किसी तारीफ करुं मुझ पर एक रोब सा छा गया। मेरा रूप का घमंड धूल में मिल गया है। मैं आश्चर्य में थी कि यह कौन रमणी है और यहां क्योंकर आयी। बेअख्तियार उठी कि उससे मिलूं और पूछूं कि सईद भी मुस्कराता हुआ कमरे में आया मैं समझ गयी कि यह रमणी उसकी प्रेमिका है। मेरा गर्व जाग उठा। मैं उठी जरूर पर शान से गर्दन उठाए हुए आंखों में हुस्न के रौब की जगह घृणा का भाव आ बैठा। मेरी आंखों में अब वह रमणी रूप की देवी नहीं डसने वाली नागिन थी। मैं फिर चारपाई पर बैठ गई और किताब खोलकर सामने रख ली- वह रमणी एक क्षण तक खड़ी मेरी तस्वीरों को देखती रही तब कमरे से निकली चलते वक्त उसने एक बार मेरी तरफ देखा उसकी आंखों से अंगारे निकल रहे थे। जिनकी किरणों में हिंसप्रतिशोध की लाली झलक रही थी। मेरे दिल में सवाल पैदा हुआ- सईद इसे यहां क्यों लाया? क्या मेरा घमण्ड तोड़ने के लिए?

3.

जायदाद पर मेरा नाम था पर वह केवल एक, भ्रम था, उस पर अधिकार पूरी तरह सईद का था । नौकर भी उसीको अपना मालिक समझते थे और अक्सर मेरे साथ ढिठाई से पेश आते । मैं सब्र के साथ जिन्दगी के दिन काट रही थी । जब दिल में उमंगें नहीं तो पीड़ा क्यों होती?

सावन का महीना था , काली घटा छायी हुई थी , और रिसझिम बूंदें पड़ रही थी । बगीचे पर हसद का अंधेरा और सिंहासदराखों पर जुगनुओं की चमक ऐसी मालूम होती थी । जैसे कि उनके मुंह से चिनगारियाँ जैसी आहें निकल रही हैं । मैं देर तक हसद का यह तमाशा देखती रही । कीड़े एक साथ चमकते थे और एक साथ बुझ जाते थे, गोया रोशनी की बाढ़ें छूट रही हैं । मुझे भी झूला झूलने और गाने का शौक हुआ । मौसम की हालतें हसद के मारे हुए दिलों पर भरी अपना जादु कर जाती हैं । बगीचे में एक गोल बंगला था । मैं उसमें आयी और बरागदे की एक कड़ी में झूला डलवाकर झूलने लगी । मुझे आज मालूम हुआ कि निराशा में भी एक आध्यात्मिक आनन्द होता है जिसकी हाल उसको नहीं मालूम जिसकी इच्छा पूर्ण है । मैं चाव से मल्हार गान लगी सावन विरह और शोक का महीना है । गीत में एक वियोगी । हृदय की गाथा की कथा ऐसे दर्द भरे शब्दों बयान की गयी थी कि बरबस आंखों से आंसू टपकने लगे । इतने में बाहर से एक लालटेन की रोशनी नजर आयी । सईददोनों चले आ रहे थे । हसीना ने मेरे पास आकर कहा- आज यहां नाच रंग की महफिल सजेगी और शराब के दौर चलेगें ।

मैंने घृणा से कहा — मुबारक हो ।

हसीना - बारहमासे और मल्हार कीताने उड़ेगी साजिन्दे आ रहे हैं ।

मैं — शौक से ।

हसीना - तुम्हारा सीना हसद से चाक हो जाएगा ।

सईद ने मुझेसे कहा- जुबैदा तुम अपने कमरे में चली रही जाओ यह इस वक्त आपे में नहीं है।

हसीना - ने मेरी तरफ लाल —लाल आखों निकालकर कहा- मैंतुम्हें अपने पैरोंकीधूल के बराबर भी नहीं समझती ।

मुझे फिर जब्त न रहा । अगड़कर बोली —और मैं क्या समझाती हूँ एक कुतिय, दुसरो की उगली हुई हडिडयोचिचोड़ती फिरती है ।

अब सईद के भी तेवर बदले मेरी तरफ भयानक आंखोसेदेखकर बोले- जुबैदा , तुम्हारे सर पर शैतान तो नहीं सवार है?

सईद का यह जुमला मेरे जिगर में चुभ गया, तपड़ उठी, जिन होठों से हमेशा मुहब्बत और प्यार कीबाते सुनी हो उन्ही से यह जहर निकले और बिल्कुल बेकसूर ! क्या मैं ऐसी नाचीज और हकीर हो गयी हूँ कि एक बाजारु औरत भी मुझे छेड़कर गालियां दे सकती है। और मेरा जबान खोलना मना! मेरे दिल मेंसाल भर से जो बुखार हो रहाथा, वह उछल पड़ा ।मैं झूले से उतर पड़ी और सईद की तरफ शिकायत-भरी निगाहों से देखकर बोली — शैतान मेरे सर पर सवार हो या तुम्हारे सर पर, इसका फैसला तुम खुद कर सकते हो । सईद , मैं तुमको अब तक शरीफ और गैरतवालासमझतीथी, तुम खुद कर सकते हो । बेवफाई की, इसका मलाला मुझे जरुर था , मगर मैंने सपनों में भी यह न सोचा था कि तुम गैरत से इतने खाली हो कि हया-फरोश औरत केपीछे मुझे इस तरह जलीजकरोगें । इसका बदला तुम्हें खुदा से मिलेगा ।

हसीना ने तेज होकर कहा- तू मुझे हया फरोशकहतीहै?

मैं- बेशक कहतीहूँ ।

सईद—और मैं बेगैरत हूँ . ?

मैं — बेशक ! बेगैरत ही नहीं शोबदेबाज , मक्कार पापी सब कुछ ।यह अल्फाज बहुत घिनावने है लेकिन मेरे गुस्से के इजहार के लिए काफी नहीं ।

मैं यह बातें कह रही थी कि यकायक सईदकेलम्बेतगडे , हटटेकटटे नौकर ने मेरी दोनो बाहें पकड़ ली और पलक मारते भर में हसीना ने झूले की रस्सियां उतार कर मुझे बरामदे के एकलोहेकेखम्भेसेबाध दिया।

इस वक्त मेरे दिल में क्या ख्याल आ रहे थे । यह याद नहीं पर मेरी आंखो के सामने अंधेरा छा गया था । ऐसा मालूम होताथा कि यह तीनो इंसान नहीं यमदूतहैगूस्से की जगहदिल में डर समा गयाथा । इस वक्त अगर कोई रौबी ताकत मेरे बन्धनों को काट देती , मेरे हाथों में आबदार खंजर देदेती तो भी तो जमीन पर बैठकर अपनी जिल्लत और बेकसी पर आंसु बहाने केसिवा और कुछ न कर सकती।मुझे ख्याल आताथाकि शायद खुदा की तरफ से मुझ परयह कहर नाजिल हुआ है। शायद मेरी बेनमाजी और बेदीनी की यह सजा मिल रहा है। मैं अपनी पिछली जिन्दगी पर निगाह डाल रही थी कि मुझसे कौन सी गलती हुई हौ जिसकी यह सजा है। मुझे इस हालत में छोड़कर तीनोसूरते कमरे मेंचली गयीं । मैंने समझा मेरी सजा खत्म हुई लेकिन क्या यह सब मुझे यो ही बधांरक्खेगे ? लौडियां मुझे इस हालत में देख ले तो क्या कहें? नहीं अब मैइस घर में रहने के काबिल ही नहीं ।मैं सोच रही थी कि रस्सियां क्योकरखालूं मगर अफसोस मुझे न मालूम थाकि अभी तक जो मेरी गति हुई है वह आने वाली बेरहमियो का सिर्फ बयाना है । मैअबतक न जानती थीकि वह छोटा आदमी कितना बेरहम , कितना कातिल है मैं अपने दिल से बहस कररही थी कि अपनी इस जिल्लत मुझ पर कहां तक है अगर मैंेहसीना की उन दिल जलाने वाली बातों को जबाव न देती तो क्या यह नौबत ,न आती ? आती और जरुर आती। वहा काली नागिन मुझे डसने का इरादा करके चली ,थी इसलिए उसने ऐसे दिलदुखाने वाले लहजे में ही बात शुरु की थी । मैं गुस्से मे आकर उसको लान तान करूं और उसे मुझे जलील करने का बहाना मिल जाय ।

पानी जोरसे बरसने लगा, बौछारोसे मेरा सारा शरीर तर हो गया था। सामने गहरा अंधेरा था। मैं कान लगाये सुन रही थी कि अन्दर क्या मिसकौट हो रही है मगर मेह की सनसनाहट के कारण आवाजे साफ न सुनायी देती थी। इतने लालटेन फिर से बरामदे मे आयी और तीनो उरावनीसूरते फिर सामने आकर खड़ी हो गयी। अब की उस खून परी के हाथो में एक पतली सी कमची थी उसके तेवर देखकर मेरा खून सर्द हो गया। उसकी आंखो मे एक खून पीने वाली वहशत एक कातिल पागलपन दिखाई दे रहा था। मेरी तरफ शरारत —भरी नजरोसे देखकर बोली बेगम साहबा ,मै तुम्हारी बदजबानियो का ऐसा सबक देना चाहती हूं। जो तुम्हें सारी उम्र याद रहे। और मेरे गुरु ने बतलाया है कि कमची से ज्यादा देर तक ठहरने वाला और कोई सबक नहीं होता।

यह कहकर उस जालिम ने मेरी पीठ पर एक कमची जोर से मारी। मैतिलमिया गयी मालूम हुआ। कि किसी ने पीठ पर आग की चिरगारी रख दी। मुझेसे जब्त न हो सका माँ बाप ने कभी फूल की छड़ी से भीन मारा था। जोर से चीखे मार मारकर रोने लगी। स्वाभिमान, लज्जा सब लुप्त हो गयी। कमची की डरावनी और रौशन असलियत के सामने और भावनाएं गायब हो गयीं। उन हिन्दुदेवियो क दिल शायद लोहे के होते होंगे जो अपनी आन पर आग में कुद पड़ती थी। मेरे दिल पर तो इस दिल पर तो इस वक्त यही खयाल छाया हुआ था कि इस मुसीबत से क्योकर छुटकारा हो सईद तस्वीर की तरह खामोश खड़ा था। मैं उसक तरफ फरियाद की आंखे से देखकर बड़े विनती केस्वर में बोली—सईद खुदा क लिए मुझे इस जालिम से बचाओ ,मै तुम्हारे पैरो पडती हूँ खू तुम मुझे जहर दे दो, खंजर से गर्दन काट लो लेकिन यह मुसीबत सहने की मुझमें ताब नहीं। उन दिलजोइयों को याद करों, मेरी मुहब्बत का याद करो, उसी क सदके इस वक्त मुझे इस अजाब से बचाओ, खुदा तुम्हें इसका इनाम देगा।

सईद इन बातों से कुछ पिंघला। हसीना की तरह डरी हुई आंखों से देखकर बोला- जरीना मेरे कहने से अब जाने दो । मेरी खातिर से इन पर रहम करो।

जरीनातेर बदल कर बोली- तुम्हारी खातिर से सब कुछ कर सकती हूँ, गालियाँ नहीं बर्दाश्त कर सकती।

सईद—क्या अभी तुम्हारे खयाल में गालियों की काफी सजा नहीं हुई?

जरीना- तब तो आपने मेरी इज्जत की खूब कद्र की! मैंने रानियों से चिलमचियाँ उठवायी है, यह बेगम साहबा है किस खयाल में? मैं इसे अगर कुछ छुरी से काटूँ तब भ्रष्टा इसकी बदजबानियों की काफ़ी सजा न होगी।

सईद-मुझसे अब यह जुल्म नहीं देखा जाता।

जरीना-आंखें बन्द कर लो।

सईद- जरीना, गुस्सा न दिलाओ, मैं कहता हूँ, अब इन्हें माफ़ करो।

जरीना ने सईद को ऐसी हिकारत-भरी आंखों से देखा गोया वह उसका गुलाम है। खुदा जाने उस पर उसने क्या मन्तर मार दिया था कि उसमें खानदानी ग़ैरत और बड़ाई ओ इन्सानियत का ज़रा भी एहसास बाकी न रहा था। वह शायद उसे गुस्से जैसे मर्दानास जज्बे के क़ाबिल ही न समझती थी। हुलिया पहचानने वाले कितनी गलती करते हैं क्योंकि दिखायी कुछ पड़ता है, अन्दर कुछ होता है ! बाहर के ऐसे सुन्दर रूप के परदे में इतनी बेरहमी, इतनी निष्ठुरता ! कोई शक नहीं, रूप हुलिया पहचानने की विद्या का दुश्मन है। बोली — अच्छा तो अब आपको मुझ पर गुस्सा आने लगा ! क्यों न हो, आखिर निकाह तो आपने बेगम ही से किया है। मैं तो हया- फ़रोश कुतिया ही ठहरी !

सईद- तुम ताने देती हो और मुझसे यह खून नहीं देखा जाता।

ज़रीना— तो यह क्रमची हाथ में लो, और इसे गिनकर सौ लगाओ।
गुस्सा उतर जाएगा, इसका यही इलाज है।

ज़रीना— फिर वही मजाक़।

ज़रीना- नहीं, मैं मज़ाक़ नहीं करती।

सईद ने क्रमची लेने को हाथ बढ़ाया मगर मालूम नहीं जरीना को क्याशुबहा पैदा हुआ, उसने समझा शायद वह क्रमची को तोड़ कर फेंक देंगे। क्रमची हटा ली और बोली- अच्छा मुझसे यह दगा ! तो लो अब मैं ही हाथों की सफाई दिखाती हूँ। यह कहकर उसे बेदर्द ने मुझे बेतहाशा कमचियां मारना शुरू कीं। मैं दर्द से ऐंठ-ऐंठकर चीख रही थी। उसके पैरों पड़ती थी, मिन्नते करती थी, अपने किये पर शमिन्दा थी, दुआएं देती थी, पीर और पैगम्बर का वास्ता देती थी, पर उस क्रांतिल को ज़रा भी रहम न आता था। सईद काठ के पुतले की तरह दर्दोसितम का यह नज्जाराआंखों से देख रहा था और उसको जोश न आता था। शायद मेरा बड़े-से-बड़े दुश्मन भी मेरे रोने धोने पर तरस खाता मेरी पीठ छिलकर लहू-लुहान हो गयी, जख़म पड़ते थे, हरेक चोट आग के शोले की तरह बदन पर लगती थी। मालूम नहीं उसने मुझे कितने दर्दे लगाये, यहां तक कि क्रमची को मुझ पर रहम आ गया, वह फटकर टूट गयी। लकड़ी का कलेजा फट गया मगर इन्सान का दिल न पिघला।

4.

मुझे इस तरह जलील और तबाह करके तीनों ख़बीसरुहें वहां से रुखसत हो गयीं। सईद के नौकर ने चलते वक्त मेरी रस्सियां खोल दीं। मैं कहां जाती ? उस घर में क्योंकर क़दम रखती ?

मेरा सारा जिस्म नासूर हो रहा था लेकिन दिल नके फफोले उससे कहीं ज्यादा जान लेवा थे। सारा दिल फफोलों से भर उठा था। अच्छी भावनाओं के लिए भी जगह बाक़ी न रही थी। उस वक्त मैं किसी अंधे को कुंए में गिरते देखती तो मुझे हंसी आती, किसी यतीम का दर्दनाक रोना सुनती तो उसका मुंह चिढ़ाती। दिल की हालत में एक ज़बर्दस्त इन्कालाब हो गया था। मुझे गुस्सा न था, गम न था, मौत की आरजू न थी, यहां तक कि बदला लेने की भावना न थी। उस इन्तहाई जिल्लत ने बदला लेने की इच्छा को भी खत्म कर दिया था। हालांकि मैं चाहती तो कानूनन सईद को शिकंजे में ला सकती थी, उसे दाने-दाने के लिए तरसा सकती थी लेकिन यह बेइज़्जती, यह बेआबरुई, यह पामाली बदले के खयाल के दायरे से बाहर थी। बस, सिर्फ़ एक चेतना बाकी थी और वह अपमान की चेतना थी। मैं हमेशा के लिए ज़लील हो गयी। क्या यह दाग़ किसी तरह मिट सकता था ? हरगिज नहीं। हां, वह छिपाया जा सकता था और उसकी एक ही सूरत थी कि जिल्लत के काले गड्डे में गिर पडूँ ताकि सारे कपड़ों की सियाही इस सियाह दाग़ को छिपा दे।

क्या इस घर से बियाबान अच्छा नहीं जिसके पेंदे में एक बड़ा छेद हो गया हो? इस हालत में यही दलील मुझ पर छा गयी। मैंने अपनी तबाही को और भी मुकम्मल, अपनी जिल्लत को और भी गहरा, आने काले चेहरे को और लभी काला करने का पक्का इरादा कर लिया। रात-भर मैं वहीं पड़ी कभी दर्द से कराहती और कभी इन्हीं खयालात में उलझती रही। यह घातक इरादा हर क्षण मजबूत से और भी मजबूत होता जाता था। घर में किसी ने मेरी खबर न ली। पौ फटते ही मैं बागीचे से बाहर निकल आयी, मालूम नहीं मेरी लाज-शर्म कहां गायब हो गयी थी। जो शख्स समुन्दर में गोते खा चुका हो

उसे ताले- तलैयाँ का क्या डर ? मैं जो दर-दीवार से शर्माती थी, इस वक्त शहर की गलियों में बेधड़क चली जा रही थी-चोर कहां, वहीं जहां जिल्लत की कद्र है, जहां किसी पर कोई हंसने वाला नहीं, जहां बदनामी का बाज़ार सजा हुआ है, जहां हया बिकती है और शर्म लुटती है !

इसके तीसरे दिन रुप की मंडी के एक अच्छे हिस्से में एक ऊंचे कोठे पर बैठी हुई मैं उस मण्डी की सैर कर रही थी। शाम का वक्त था, नीचे सड़क पर आदमियों की ऐसी भीड़ थी कि कंधे से कंधा छिलता था। आज सावन का मेला था, लोग साफ़-सुथरे कपड़े पहने क्रतार की क्रतार दरिया की तरफ़ जा रहे थे। हमारे बाज़ार की बेशकीमती जिन्स भी आज नदी के किनारे सजी हुई थी। कहीं हसीनों के झूले थे, कहीं सावन की मीत, लेकिन मुझे इस बाज़ार की सैर दरिया के किनारे से ज्यादा पुरलुत्फ़ मालूम होती थी, ऐसा मालूम होता है कि शहर की और सब सड़कें बन्द हो गयी हैं, सिर्फ़ यही तंग गली खुली हुई है और सब की निगाहें कोठों ही की तरफ़ लगी थीं, गोया वह जमीन पर नहीं चल रहे हैं, हवा में उड़ना चाहते हैं। हां, पढ़े-लिखे लोगों को मैंने इतना बेधड़क नहीं पाया। वह भी घूरते थे मगर कनखियों से। अंधेड़ उग्र के लोग सबसे ज्यादा बेधड़क मालूम होते थे। शायद उनकी मंशा जवानी के जोश को जाहिर करना था। बाजार क्या था एक लम्बा-चौड़ा थियेटर था, लोग हंसी-दिल्लीगी करते थे, लुत्फ़ उठाने के लिए नहीं, हसीनों को सुनाने के लिए। मुंह दूसरी तरफ़ था, निगाह किसी दूसरी तरफ़। बस, भांडों और नक्कालों की मजलिस थी।

यकायक सईद की फिटन नजर आयी। मैं रउस पर कई बार सैर कर चुकी थी। सईद अच्छे कपड़े पहने अकड़ा हुआ बैठा था। ऐसा सजीला, बांका जवान सारे शहर में न था, चेहरे-मोहरे से मर्दानापन बरसता था। उसकी आंख एक बारे मेरे कोठे की तरफ़ उठी और नीचे झुक गयी। उसके चेहरे पर मुर्दनी-सी छा गयी जैसे किसी जहरीले सांप ने काट खाया हो। उसने कोचवान से कुछ कहा, दम के दम में फिटन हवा हो गयी। इस वक्त उसे देखकर मुझे जो

द्वेषपूर्ण प्रसन्नता हुई, उसके सामने उस जानलेवा दर्द की कोई हक़ीक़त न थी। मैंने जलील होकर उसे जलील कर दिया। यक कटार कमचियों से कहीं ज्यादा तेज थी। उसकी हिम्मत न थी कि अब मुझसे आंख मिला सके। नहीं, मैंने उसे हरा दिया, उसे उम्र-भर के दिलए कैद में डाल दिया। इस कालकोठरी से अब उसका निकलना ग़ैर-मुमकिन था क्योंकि उसे अपने खानदान के बड़प्पन का घमण्ड था।

दूसरे दिन भोर में खबर मिली कि किसी क़ातिल ने मिर्जा सईद का काम तमाम कर दिया। उसकी लाश उसीर बागीचे के गोल कमरे में मिली सीने में गोली लग गयी थी। नौ बजे दूसरे खबर सुनायी दी, जरीना को भी किसी ने रात के वक़्त क़त्ल कर डाला था। उसका सर तन जुदा कर दिया गया। बाद को जांच-पड़ताल से मालूम हुआ कि यह दोनों वारदातें सईद के ही हाथों हुईं। उसने पहले जरीना को उसके मकान पर क़त्ल किया और तब अपने घर आकर अपने सीने में गोली मारी। इस मर्दाना ग़ैरतमन्दी ने सईद की मुहब्बत मेरे दिल में ताजा कर दी।

शाम के वक़्त मैं अपने मकान पर पहुँच गयी। अभी मुझे यहां से गये हुए सिर्फ़ चार दिन गुजरे थे मगर ऐसा मालूम होता था कि वर्षों के बाद आयी हूँ। दरोदीवार पर हसरत छायी हुई थी। मैंने घर में पाँव रक्खा तो बरबस सईद की मुस्कराती हुई सूरत आंखों के सामने आकर खड़ी हो गयी-वही मर्दाना हुस्न, वहीं बांकपन, वहीं मनुहार की आंखें। बेअख्तियार मेरी आंखें भर आयी और दिल से एक ठण्डी आह निकल आयी। ग़म इसका न था कि सईद ने क्यों जान दे दी। नहीं, उसकी मुजरिमानाबेहिशी और रुप के पीछे भागना इन दोनों बातों को मैं मरते दम तक माफ़ न करूँगी। ग़म यह था कि यह पागलपन उसके सर में क्यों समाया? इस वक़्त दिल की जो कैफ़ियत है उससे मैं समझती हूँ कि कुछ दिनों में सईद की बेवफ़ाई और बेरहमी का घाव भर जाएगा, अपनी जिल्लत की याद भी शायद मिट जाय, मगर उसकी चन्द्रोजा मुहब्बत का नक्श बाकी रहेगा और अब यही मेरी जिन्दगी का सहारा है।

--उर्दू 'प्रेम पचीसी' से

होली की छुट्टी

वर्नाक्युलर फ़ाइनल पास करने के बाद मुझे एक प्राइमरी स्कूल में जगह वमिली, जो मेरे घर से ग्यारह मील पर था। हमारे हेडमास्टर साहब को छुट्टियों में भी लड़कों को पढ़ाने की सनक थी। रात को लड़के खाना खाकर स्कूल में आ जाते और हेडमास्टर साहब चारपाई पर लेटकर अपने खर्चाटों से उन्हें पढ़ाया करते। जब लड़कों में धौल-धप्पा शुरु हो जाता और शोर-गुल मचने लगता तब यकायक वह खरगोश की नींद से चौंक पड़ते और लड़को को दो- चार तकाचे लगाकर फिर अपने सपनों के मजे लेने लगते। ग्यायह-बारह बजे रात तक यही ड्रामा होता रहता, यहां तक कि लड़के नींद से बेक्ररार होकर वहीं टाट पर सो जाते। अप्रैल में सलाना इम्तहान होनेवाला था, इसलिए जनवरी ही से हाय-तौ बा मची हुई थी। नाइट स्कूलों पर इतनी रियायत थी कि रात की क्लासों में उन्हें न तलब किया जाता था, मगर छुट्टियां बिलकुल न मिलती थीं। सोमवती अमावस आयी और निकल गयी, बसन्त आया और चला गया, शिवरात्रि आयी और गुजर गयी। और इतवारों का तो जिक्र ही क्या है। एक दिन के लिए कौन इतना बड़ा सफ़र करता, इसलिए कई महीनों से मुझे घर जाने का मौका न मिला था। मगर अबकी मैंने पक्का इरादा कर लिया था कि होली पररजरुर घर जाऊंगा, चाहे नौकरी से हाथ ही क्यों न धोने पड़ें। मैंने एक हफ्ते पहले से ही हेडमास्टर साहब को अल्टीमेटम दे दिया कि 20 मार्च को होली की छुट्टी शुरु होगी और बन्दा 19 की शाम को रुखसत हो जाएगा। हेडमास्टर साहब ने मुझे समझाया कि अभी लड़के हो, तुम्हें क्या मालूम नौकरी कितनी मुश्किलों से मिलती है और कितनी मुश्किलों से निभती है, नौकरी पाना उतना मुश्किल नहीं जितना उसको निभाना। अप्रैल में इम्तहान होनेवाला है, तीन-चार दिन स्कूल बन्द रहा तो बताओ कितने लड़के पास होंगे ? साल-भरकी सारी मेहनत पर पानी फिर जाएगा कि नहीं ? मेरा कहना मानो, इस छुट्टी में न जाओ, इम्तसहान के बाद

जो छुट्टी पड़े उसमें चले जाना। ईस्टर की चार दिन की छुट्टी होगी, मैं एक दिन के लिए भी न रोकूंगा।

मैं अपने मोर्चे पर कायम रहा, समझाने-बुझाने, डराने —धमकाने और जवाब-तलब किये जाने के हथियारों का मुझ पर असर न हुआ। 19 को ज्यों ही स्कूल बन्द हुआ, मैंने हेडमास्टर साहब को सलाम भी न किया और चुपके से अपने डेरे पर चला आया। उन्हें सलाम करने जाता तो वह एक न एक काम निकालकर मुझे रोक लेते- रजिस्टर में फ़ीस की मीज़ान लगाते जाओ, औसत हाज़िरी निकालते जाओ, लड़कों की कापियां जमा करके उन पर संशोधन और तारीख सब पूरी कर दो। गोया यह मेरा आखिरी सफ़र है और मुझे जिन्दगी के सारे काम अभी खतम कर देने चाहिए।

मकान पर आकर मैंने चटपट अपनी किताबों की पोटली उठायी, अपना हलका लिहाफ़ कंधे पर रखा और स्टेशन के लिए चल पड़ा। गाड़ी 5 बजकर 5 मिनट पर जाती थी। स्कूल की घड़ी हाज़िरी के वक्त हमेशा आध घण्टा तेज और छुट्टी के वक्त आधा घण्टा सुस्त रहती थी। चार बजे स्कूल बन्द हुआ था। मेरे खयाल में स्टेशन पहुँचने के लिए काफी वक्त था। फिर भी मुसाफ़िरों को गाड़ी की तरफ से आम तौर पर जो अन्देशा लगा रहता है, और जो घड़ी हाथ में होने पर भी और गाड़ी का वक्त ठीक मालूम होने पर भी दूर से किसी गाड़ी की गड़गड़ाहट या सीटी सुनकर कदमों को तेज और दिल को परेशान कर दिया करता है, वह मुझे भी लगा हुआ था। किताबों की पोटली भारी थी, उस पर कंधे पर लिहाफ़, बार-बार हाथ बदलता और लपका चला जाता था। यहां तक कि स्टेशन कोई दो फ़र्लांग से नज़र आया। सिगनल डाउन था। मेरी हिम्मत भी उस सिगनल की तरह डाउन हो गयी, उम्र के तक्राजे से एक सौ क़दम दौड़ा जरूर मगर यह निराशा की हिम्मत थी। मेरे देखते-देखते गाड़ी आयी, एक मिनट ठहरी और रवाना हो गयी। स्कूल की घड़ी यक़ीनन आज और दिनों से भी ज्यादा सुस्त थी।

अब स्टेशन पर जाना बेकार था। दूसरी गाड़ी ग्यारह बजे रात को आयगी, मेरे घरवाले स्टेशन पर कोई बारह बजे पहुँचेगी और वहाँ से मकान पर जाते-जाते एक बज जाएगा। इस सन्नाटे में रास्ता चलना भी एक मोर्चा था जिसे जीतने की मुझमें हिम्मत न थी। जी में तो आया कि चलकर हेडमास्टर को आड़े हाथों लूं मगरी जब्त किया और चलने के लिए तैयार हो गया। कुल बारह मील ही तो हैं, अगर दो मील फ़ी घण्टा भी चलूं तो छः घण्टों में घर पहुँच सकता हूँ। अभी पाँच बजे हैं, जरा क्रदम बढ़ाता जाऊँ तो दस बजे यकीनन पहुँच जाऊँगा। अम्मं और मुन्नू मेरा इन्तजार कर रहे होंगे, पहुँचते ही गरम-गरम खाना मिलेगा। कोल्हाड़े में गुड़ पक रहा होगा, वहाँ से गरम-गरम रस पीने को आ जाएगा और जब लोग सुनेंगे कि मैं इतनी दूर पैदल आया हूँ तो उन्हें कितना अचवरज होगा! मैंने फ़ौरन गंगा की तरफ़ पैर बढ़ाया। यह क्रस्बा नदी के किनारे था और मेरे गांव की सड़क नदी के उस पार से थी। मुझे इस रास्ते से जाने का कभी संयोग न हुआ था, मगर इतना सुना था कि कच्ची सड़क सीधी चली जाती है, परेशानी की कोई बात न थी, दस मिनट में नाव पार पहुँच जाएगी और बस फ़र्राटेभरता चल दूंगा। बारह मील कहने को तो होते हैं, हैं तो कुल छः कोस।

मगर घाट पर पहुँचा तो नाव में से आधे मुसाफिर भी न बैठे थे। मैं कूदकर जा बैठा। खेवे के पैसे भी निकालकर दे दिये लेकिन नाव है कि वहीं अचल ठहरी हुई है। मुसाफिरों की संख्या काफ़ी नहीं है, कैसे खुले। लोग तहसील और कचहरी से आते जाते हैं औ बैठते जाते हैं और मैं हूँ कि अन्दर हीर अन्दर भुना जाता हूँ। सूरज नीचे दौड़ा चला जा रहा है, गोया मुझसे बाजी लगाये हुए है। अभी सफेद था, फिर पीला होना शुरू हुआ और देखते — देखते लाल हो गया। नदी के उस पार क्षितिजव पर लटका हुआ, जैसे कोई डोल कुएं पर लटक रहा है। हवा में कुछ खूनकी भी आ गयी, भूख भी मालूम होने लगी। मैंने आज धर जाने की खुशी और हड़बड़ी में रोटियां न पकायी थीं, सोचा था कि शाम को तो घर पहुँच जाऊँगा, लाओ एक पैसे के

चने लेकर खा लूं। उन दानों ने इतनी देर तक तो साथ दिया, अब पेट की पेचीदगियों में जाकर न जाने कहां गुम हो गये। मगर क्या गम है, रास्ते में क्या दुकानें न होंगी, दो-चार पैसे की मिठाइयां लेकर खा लूं गा।

जब नाव उस किनारे पहुँची तो सूरज की सिर्फ अखिरी सांस बांकी थी, हालांकि नदी का पाट बिलकुल पेंदे में चिमटकर रह गया था।

मैंने पोटली उठायी और तेजी से चला। दोनों तरफ़ चने के खेत थे जिलनकेऊदे फूलों पर ओस सका हलका-सा पर्दा पड़ चला था। बेअख्तियार एक खेत में घुसकर बूट उखाड़ लिये और टूंगता हुआ भागा।

2.

सामने बारह मील की मंजिल है, कच्चा सुनसान रास्ता, शाम हो गयी है, मुझे पहली बार गलती मालूम हुई। लेकिन बचपन के जोश ने कहा, क्या बात है, एक-दो मील तो दौड़ ही सकते हैं। बारह को मन में 1760 से गुणा किया, बीस हजार गज़ ही तो होते हैं। बारह मील के मुक़ाबिले में बीस हजार गज़ कुछ हलके और आसान मालूम हुए। और जब दो-तीन मील रह जाएगा तब तो एक तरह से अपने गांव ही में हूंगा, उसका क्या शुमार। हिम्मत बंध गयी। इक्के-दुक्के मुसाफिर भी पीछे चले आ रहे थे, और इत्मीनान हुआ।

अंधेरा हो गया है, मैं लपका जा रहा हूँ। सड़क के किनारे दूर से एक झोंपड़ी नजर आती है। एक कुप्पी जल रही है। ज़रूर किसी बनिये की दुकान होगी। और कुछ न होगा तो गुड़ और चने तो मिल ही जाएंगे। क्रदम और तेज़ करता हूँ। झोंपड़ी आती है। उसके सामने एक क्षण के निलए खड़ा हो जाता हूँ। चार — पाँच आदमी उकडूँ बैठे हुए हैं बीच में एक बोतल है, हर एक के सामने एक-एक कुल्हाड़। दीवार से मिली हुई ऊंची गद्दी है, उस पर साहजी बैठे हुए हैं, उनके सामने कई बोतलें रखी हुई हैं। ज़रा और पीछे हटकर एक आदमी कड़ाही में सूखे मटर भून रहा है। उसकी सोंधी खुशबू मेरे शरीर में बिजली की तरह दौड़ जाती है। बेचैन होकर जेब में हाथ डालता हूँ और एक पैसा निकालकर उसकी तरफ चलता हूँ लेकिन पांव आप ही रुक जाते हैं — यह कलवारिया है।

खोंचेवाला पूछता है — क्या लोगे ?

मैं कहता हूँ — कुछ नहीं।

और आगे बढ़ जाता हूँ। दुकान भी मिली तो शराब की गोया दुनियासा में इन्सान के लिए शराब रही सबसे जरूरी चीज है। यह सब आदमी धोबी और चमार होंगे, दूसरा कौन शराब पीता है, देहात में। मगर वह मटर का आकर्षक सोंधापन मेरा पीछा कर रहा है और मैं भागा जा रहा हूँ।

किताबों की पोटली जी का जंजाल हो गया है, ऐसी इच्छा होती है कि इसे यहीं सड़क पर पटक दूं। उसका वज़न मुश्किल से पांच सेर होगा, मगर इस वक्त मुझे मन-भर से ज्यादा मालूम हो रही है। शरीर में कमजोरी महसूस हो रही है। पूरनमासी का चांद पेड़ों के ऊपर जा बैठा है और पत्तियों के बीच से जमीन की तरफ झांक रहा है। मैं बिलकुल अकेला जा रहा हूँ, मगर दर्द बिलकुल नहीं है, भूख ने सारी चेतना को दबा रखा है और खुद उस पर हावी हो गयी है।

आह हा, यह गुड़ की खुशबू कहां से आयी! कहीं ताजा गुड़ पक रहा है। कोई गांव करीब ही होगा। हां, वह आमों के झुरमुट में रोशनी नजर आ रही है। लेकिन वहां पैसे-दो पैसे का गुड़ बेचेगा और यों मुझसे मांगा न जाएगा, मालूम नहीं लोग क्या समझें। आगे बढ़ता हूँ, मगर जबान से लार टपक रही हैं गुड़ से मुझे बड़ा प्रेम है। जब कभी किसी चीज की दुकान खोलने की सोचता था तो वह हलवाई की दुकान होती थी। बिक्री हो या न हो, मिठाइयां तो खाने को मिलेंगी। हलवाईयों को देखो, मारे मोटापे के हिल नहीं सकते। लेकिन वह बेवकूफ होते हैं, आरामतलबी के मारे तोंद निकाल लेते हैं, मैं कसरत करता रहूँगा। मगर गुड़ की वह धीरज की परीक्षा लेनेवाली, भूख को तेज करनेवाली खुशबू बराबर आ रही है। मुझे वह घटना याद आती है, जब अम्मां तीन महीने के लिए अपने मैके या मेरी ननिहाल गयी थीं और मैंने तीन महीने के एक मन गुड़ का सफ़ाया कर दिया था। यही गुड़ के दिन थे। नाना बिमार थे, अम्मां को बुला भेजा था। मेरा इम्तहान पास था इसलिए मैं उनके साथ न जा सका, मुन्नू को लेती गयीं। जाते वक्त उन्होंने एक मन गुड़ लेकर उस मटके में रखा और उसके मुंह पर सकोरा रखकर मिट्टी से बन्द कर दिया। मुझे सख्त ताकीद कर दी कि मटका न खोलना। मेरे लिए थोड़ा-सा गुड़ एक हांडी में रख दिया था। वह हांडी मैंने एक हफ्ते में सफाचट कर दी सुबह को दूध के साथ गुड़ रात को फिर दूध के साथ गुड़। यहाँ तक जायज खर्च था जिस पर अम्मां को भी कोई एतराज न हो सकता।

मगर स्कूलन से बार-बार पानी पीने के बहाने घर आता और दो-एक पिण्डियां निकालकर खा लेता- उसकी बजट में कहां गुंजाइश थी। और मुझे गुड़ का कुछ ऐसा चस्का पड़ गया कि हर वक्त वही नशा सवार रहता। मेरा घर में आना गुड़ के सिर शामत आना था। एक हफ्ते में हांडी ने जवाब दे दिया। मगर मटका खोलने की सख्त मनाही थी और अम्मां के ध्जार आने में अभी पौने तीन महीने ब्राकी थे। एक दिन तो मैंने बड़ी मुश्किल से जैसे-तैसे सब्र किया लेकिन दूसरे दिन क आह के साथ सब्र जाता रहा और मटके को बन्द कर दिया और संकल्प कर लिया कि इस हांडी को तीन महीने चलाऊंगा। चले या न चले, मैं चलाये जाऊंगा। मटके को वह सात मंजिल समझूंगा जिसे रुस्तम भी न खोल सका था। मैंने मटके की पिण्डियों को कुछ इस तरह कैंची लगकार रखा कि जैसे बाज दुकानदार दियासलाई की डिब्बियां भर देते हैं। एक हांडी गुड़ खाली हो जाने पर भी मटका मुंहों मुंह भरा था। अम्मां को पता ही चलेगा, सवाल-जवाब की नौबत कैसे आयेगी। मगर दिल और जान में वह खींच-तान शुरू हुई कि क्या कहूं, और हर बार जीत जबान ही के हाथ रहती। यह दो अंगुल की जीभ दिल जैसे शहज़ोर पहलवान को नचा रही थी, जैसे मदारी बन्दर को नचाये-उसको, जो आकाश में उड़ता है और सातवें आसमान के मंसूबे बांधता है और अपने जोम में फ़रऊन को भी कुछ नहीं समझता। बार-बार इरादा करता, दिन-भर में पांच पिण्डियों से ज्यादा न खाऊं लेकिन यह इरादा शाराबियों की तौबा की तरह घंटे-दो से ज्यादा न टिकता। अपने को कोसता, धिक्कारता-गुड़ तो खा रहे हो मगर बरसात में सारा शरीर सड़ जाएगा, गंधक का मलहम लगाये घूमोगे, कोई तुम्हारे पास बैठना भी न पसन्द करेगा ! कसमें खाता, विद्या की, मां की, स्वर्गीय पिता की, गऊ की, ईश्वर की, मगर उनका भी वही हाल होता। दूसरा हफ्ता खत्म होते-होते हांडी भी खत्म हो गयी। उस दिन मैं ने बड़े भक्तिभाव से ईश्वर से प्रार्थना की — भगवान्, यह मेरा चंचल लोभी मन मुझे परेशान कर रहा है, मुझे शक्ति दो कि उसको वश में रख सकूं। मुझे अष्टधात की लगाम दो जो उसके मुंह में डाल

दू! यह अभाग मुझे अम्मां से पिटवाने आरैर घुड़कियां खिलवाने पर तुला हुआ है, तुम्हीं मेरी रक्षा करो तो बच सकता हूँ। भक्ति की विह्वलता के मारे मेरी आंखों से दो- चार बूंदे आंसुओं की भी गिरिं लेकिन ईश्वर ने भी इसकी सुनवायी न की और गुड़ की बुभुक्षा मुझ पर छायी रही; यहां तक कि दूसरी हांडी का मर्सिया पढ़ने कीर नौबत आ पहुँची।

संयोग से उन्हीं दिनों तीन दिन की छुट्टी हुई और मैं अम्मां से मिलने ननिहाल गया। अम्मां ने पूछा- गुड़ का मटका देखा है? चींटे तो नहीं लगे? सीलत तो नहीं पहुँची? मैंने मटकों को देखने की कसम खाकर अपनी ईमानदारी का सबूत दिया। अम्मां ने मुझे गर्व के नेत्रों से देखा और मेरे आज्ञा- पालन के पुरस्कार- स्वरुप मुझे एक हांडी निकाल लेने की इजाजत दे दी, हां, ताकीद भी करा दी कि मटकं का मुंह अच्छी तरह बन्द कर देना। अब तो वहां मुझे एक-एक —दिन एक —एक युग मालूम होने लगा। चौथे दिन घर आते ही मैंने पहला काम जो किया वह मटका खोलकर हांडी — भर गुड़ निकालना था। एकबारगी पांच पींडियां उड़ा गया फिर वहीं गुड़बाजी शुरू हुई। अब क्या गम हैं, अम्मां की इजाजत मिल गई थी। सैयां भले कोतवाल, और आठ दिन में हांडी गायब ! आखिर मैंने अपने दिल की कमजोरी से मजबूर होकर मटके की कोठरी के दरवाजे पर ताला डाल दिया और कुंजी दीवार की एक मोटी संधि में डाल दी। अब देखें तुम कैसे गुड़ खाते हो। इस संधि में से कुंजी निकालने का मतलब यह था कि तीन हाथ दीवार खोद डाली जाय और यह हिम्मत मुझमें न थी। मगर तीन दिन में ही मेरे धीरज का प्याला छलक उठा औ इन तीन दिनों में भी दिल की जो हालत थी वह बयान से बाहर है। शीरीं, यानी मीठे गुड़, की कोठरी की तरफ से बार- बार गुजरता और अधीर नेत्रों से देखता और हाथ मलकर रह जाता। कई बार ताले को खटखटाया, खींचा, झटके दिये, मगर जालिम जरा भी न हुमसा। कई बार जाकर उस संधि की जांच -पडताल की, उसमें झांककर देखा, एक लकड़ी से उसकी गहराई का अन्दाजा लगाने की कोशिश की मगर उसकी तह न

मिली। तबियत खोई हुई-सी रहती, न खाने-पीने में कुछ मज़ा था, न खेलने-कूदने में। वासना बार-बार युक्तियों के जारे खाने-पीने में कुछ मजा था, न खेलने-कूदने में। वासना बार-बार युक्तियों के जोर से दिल को कायल करने की कोशिश करती। आखिर गुड़ और किस मज़ की दवा है। मे। उसे फेंक तो देता नहीं, खाता ही तो हूँ, क्या आज खाया और क्या एक महीनेबाद खाया, इसमें क्या फर्क है। अम्मां ने मनाही की है बेशक लेकिन उन्हें मुझे एक उचित काम से अलग रखने का क्या हक है? अगर वह आज कहीं खेलने मत जाओ या पेंडू पर मत चढ़ो या तालाब में तैरने मत जाओ, या चिड़ियों के लिए कम्पामत लगाओ, तितलियां मत पकड़ो, तो क्या मैं माने लेता हूँ ? आखिर चौथे दिन वासना की जीत हुई। मैंने तड़के उठकर एक कुदाल लेकर दीवार खोदना शुरू किया। संधि थी ही, खोदने में ज्यादा देर न लगी, आध घण्टे के घनघोर परिश्रम के बाद दीवार से कोई गज-भर लम्बा और तीन इंच मोटा चप्पड़ टूटकर नीचे गिर पड़ा और संधि की तह में वह सफलता की कुंजी पड़ी हुई थी, जैसे समुन्दर की तह में मोती की सीप पड़ी हो। मैंने झटपट उसे निकाला और फौरन दरवाजा खोला, मटके से गुड़ निकालकर हांडी में भरा और दरवाजा बन्द कर दिया। मटके में इस लूट-पाट से स्पष्ट कमी पैदा हो गयी थी। हजार तरकीबें आजमाने पर भी इसका गढ़ा न भरा। मगर अबकी बार मैंने चटोरेपन का अम्मां की वापसी तक खात्मा कर देने के लिए कुंजी को कुएं में डाल दिया। किस्सा लम्बा है, मैंने कैसे ताला तोड़ा, कैसे गुड़ निकाला और मटका खाली हो जाने पर कैसे फोड़ा और उसके टुकड़े रात को कुएं में फेंके और अम्मां आयीं तो मैंने कैसे रो-रोकर उनसे मटके के चोरी जाने की कहानी कही, यह बयान करने लगा तो यह घटना जो मैं आज लिखने बैठा हूँ अधूरी रह जाएगी।

चुनांचे इस वक्त गुड़ की उस मीठी खुशबू ने मुझे बेसुध बना दिया। मगर मैं सन्न करके आगे बढ़ा।

ज्यों-ज्यों रात गुजरती थी, शरीर थकान से चूर होता जाता था, यहाँ तक कि पांव कांपने लगे। कच्ची सड़क पर गाड़ियों के पहियों की लीक पड़ गयी थी। जब कभी लीक में पांव चला जाता तो मालूम होता किसी गहरे गढ़े में गिर पड़ा हूँ। बार-बार जी में आता, यहीं सड़क के किनारे लेट जाऊँ। किताबों की छोटी-सी पोटली मन-भर की लगती थी। अपने को कोसता था कि किताबें लेकर क्यों चला। दूसरी जबान का इम्तहान देने की तैयारी कर रहा था। मगर छुट्टियों में एक दिन भी तो किताब खोलने की नौबत न आयेगी, खामखाह यह बोझ उठाये चला आता हूँ। ऐसा जी झुंझलाता था कि इस मूर्खता के बोझ को वहीं पटक दूँ। आखिर टाँगों ने चलने से इनकार कर दिया। एक बार मैं गिर पड़ा और और सम्हलकर उठा तो पांव थरथरा रहे थे। अब बगैर कुछ खाये पैर उठना दूभर था, मगर यहां क्या खाऊँ। बार-बार रोने को जी चाहता था। संयोग से एक ईख का खेत नज़र आया, अब मैं अपने को न रोक सका। चाहता था कि खेत में घुसकर चार-पांच ईख तोड़ लूँ और मजे से रस चूसता हुआ चलूँ। रास्ता भी कट जाएगा और पेट में कुछ पड़ भी जाएगा। मगर मेड़ पर पांव रखा ही था कि कांटों में उलझ गया। किसान ने शायद मेंड़ पर कांटे बिखेर दिये थे। शायद बेर की झाड़ी थी। धोती-कुर्ता सब कांटों में फंसा हुआ, पीछे हटा तो कांटों की झाड़ी साथ-साथ चली, कपड़े छुड़ाना लगा तो हाथ में कांटे चुभने लगे। जोर से खींचा तो धोती फट गयी। भूख तो गायब हो गयी, फ़िक्र हुई कि इन नयी मुसीबत से क्योंकर छुटकारा हो। कांटों को एक जगह से अलग करता तो दूसरी जगह चिमट जाते, झुकता तो शरीर में चुभते, किसी को पुकारूँ तो चोरी खुली जाती है, अजीब मुसीबत में पड़ा हुआ था। उस वक्त मुझे अपनी हालत पर रोना आ गया, कोई रेगिस्तानों की खाक छानने वाला आशिक भी इस तरह कांटों में फंसा होगा ! बड़ी मंशिकल से आध घण्टे में गला छूटा मगर धोती और कुर्ते के माथे गयी, हाथ और पांव छलनी हो गये वह घाते में। अब एक क़दम आगे रखना मुहाल था। मालूम नहीं कितना रास्ता तय हुआ, कितना बाकी है, न कोई

आदमी न आदमजाद, किससे पूछूँ। अपनी हालत पर रोता हुआ जा रहा था। एक बड़ा गांव नज़र आया। बड़ी खुशी हुई। कोई न कोई दुकान मिल ही जाएगी। कुछ खा लूँगा और किसी के सायबान में पड़ रहूँगा, सुबह देखी जाएगी।

मगर देहातों में लोग सरे-शाम सोने के आदी होते हैं। एक आदमी कुएं पर पानी भर रहा था। उससे पूछा तो उसने बहुत ही निराशाजनक उत्तर दिया—अब यहां कुछ न मिलेगा। बनिये नमक-तेल रखते हैं। हलवाई की दुकान एक भी नहीं। कोई शहर थोड़े ही है, इतनी रात तक दुकान खोले कौन बैठा रहे !

मैंने उससे बड़े विनती के स्वर में कहा-कहीं सोने को जगह मिल जाएगी ?

उसने पूछा-कौन हो तुम ? तुम्हारी जान — पहचान का यहां कोई नहीं है ?

‘जान-पहचान का कोई होता तो तुमसे क्यों पूछता?’

‘तो भाई, अनजान आदमी को यहां नहीं ठहरने देंगे। इसी तरह कल एक मुसाफिर आकर ठहरा था, रात को एक घर में सेंध पड़ गयी, सुबह को मुसाफिर का पता न था।’

‘तो क्या तुम समझते हो, मैं चोर हूँ?’

‘किसी के माथे पर तो लिखा नहीं होता, अन्दर का हाल कौन जाने !’

‘नहीं ठहराना चाहते न सही, मगर चोर तो न बनाओ। मैं जानता यह इतना मनहुस गांव है तो इधर आता ही क्यों?’

मैंने ज्यादा खुशामद न की, जी जल गया। सड़क पर आकर फिर आगे चल पड़ा। इस वक्त मेरे होश ठिकाने न थे। कुछ खबर नहीं किस रास्ते से गांव में आया था और किधर चला जा रहा था। अब मुझे अपने घर पहुँचने की उम्मीद न थी। रात यों ही भटकते हुए गुज़रेगी, फिर इसका क्या ग़म कि कहां जा रहा हूँ। मालूम नहीं कितनी देर तक मेरे दिमाग की यह हालत रही।

अचानक एक खेत में आग जलती हुई दिखाई पड़ी कि जैसे आशा का दीपक हो। जरूर वहां कोई आदमी होगा। शायद रात काटने को जगह मिल जाए। कदम तेज किये और करीब पहुँचा कि यकायक एक बड़ा-सा कुत्ता भूँकता हुआ मेरी तरफ दौड़ा। इतनी डरावनी आवाज थी कि मैं कांप उठा। एक पल में वह मेरे सामने आ गया और मेरी तरफ लपक-लपककर भूँकने लगा। मेरे हाथों में किताबों की पोटली के सिवा और क्या था, न कोई लकड़ी थी न पत्थर, कैसे भगाऊँ, कहीं बदमाश मेरी टांग पकड़ ले तो क्या करूँ! अंग्रेजी नस्ल का शिकारी कुत्ता मालूम होता था। मैं जितना ही धत्-धत् करता था उतना ही वह गरजता था। मैं खामोश खड़ा हो गया और पोटली ज़मीन पर रखकर पांव से जूते निकाल लिये, अपनी हिफ़ाजत के लिए कोई हथियार तो हाथ में हो ! उसकी तरफ़ गौर से देख रहा था कि खतरनाक हद तक मेरे करीब आये तो उसके सिर पर इतने जोर से नालदार जूता मार दूँ कि याद ही तो करे लेकिन शायद उसने मेरी नियत ताड़ ली और इस तरह मेरी तरफ़ झपटा कि मैं कांप गया और जूते हाथसे छूटकर ज़मीन पर गिर पड़े। और उसी वक्त मैंने डरी हुई आवाज में पुकारा-अरे खेत में कोई है, देखो यह कुत्ता मुझे काट रहा है ! ओ महतो, देखो तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।

जवाब मिला—कौन है ?

‘मैं हूँ, राहगीर, तुम्हारा कुत्ता मुझे काट रहा है।’

‘नहीं, काटेगा नहीं, डरो मत। कहां जाना है?’

‘महमूदनगर।’

‘महमूदनगर का रास्ता तो तुम पीछे छोड़ आये, आगे तो नदी हैं।’

मेरा कलेजा बैठ गया, रुआंसा होकर बोला—महमूदनगर का रास्ता कितनी दूर छूट गया है?

‘यही कोई तीन मील।’

और एक लहीम-शहीम आदमी हाथ में लालटन लिये हुए आकर मेरे आमने खड़ा हो गया। सर पर हैट था, एक मोटा फ़ौजी ओवरकोट पहने हुए,

नीचे निकर, पांव में फुलबूट, बड़ा लंबा-तड़ंगा, बड़ी-बड़ी मूँछें गोरा रंग, साकार पुरुष-सौन्दर्य। बोला—तुम तो कोई स्कूल के लड़के मालूम होते हो।

‘लड़का तो नहीं हूँ, लड़कों का मुर्दरिस हूँ, घर जा रहा हूँ। आज से तीन दिन की छुट्टी है।’

‘तो रेल से क्यों नहीं गये?’

रेल छूट गयी और दूसरी एक बजे छूटती है।’

‘वह अभी तुम्हें मिल जाएगी। बारह का अमल है। चलो मैं स्टेशन का रास्ता दिखा दूँ।’

‘कौन-से स्टेशन का?’

‘भगवन्तपुर का।’

‘भगवन्तपुर ही से तो मैं चला हूँ। वह बहुत पीछे छूट गया होगा।’

‘बिल्कुल नहीं, तुम भगवन्तपुर स्टेशन से एक मील के अन्दर खड़े हो। चलो मैं तुम्हें स्टेशन का रास्ता दिखा दूँ। अभी गाड़ी मिल जाएगी। लेकिन रहना चाहो तो मेरे झोंपड़े में लेट जाओ। कल चले जाना।’

अपने ऊपर गुस्सा आया कि सिर पीट लूँ। पांच बजे से तेली के बैल की तरह घूम रहा हूँ और अभी भगवन्तपुर से कुल एक मील आया हूँ। रास्ता भूल गया। यह घटना भी याद रहेगी कि चला छः घण्टे और तय किया एक मील। घर पहुँचने की धुन जैसे और भी दहक उठी।

बोला—नहीं, कल तो होली है। मुझे रात को पहुँच जाना चाहिए।

‘मगर रास्ता पहाड़ी है, ऐसा न हो कोई जानवर मिल जाए। अच्छा चलो, मैं तुम्हें पहुँचाये देता हूँ, मगर तुमने बड़ी गलती की, अनजान रास्ते को पैदल चलना कितना खतरनाक है। अच्छा चला मैं पहुँचाये देता हूँ। खैर, खड़े रहो, मैं अभी आता हूँ।’

कुत्ता दुम हिलाने लगा और मुझसे दोस्ती करने का इच्छुक जान पड़ा। दुम हिलाता हुआ, सिर झुकाये क्षमा-याचना के रूप में मेरे सामने

आकर खड़ा हुआ। मैंने भी बड़ी उदारता से उसका अपराध क्षमा कर दिया और उसके सिर पर हाथ फेरने लगा। क्षण—भर में वह आदमी बन्दूक कंधे पर रखे आ गया और बोला—चलो, मगर अब ऐसी नादानी न करना, खैरियत हुई कि मैं तुम्हें मिल गया। नदी पर पहुँच जाते तो जरूर किसी जानवर से मुठभेड़ हो जाती।

मैंने पूछा—आप तो कोई अंग्रेज मालूम होते हैं मगर आपकी बोली बिल्कुल हमारे जैसी है ?

उसने हंसकर कहा—हां, मेरा बाप अंग्रेज था, फौजी अफ़सर। मेरी उम्र यहीं गुज़री है। मेरी मां उसका खाना पकाती थी। मैं भी फ़ौज में रह चुका हूँ। योरोप की लड़ाई में गया था, अब पेंशन पाता हूँ। लड़ाई में मैंने जो दृश्य अपनी आंखों से देखे और जिन हालात में मुझे जिन्दगी बसर करनी पड़ी और मुझे अपनी इन्सानियत का जितना खून करना पड़ा उससे इस पेशे से मुझे नफ़रत हो गई और मैं पेंशन लेकर यहां चला आया। मेरे पापा ने यहीं एक छोटा-सा घर बना लिया था। मैं यहीं रहता हूँ और आस-पास के खेतों की रखवाली करता हूँ। यह गंगा की धाटी है। चारों तरफ पहाड़ियां हैं। जंगली जानवर बहुत लगते हैं। सुअर, नीलगाय, हिरन सारी खेती बर्बाद कर देते हैं। मेरा काम है, जानवरों से खेती की हिफ़ाजत करना। किसानों से मुझे हल पीछे एक मन गल्ला मिल जाता है। वह मेरे गुज़र-बसर के लिए काफी होता है। मेरी बुढ़िया मां अभी जिन्दा है। जिस तरह पापा का खाना पकाती थी, उसी तरह अब मेरा खाना पकाती है। कभी-कभी मेरे पास आया करो, मैं तुम्हें कसरत करना सिखा दूँगा, साल-भर में पहलवान हो जाओगे।

मैंने पूछा—आप अभी तक कसरत करते हैं?

वह बोला—हां, दो घण्टे रोजाना कसरत करता हूँ। मुग़दर और लेज़िम का मुझे बहुत शौक है। मेरा पचासवां साल है, मगर एक सांस में पांच मील दौड़ सकता हूँ। कसरत न करूँ तो इस जंगल में रहूँ कैसे। मैंने खूब कुशितियां लड़ी हैं। अपनी रेजीमेण्ट में खूब मज़बूत आदमी था। मगर अब इस

फौजी जिन्दगी की हालातों पर गौर करता हूँ तो शर्म और अफ़सोस से मेरा सर झुक जाता है। कितने ही बेगुनाह मेरी रायफल के शिकार हुए मेरा उन्होंने क्या नुकसान किया था ? मेरी उनसे कौन-सी अदावत थी? मुझे तो जर्मन और आस्ट्रियन सिपाही भी वैसे ही सच्चे, वैसे ही बहादुर, वैसे ही खुशमिज़ाज, वैसे ही हमदर्द मालूम हुए जैसे फ़्रांस या इंग्लैण्ड के । हमारी उनसे खूब दोस्ती हो गयी थी, साथ खेलते थे, साथ बैठते थे, यह खयाल ही न आता था कि यह लोग हमारे अपने नहीं हैं। मगर फिर भी हम एक-दूसरे के खून के प्यासे थे। किसलिए ? इसलिए कि बड़े-बड़े अंग्रेज़ सौदागरों को खतरा था कि कहीं जर्मनी उनका रोज़गार न छीन ले। यह सौदागरों का राज है। हमारी फ़ौजें उन्हीं के इशारों पर नाचनेवाली कठपुतलियां हैं। जान हम गरीबों की गयी, जेबें गर्म हुई मोटे-मोटे सौदागरों की । उस वक्त हमारी ऐसी खातिर होती थी, ऐसी पीठ ठोंकी जाती थी, गोया हम सल्तनत के दामाद हैं। हमारे ऊपर फूलों की बारिश होती थी, हमें गार्डन पार्टियां दी जाती थीं, हमारी बहादुरी की कहानियां रोजाना अखबारों में तस्वीरों के साथ छपती थीं। नाजुक-बदल लेडियां और शहज़ादियां हमारे लिए कपड़े सीती थीं, तरह-तरह के मुरब्बे और अचार बना-बना कर भेजती थीं। लेकिन जब सुलह हो गयी तो उन्हीजांबाजों को कोई टके को भी न पूछता था। कितनों ही के अंग भंग हो गये थे, कोई लूला हो गया था, कोई लंगड़ा, कोई अंधा। उन्हें एक टुकड़ा रोटी भी देनेवाला कोई न था। मैंने कितनों ही को सड़क पर भीख मांगते देखा। तब से मुझे इस पेशे से नफ़रत हो गयी। मैंने यहाँ आकर यह काम अपने जिम्मे ले लिया और खुश हूँ। सिपहगिरी इसलिए है कि उससे गरीबों की जानमाल की हिफ़ाजत हो, इसलिए नहीं कि करोड़पतियों की बेशुमार दौलत और बढ़े। यहां मेरी जान हमेशा खतरे में बनी रहती है। कई बार मरते-मरते बचा हूँ लेकिन इस काम में मर भी जाऊँ तो मुझे अफ़सोस न होगा, क्योंकि मुझे यह तस्कीन होगा कि मेरी जिन्दगी गरीबों के काम आयी। और यह बेचारे किसान मेरी कितनी खातिर करते हैं कि तुमसे क्या कहूँ। अगर मैं बीमार पड़ जाऊँ और

उन्हें मालूम हो जाए कि मैं उनके शरीर के ताजे खून से अच्छा हो जाऊँगा तो बिना झिझके अपना खून दे दूँगे। पहले मैं बहुत शराब पीता था। मेरी बिरादरी को तो तुम लोग जानते होगे। हममें बहुत ज्यादा लोग ऐसे हैं, जिनको खाना मयस्सर हो या न हो मगर शराब जरूर चाहिए। मैं भी एक बोतल शराब रोज पी जाता था। बाप ने काफी पैसे छोड़े थे। अगर किफ़ायत से रहना जानता तो जिन्दगी-भर आराम से पड़ा रहता। मगर शराब ने सत्यानाश कर दिया। उन दिनों मैं बड़े ठाठ से रहता था। कालर—टाई लगाये, छैला बना हुआ, नौजवान छोकरीयों से आंखें लड़ाया करता था। घुड़दौड़ में जुआ खेलना, शरीब पीना, क्लब में ताश खेलना और औरतों से दिल बहलाना, यही मेरी जिन्दगी थी। तीन-चार साल में मैंने पचीस-तीस हजार रुपये उड़ा दिये। कौड़ी कफ़न को न रखी। जब पैसे खतम हो गये तो रोजी की फ़िक्र हुई। फ़ौज में भर्ती हो गया। मगर खुदा का शुक्र है कि वहां से कुछ सीखकर लौटा यह सच्चाई मुझ पर खुल गयी कि बहादुर का काम जान लेना नहीं, बल्कि जान की हिफ़ाजत करना है।

‘यूरोप से आकर एक दिन मैं शिकार खेलने लगा और इधर आ गया। देखा, कई किसान अपने खेतों के किनारे उदास खड़े हैं मैंने पूछा क्या बात है ? तुम लोग क्यों इस तरह उदास खड़े हो ? एक आदमी ने कहा—क्या करें साहब, जिन्दगी से तंग हैं। न मौत आती है न पैदावार होती है। सारे जानवर आकर खेत चर जाते हैं। किसके घर से लगान चुकायें, क्या महाजन को दें, क्या अमलों को दें और क्या खुद खायें ? कल इन्ही खेतों को देखकर दिल की कली खिल जाती थी, आज इन्हे देखकर आंखों में आंसू आ जाते हैं जानवरों ने सफ़ाया कर दिया।

‘मालूम नहीं उस वक्त मेरे दिल पर किस देवता या पैगम्बर का साया था कि मुझे उन पर रहम आ गया। मैंने कहा—आज से मैं तुम्हारे खेतों की रखवाली करूँगा। क्या मजाल कि कोई जानवर फटक सके। एक दाना जो जाय तो जुर्माना दूँ। बस उस दिन से आज तक मेरा यही काम है। आज दस

साल हो गये, मैंने कभी नागा नहीं किया। अपना गुज़र भी होता है और एहसान मुफ्त मिलता है और सबसे बड़ी बात यह है कि इस काम से दिल की खुशी होती है।’

नदी आ गयी। मैंने देखा वही घाट है जहां शाम को किशती पर बैठा था। उस चांदनी में नदी जड़ाऊ गहनों से लदी हुई जैसे कोई सुनहरा सपना देख रही हो।

मैंने पूछा—आपका नाम क्या है ? कभी-कभी आपके दर्शन के लिए आया करूंगा।

उसने लालटेन उठाकर मेरा चेहरा देखा और बोला —मेरा नाम जैक्सन है। बिल जैक्सन। जरूर आना। स्टेशन के पास जिससे मेरा नाम पूछोगे, मेरा पता बतला देगा।

यह कहकर वह पीछे की तरफ़ मुड़ा, मगर यकायक लौट पड़ा और बोला—मगर तुम्हें यहां सारी रात बैठना पड़ेगा और तुम्हारी अम्मां घबरा रही होगी। तुम मेरे कंधे पर बैठ जाओ तो मैं तुम्हें उस पार पहुँचा दूँ। आजकल पानी बहुत कम है, मैं तो अक्सर तैर आता हूँ।

मैंने एहसान से दबकर कहा—आपने यही क्या कम इनायत की है कि मुझे यहां तक पहुँचा दिया, वर्ना शायद घर पहुँचना नसीब न होता। मैं यहां बैठा रहूँगा और सुबह को किशती से पार उतर जाऊँगा।

‘वाह, और तुम्हारी अम्मां रोती होंगी कि मेरे लाड़ले पर न जाने क्या गुज़री?’

यह कहकर मिस्टर जैक्सन ने मुझे झट उठाकर कंधे पर बिठा लिया और इस तरह बेधड़क पानी में घुसे कि जैसे सूखी जमीन है। मैं दोनों हाथों से उनकी गरदन पकड़े हूँ, फिर भी सीना धड़क रहा है और रगों में सनसनी-सी मालूम हो रही है। मगर जैक्सन साहब इत्मीनान से चले जा रहे हैं। पानी घुटने तक आया, फिर कमर तक पहुँचा, ओप्फोह सीने तक पहुँच गया। अब साहब को एक-एक क़दम मुश्किल हो रहा है। मेरी जान निकल रही है। लहरें

उनके गले लिपट रही हैं मेरे पांव भी चूमने लगीं । मेरा जी चाहता है उनसे कहूँ भगवान् के लिए वापस चलिए, मगर ज़बान नहीं खुलती। चेतना ने जैसे इस संकट का सामना करने के लिए सब दरवाजे बन्द कर लिए । डरता हूँ कहीं जैक्सन साहब फिसले तो अपना काम तमाम है। यह तो तैराक़ है, निकल जाएंगे, मैं लहरों की खुराक बन जाऊँगा। अफ़सोस आता है अपनी बेवकूफी पर कि तैरना क्यों न सीख लिया ? यकायक जैक्सन ने मुझे दोनों हाथों से कंधों के ऊपर उठा लिया। हम बीच धार में पहुँच गये थे। बहाव में इतनी तेजी थी कि एक-एक क़दम आगे रखने में एक-एक मिनट लग जाता था। दिन को इस नदी में कितनी ही बार आ चुका था लेकिन रात को और इस मझधार में वह बहती हुई मौत मालूम होती थी दस — बारह क़दम तक मैं जैक्सन के दोनों हाथों पर टंगा रहा। फिर पानी उतरने लगा। मैं देख न सका, मगर शायद पानी जैक्सन के सर के ऊपर तक आ गया था। इसीलिए उन्होंने मुझे हाथों पर बिठा लिया था। जब गर्दन बाहर निकल आयी तो जोर से हंसकर बोले—लो अब पहुँच गये।

मैंने कहा—आपको आज मेरी वजह से बड़ी तकलीफ़ हुई।

जैक्सन ने मुझे हाथों से उतारकर फिर कंधे पर बिठाते हुए कहा—और आज मुझे जितनी खुशी हुई उतनी आज तक कभी न हुई थी, जर्मन कप्तान को क़त्ल करके भी नहीं। अपनी माँ से कहना मुझे दुआ दें।

घाट पर पहुँचकर मैं साहब से रुखसत हुआ, उनकी सज्जनता, निःस्वार्थ सेवा, और अदम्य साहस का न मिटने वाला असर दिल पर लिए हुए। मेरे जी में आया, काश मैं भी इस तरह लोगों के काम आ सकता।

तीन बजे रात को जब मैं घर पहुँचा तो होली में आग लग रही थी। मैं स्टेशन से दो मील सरपट दौड़ता हुआ गया। मालूम नहीं भूखे शरीर में दतनी ताक़त कहाँ से आ गयी थी।

अम्मां मेरी आवाज सुनते ही आंगन में निकल आयीं और मुझे छाती से लगा लिया और बोली—इतनी रात कहां कर दी, मैं तो सांझ से तुम्हारी राह देख रही थी, चलो खाना खा लो, कुछ खाया-पिया है कि नहीं ?

वह अब स्वर्ग में हैं। लेकिन उनका वह मुहब्बत-भरा चेहरा मेरी आंखों के सामने है और वह प्यार-भरी आवाज कानों में गूंज रही है।

मिस्टर जैक्सन से कई बार मिल चुका हूँ। उसकी सज्जनता ने मुझे उसका भक्त बना दिया है। मैं उसे इन्सान नहीं फरिश्ता समझता हूँ।

--‘जादे राह’ से

नादान दोस्त

केशव के घर में कार्निस के ऊपर एक चिड़िया ने अण्डे दिए थे। केशव और उसकी बहन श्यामा दोनों बड़े ध्यान से चिड़ियों को वहां आते-जाते देखा करते। सवेरे दोनों आंखें मलते कार्निस के सामने पहुँच जाते और चिड़ा या चिड़िया दोनों को वहां बैठा पाते। उनको देखने में दोनों बच्चों को न मालूम क्या मजा मिलता, दूध और जलेबी की भी सुध न रहती थी। दोनों के दिल में तरह-तरह के सवाल उठते। अण्डे कितने बड़े होंगे ? किस रंग के होंगे ? कितने होंगे ? क्या खाते होंगे ? उनमें बच्चे किस तरह निकल आयेंगे ? बच्चों के पर कैसे निकलेंगे ? घोंसला कैसा है ? लेकिन इन बातों का जवाब देने वाला कोई नहीं। न अम्मां को घर के काम-धंधों से फुर्सत थी न बाबूजी को पढ़ने-लिखने से। दोनों बच्चे आपस ही में सवाल-जवाब करके अपने दिल को तसल्ली दे लिया करते थे।

श्यामा कहती—क्यों भइया, बच्चे निकलकर फुर से उड़ जायेंगे ?

केशव विद्वानों जैसे गर्व से कहता—नहीं री पगली, पहले पर निकलेंगे। बगैर परों के बेचारे कैसे उड़ेंगे ?

श्यामा—बच्चों को क्या खिलायेगी बेचारी ?

केशव इस पेचीदा सवाल का जवाब कुछ न दे सकता था।

इस तरह तीन-चान दिन गुजर गए। दोनों बच्चों की जिज्ञासा दिन-दिन बढ़ती जाती थीं अण्डों को देखने के लिए वह अधी हो उठते थे। उन्होने अनुमान लगाया कि अब बच्चे जरूर निकल आये होंगे। बच्चों के चारों का सवाल अब उनके सामने आ खड़ा हुआ। चिड़ियां बेचारी इतना दाना कहाँ पायेंगी कि सारे बच्चों का पेट भरे। गरीब बच्चे भूख के मारे चूँ-चूँ करके मर जायेंगे।

इस मुसीबत का अन्दाजा करके दोनों घबरा उठे। दोनों ने फैसला किया कि कार्निंस पर थोड़ा-सा दाना रख दिया जाये। श्यामा खुश होकर बोली—तब तो चिड़ियों को चारे के लिए कहीं उड़कर न जाना पड़ेगा न ?

केशव—नहीं, तब क्यों जायेंगी ?

श्यामा—क्यों भइया, बच्चों को धूप न लगती होगी?

केशव का ध्यान इस तकलीफ की तरफ न गया था। बोला—जरूर तकलीफ हो रही होगी। बेचारे प्यास के मारे पड़फ रहे होंगे। ऊपर छाया भी तो कोई नहीं।

आखिर यही फैसला हुआ कि घोंसले के ऊपर कपड़े की छत बना देनी चाहिये। पानी की प्याली और थोड़े-से चावल रख देने का प्रस्ताव भी स्वीकृत हो गया।

दोनों बच्चे बड़े चाव से काम करने लगे। श्यामा माँ की आंख बचाकर मटके से चावल निकाल लायी। केशव ने पत्थर की प्याली का तेल चुपके से जमीन पर गिरा दिया और खूब साफ़ करके उसमें पानी भरा।

अब चांदनी के लिए कपड़ा कहां से लाए ? फिर ऊपर बगैर छड़ियों के कपड़ा ठहरेगा कैसे और छड़ियां खड़ी होंगी कैसे ?

केशव बड़ी देर तक इसी उधेड़-बुन में रहा। आखिरकार उसने यह मुश्किल भी हल कर दी। श्यामा से बोला—जाकर कूड़ा फेंकने वाली टोकरी उठा लाओ। अम्मांजी को मत दिखाना।

श्यामा—वह तो बीच में फटी हुई है। उसमें से धूप न जाएगी ?

केशव ने झुंझलाकर कहा—तू टोकरी तो ला, मैं उसका सुराख बन्द करने की कोई हिकमत निकालूंगा।

श्यामा दौड़कर टोकरी उठा लायी। केशव ने उसके सुराख में थोड़ा—सा कागज ठूँस दिया और तब टोकरी को एक टहनी से टिकाकर बोला—देख ऐसे ही घोंसले पर उसकी आड़ दूंगा। तब कैसे धूप जाएगी?

श्यामा ने दिल में सोचा, भइया कितने चालाक हैं।

2.

गर्मी के दिन थे। बाबूजी दफ्तर गए हुए थे। अम्मां दोनो बच्चों को कमरे में सुलाकर खुद सो गयी थीं। लेकिन बच्चों की आंखों में आज नींद कहां ? अम्माजी को बहकाने के लिए दोनों दम रोके आंखें बन्द किए मौके का इन्तजारकर रहे थे। ज्यों ही मालूम हुआ कि अम्मां जी अच्छी तरह सो गयीं, दोनों चुपके से उठे और बहुत धीरे से दरवाजे की सिटकनी खोलकर बाहर निकल आये। अण्डों की हिफाजत करने की तैयारियां होने लगीं। केशव कमरे में से एक स्टूल उठा लाया, लेकिन जब उससे काम न चला, तो नहाने की चौकी लाकर स्टूल के नीचे रखी और डरते-डरते स्टूल पर चढ़ा।

श्यामा दोनों हाथों से स्टूल पकड़े हुए थी। स्टूल को चारों टागें बराबर न होने के कारण जिस तरफ ज्यादा दबाव पाता था, जरा-सा हिल जाता था। उस वक्त केशव को कितनी तकलीफ उठानी पड़ती थी। यह उसी का दिल जानता था। दोनो हाथों से कार्निंस पकड़ लेता और श्यामा को दबी आवाज से डांटता—अच्छी तरह पकड़, वर्ना उतरकर बहुत मारूंगा। मगर बेचारी श्यामा का दिल तो ऊपर कार्निंस पर था। बार-बार उसका ध्यान उधर चला जाता और हाथ ढीले पड़ जाते।

केशव ने ज्यों ही कार्निंस पर हाथ रक्खा, दोनों चिड़ियां उड़ गयीं। केशव ने देखा, कार्निंस पर थोड़े-से तिनके बिछे हुए हैं, और उस पर तीन अण्डे पड़े हैं। जैसे घोंसले उसने पेड़ों पर देखे थे, वैसा कोई घोंसला नहीं है। श्यामा ने नीचे से पूछा—कै बच्चे हैं भइया?

केशव—तीन अण्डे हैं, अभी बच्चे नहीं निकले।

श्यामा—जरा हमें दिखा दो भइया, कितने बड़े हैं ?

केशव—दिखा दूंगा, पहले जरा चिथड़े ले आ, नीचे बिछा दूँ। बेचारे अंडे तिनकों पर पड़े हैं।

श्यामा दौड़कर अपनी पुरानी धोती फाड़कर एक टुकड़ा लायी।
केशव ने झुककर कपड़ा ले लिया, उसके कई तह करके उसने एक गद्दी
बनायी और उसे तिनकों पर बिछाकर तीनों अण्डे उस पर धीरे से रख दिए।

श्यामा ने फिर कहा—हमको भी दिखा दो भइया।

केशव—दिखा दूँगा, पहले जरा वह टोकरी दे दो, ऊपर छाया कर दूँ।

श्यामा ने टोकरी नीचे से थमा दी और बोली—अब तुम उतर आओ,
मैं भी तो देखूँ।

केशव ने टोकरी को एक टहनी से टिकाकर कहा—जा, दाना और
पानी की प्याली ले आ, मैं उतर आऊँ तो दिखा दूँगा।

श्यामा प्याली और चावल भी लाची। केशव ने टोकरी के नीचे दोनों
चीजें रख दीं और आहिस्ता से उतर आया।

श्यामा ने गिड़गिड़ा कर कहा—अब हमको भी चढ़ा दो भइया

केशव—तू गिर पड़ेगी।

श्यामा—न गिरूंगी भइया, तुम नीचे से पकड़े रहना।

केशव—न भइया, कहीं तू गिर-गिरा पड़ी तो अम्मां जी मेरी चटनी
ही कर डालेंगी। कहेंगी कि तूने ही चढ़ाया था। क्या करेगी देखकर। अब
अण्डे बड़े आराम से हैं। जब बच्चे निकलेगें, तो उनको पालेंगे।

दोनों चिड़ियाँ बार-बार कार्निश पर आती थीं और बगैर बैठे ही उड़
जाती थीं। केशव ने सोचा, हम लोगों के डर के मारे नहीं बैठतीं। स्टूल
उठाकर कमरे में रख आया, चौकी जहाँ की थी, वहाँ रख दी।

श्यामा ने आंखों में आंसू भरकर कहा—तुमने मुझे नहीं दिखाया, मैं
अम्मां जी से कह दूँगी।

केशव—अम्मां जी से कहेगी तो बहुत मारूँगा, कहे देता हूँ।

श्यामा—तो तुमने मुझे दिखाया क्यों नहीं ?

केशव—और गिर पड़ती तो चार सर न हो जाते।

श्यामा—हो जाते, हो जाते। देख लेना मैं कह दूँगी।

इतने में कोठरी का दरवाजा खुला और मां ने धूप से आंखें को बचाते हुए कहा- तुम दोनों बाहर कब निकल आए ? मैंने कहा था न कि दोपहर को न निकलना ? किसने किवाड़ खोला ?

किवाड़ केशव ने खोला था, लेकिन श्यामा न मां से यह बात नहीं कही। उसे डर लगा कि भैया पिट जायेंगे। केशव दिल में कांप रहा था कि कहीं श्यामा कह न दे। अण्डे न दिखाए थे, इससे अब उसको श्यामा पर विश्वास न था श्यामा सिर्फ मुहब्बत के मारे चुप थी या इस क्रसूर में हिस्सेदार होने की वजह से, इसका फैसला नहीं किया जा सकता। शायद दोनों ही बातें थीं।

माँ ने दोनों को डॉट-डपटकर फिर कमरे में बंद कर दिया और आप धीरे-धीरे उन्हें पंखा झलने लगी। अभी सिर्फ दो बजे थे बाहर तेज लू चल रही थी। अब दोनों बच्चों को नींद आ गयी थी।

3.

चार बजे यकायक श्यामा की नींद खुली। किवाड़ खुले हुए थे। वह दौड़ी हुई कार्निंस के पास आयी और ऊपर की तरफ ताकने लगी। टोकरी का पता न था। संयोग से उसकी नजर नीचे गयी और वह उलटे पांव दौड़तीहुई कमरे में जाकर जोर से बोली—भइया,अण्डे तो नीचे पड़े हैं, बच्चे उड़ गए!

केशव घबराकर उठा और दौड़ा हुआ बाहर आया तो क्या देखता है कि तीनों अण्डे नीचे टूटे पड़े हैं और उनसे को चूने की-सी चीज बाहर निकल आयी है। पानी की प्याली भी एक तरफ टूटी पड़ी हैं।

उसके चेहरे का रंग उड़ गया। सहमी हुई आंखों से जमीन की तरफ देखने लगा।

श्यामा ने पूछा—बच्चे कहां उड़ गए भइया ?

केशव ने करुण स्वर में कहा—अण्डे तो फूट गए ।

‘और बच्चे कहां गये ?’

केशव—तेरे सर में। देखती नहीं है अण्डों से उजला-उजला पानी निकल आया है। वही दो-चार दिन में बच्चे बन जाते।

मां ने सोटी हाथ में लिए हुए पूछा—तुम दोनो वहां धूप में क्या कर रहें हो ?

श्यामा ने कहा—अम्मां जी, चिड़िया के अण्डे टूटे पड़े है।

मां ने आकर टूटे हुए अण्डों को देखा और गुस्से से बोली—तुम लोगों ने अण्डों को छुआ होगा ?

अब तो श्यामा को भइया पर ज़रा भी तरस न आया। उसी ने शायद अण्डों को इस तरह रख दिया कि वह नीचे गिर पड़े। इसकी उसे सजा मिलनी चाहिए बोली—इन्होंने अण्डों को छेड़ा था अम्मां जी।

मां ने केशव से पूछा—क्यों रे?

केशव भीगी बिल्ली बना खड़ा रहा।

मां—तू वहां पहुँचा कैसे?

श्यामा—चौके पर स्टूल रखकर चढ़े अम्मांजी।

केशव—तू स्टूल थामे नहीं खड़ी थी?

श्यामा—तुम्हीं ने तो कहा था !

मां—तू इतना बड़ा हुआ, तुझे अभी इतना भी नहीं मालूम कि छूने से चिड़ियों के अण्डेगन्दे हो जाते हैं। चिड़िया फिर इन्हें नहीं सेती।

श्यामा ने डरते-डरते पूछा—तो क्या चिड़िया ने अण्डे गिरा दिए हैं, अम्मां जी ?

मां—और क्या करती। केशव के सिर इसका पाप पड़ेगा। हाय, हाय, जानें ले लीं दुष्ट नें!

केशव रोनी सूरत बनाकर बोला—मैंने तो सिर्फ अण्डों को गद्दी पर रख दिया था, अम्मा जी !

मां को हंसी आ गयी। मगर केशव को कई दिनों तक अपनी गलती पर अफसोस होता रहा। अण्डों की हिफाजत करने के जोश में उसने उनका सत्यानाश कर डाला। इसे याद करके वह कभी-कभी रो पड़ता था।

दोनों चिड़ियां वहां फिर न दिखायी दीं।

--‘खाके परवाना’ से

प्रतिशोध

माया अपने तिमंजिले मकान की छत पर खड़ी सड़क की ओर उद्विग्न और अधीर आंखों से ताक रही थी और सोच रही थी, वह अब तक आये क्यों नहीं ? कहां देर लगायी ? इसी गाड़ी से आने को लिखा था। गाड़ी तो आ गयी होगी, स्टेशन से मुसाफिर चले आ रहे हैं। इस वक्त तो कोई दूसरी गाड़ी नहीं आती। शायद असबाब वगैरह रखने में देर हुई, यार-दोस्त स्टेशन पर बधाई देने के लिए पहुँच गये हों, उनसे फुर्सत मिलेगी, तब घर की सुध आयेगी ! उनकी जगह मैं होती तो सीधे घर आती। दोस्तों से कह देती, जनाब, इस वक्त मुझे माफ़ कीजिए, फिर मिलिएगा। मगर दोस्तों में तो उनकी जान बसती है !

मिस्टर व्यास लखनऊ के नौजवान मगर अत्यंत प्रतिष्ठित बैरिस्टरों में हैं। तीन महीने से वह एक राजीतिकमुकदमें की पैरवी करने के लिए सरकार की ओर से लाहौर गए हुए हैं। उन्होंने माया को लिखा था—जीत हो गयी। पहली तारीख को मैं शाम की मेल में जरूर पहुंचूंगा। आज वही शाम है। माया ने आज सारा दिन तैयारियों में बिताया। सारा मकान धुलवाया। कमरों की सजावट के सामान साफ कराये, मोटर धुलवायी। ये तीन महीने उसने तपस्या के काटे थे। मगर अब तक मिस्टर व्यास नहीं आये। उसकी छोटी बच्ची तिलोत्तमा आकर उसके पैरों में चिमट गयी और बोली—अम्मां, बाबूजी कब आयेंगे ?

माया ने उसे गोद में उठा लिया और चूमकर बोली—आते ही होंगे बेटो, गाड़ी तो कब की आ गयी।

तिलोत्तमा—मेरे लिए अच्छी गुड़ियां लाते होंगे।

माया ने कुछ जवाब न दिया। इन्तजार अब गुस्से में बदलता जाता था। वह सोच रही थी, जिस तरह मुझे हजरत परेशान कर रहे हैं, उसी तरह मैं भी उनको परेशान करूँगी। घण्टे-भर तक बोलूंगी ही नहीं। आकर स्टेशन पर

बैठे हुए है ? जलाने में उन्हें मजा आता है । यह उनकी पुरानी आदत है । दिल को क्या करूँ । नहीं, जी तो यही चाहता है कि जैसे वह मुझसे बेरुखी दिखलाते है, उसी तरह मैं भी उनकी बात न पूछूँ ।

यकायक एक नौकर ने ऊपर आकर कहा—बहू जी, लाहौर से यह तार आया है ।

माया अन्दर-ही-अन्दर जल उठी । उसे ऐसा मालूम हुआ कि जैसे बड़े जोर की हारारत हो गयी हो । बरबस खयाल आया—सिवाय इसके और क्या लिखा होगा कि इस गाड़ी से न आ सकूंगा । तार दे देना कौन मुश्किल है । मैं भी क्यों न तार दे दूँ कि मैं एक महीने के लिए मैके जा रही हूँ । नौकर से कहा—तार ले जाकर कमरे में मेज पर रख दो । मगर फिर कुछ सोचकर उसने लिफाफा ले लिया और खोला ही था कि कागज़ हाथ से छूटकर गिर पड़ा । लिखा था—मिस्टर व्यास को आज दस बजे रात किसी बदमाश ने कत्ल कर दिया ।

2.

कई महीने बीत गये। मगर खूनी का अब तक पता नहीं चला। खुफिया पुलिस के अनुभवी लोग उसका सुराग लगाने की फिक्र में परेशान हैं। खूनी को गिरफ्तार करा देनेवाले को बीस हजार रुपये इनाम दिये जाने का एलान कर दिया गया है। मगर कोई नतीजा नहीं।

जिस होटल में मिस्टर व्यास ठहरे थे, उसी में एक महीने से माया ठहरी हुई है। उस कमरे से उसे प्यार-सा हो गया है। उसकी सूरत इतनी बदल गयी है कि अब उसे पहचानना मुश्किल है। मगर उसके चेहरे पर बेकसी या दर्द का पीलापन नहीं क्रोध की गर्मी दिखाई पड़ती है। उसकी नशीली आँखों में अब खून की प्यास है और प्रतिशोध की लपट। उसके शरीर का एक-एक कण प्रतिशोध की आग से जला जा रहा है। अब यही उसके जीवन का ध्येय, यही उसकी सबसे बड़ी अभिलाषा है। उसके प्रेम की सारी निधि अब यही प्रतिशोध का आवेग हैं। जिस पापी ने उसके जीवन का सर्वनाश कर दिया उसे अपने सामने तड़पते देखकर ही उसकी आंखें ठण्डी होंगी। खुफिया पुलिस भय और लोभ, जाँच और पड़ताल से काम ले रही है, मगर माया ने अपने लक्ष्य पर पहुँचने के लिए एक दूसरा ही रास्ता अपनाया है। मिस्टर व्यास को प्रेत-विद्या से लगाव था। उनकी संगति में माया ने कुछ आरम्भिक अभ्यास किया था। उस वक्त उसके लिए यह एक मनोरंजन था। मगर अब यही उसके जीवन का सम्बल था। वह रोजाना तिलोत्तमा पर अमल करती और रोज-ब-रोज अभ्यास बढ़ाती जाती थी। वह उस दिन का इन्तजार कर रही थी जब अपने पति की आत्मा को बुलाकर उससे खूनी का सुराग लगा सकेगी। वह बड़ी लगन से, बड़ी एकाग्रचित्तता से अपने काम में व्यस्त थी। रात के दस बज गये थे। माया ने कमरे को अंधेरा कर दिया था और तिलोत्तमा पर अभ्यास कर रही थी। यकायक उसे ऐसा मालूम कि कमरे में कोई दिव्य व्यक्तित्व आया। बुझते हुए दीपक की अंतिम झलक की तरह एक रोशनी नज़र आयी।

माया ने पूछा—आप कौन हैं ?

तिलोत्तमा ने हंसकर कहा—तुम मुझे नहीं पहचानतीं ? मैं ही तुम्हारा मनमोहन हूँ जो दुनिया में मिस्टर व्यास के नाम से मशहूर था ।

‘आप खूब आये । मैं आपसे खूनी का नाम पूछना चाहती हूँ ।’

‘उसका नाम है, ईश्वरदास ।’

‘कहां रहता है ?’

‘शाहजहाँपुर ।’

माया ने मुहल्ले का नाम, मकान का नम्बर, सूरत-शक्ल, सब कुछ विस्तार के साथ पूछा और कागज पर नोट कर लिया । तिलोत्तमा जरा देर में उठ बैठी । जब कमरे में फिर रोशनी हुई तो माया का मुरझाया हुआ चेहरा विजय की प्रसन्नता से चमक रहा था । उसके शरीर में एक नया जोश लहरें मार रहा था कि जैसे प्यास से मरते हुए मुसाफिर को पानी मिल गया हो ।

उसी रात को माया ने लाहौर से शाहजहाँपुर आने का इरादा किया ।

3.

रात का वक्त। पंजाब मेल बड़ी तेजी से अंधेरे को चीरती हुई चली जा रही थी। माया एक सेकेण्ड क्लास के कमरे में बैठी सोच रही थी कि शाहजहाँपुर में कहां ठहरेगी, कैसे ईश्वरदास का मकान तलाशा करेगी और कैसे उससे खून का बदला लेगी। उसके बगल में तिलोत्तमा बेखबर सो रही थीं सामने ऊपर के बर्थ पर एक आदमी नींद में गाफ़िल पड़ा हुआ था।

यकायक गाड़ी का कमरा खुला और दो आदमी कोट-पतलून पहने हुए कमरेमें दाखिल हुए। दोनों अंग्रेज थे। एक माया की तरफ बैठा और दूसरा दूसरी तरफ। माया सिमटकर बैठ गयी। इन आदमियों को यों बैठना उसे बहुत बुरा मालूम हुआ। वह कहना चाहती थी, आप लोग दूसरी तरफ बैठें, पर वही औरत जो खून का बदला लेने जा रही थी, सामने यह खतरा देखकर कांप उठी। वह दोनों शैतान उसे सिमटते देखकर और भी करीब आ गये। माया अब वहां न बैठी रह सकी। वह उठकर दूसरे वर्थ पर जाना चाहती थी कि उनमें से एक ने उसका हाथ पकड़ लिया। माया ने जोर से हाथ छुड़ाने की कोशिश करके कहा—तुम्हारी शामत तो नहीं आयी है, छोड़ दो मेरा हाथ, सुअर?

इस पर दूसरे आदमी ने उठकर माया को सीने से लिपटा लिया। और लड़खड़ाती हुई जबान से बोला—वेल हम तुमका बहुत-सा रुपया देगा।

माया ने उसे सारी ताकत से ढ़केलने की कोशिश करते हुए कहा—हट जा हरामजादे, वर्ना अभी तेरा सर तोड़ दूंगी।

दूसरा आदमी भी उठ खड़ा हुआ और दोनों मिलकर माया को बर्थ पर लिटाने की कोशिश करने लगे। यकायक यह खटपट सुनकर ऊपर के बर्थ पर सोया हुआ आदी चौका और उन बदमाशों की हरकत देखकर ऊपर से कूद पड़ा। दोनों गोरे उसे देखकर माया को छोड़ उसकी तरफ झपटे और उसे घूंसे मारने लगे। दोनों उस पर ताबड़तोड़ हमला कर रहे थे और वह हाथों से अपने को बचा रहा था। उसे वार करने का कोई मौका न मिलता था।

यकायक उसने उचककर अपने बिस्तर में से एक छूरा निकाल दिया और आस्तीनें समेटकर बोला—तुम दोनों अगर अभी बाहर न चले गये तो मैं एक को भी जीता ना छोड़ूँ गा।

दोनों गोरे छुरा देखकर डरे मगर वह भी निहत्थे न थे। एक ने जेब से रिवाल्वर निकल लिया और उसकी नली उस आदमी की तरफ करके बोला—निकल जाओ, रैस्कल!

माया थर-थर कांप रही थी कि न जाने क्या आफत आने वाली है। मगर खतरा हमारी छिपी हुई हिम्मतों की कुंजी है। खतरे में पड़कर हम भय की सीमाओं से आगे बढ़ जाते हैं कुछ कर गुजरते हैं जिस पर हमें खुद हैरत होती है। वही माया जो अब तक थर-थर कांप रही थी, बिल्ली की तरह कूद कर उस गोरे की तरफ लपकी और उसके हाथ से रिवाल्वर खींचकर गाड़ी के नीचे फेंक दिया। गोरे ने खिसियाकर माया को दांत काटना चाहा मगर माया ने जल्दी से हाथ खींच लिया और खतरे की जंजीर के पास जाकर उसे जोर से खींचा। दूसरा गोरा अब तक किनारे खड़ा था। उसके पास कोई हथियार न था इसलिए वह छुरी के सामने न आना चाहता था। जब उसने देखा कि माया ने जंजीर खींच ली तो भीतर का दरवाजा खोलकर भागा। उसका साथी भी उसके पीछे-पीछे भागा। चलते-चलते छुरी वाले आदमी ने उसे इतने जोर से धक्का दिया कि वह मुंह के बल गिर पड़ा। फिर तो उसने इतनी ठोकरें, इतनी लातें और इतने घुंसे जमाये कि उसके मुंह से खून निकलपड़ा। इतने में गाड़ी रुक गयी और गार्ड लालटेन लिये आता दिखायी दिया।

4.

मगर वह दोनों शैतान गाड़ी को रुकते देख बेतहाशा नीचे कूद पड़े और उस अंधेरे में न जाने कहां खो गये । गार्ड ने भी ज्यादा छानबीन न की और करता भी तो उस अंधेरे में पता लगाना मुश्किल था । दोनों तरफ खड्ड थे, शायद किसी नदी के पास थीं । वहां दो क्या दो सौ आदमी उस वक्त बड़ी आसानी से छिप सकते थे । दस मिनट तक गाड़ी खड़ी रही, फिर चल पड़ी ।

माया ने मुक्ति की सांस लेकर कहा—आप आज न होते तो ईश्वर ही जाने मेरा क्या हाल होता आपके कहीं चोट तो नहीं आयी ?

उस आदमी ने छुरे को जेब में रखते हुए कहा—बिलकुल नहीं । मैं ऐसा बेसुध सोया हुआ था कि उन बदमाशों के आने की खबर ही न हुई । वरना मैंने उन्हें अन्दर पांव ही न रखने दिया होता । अगले स्टेशन पर रिपोर्ट करूंगा ।

माया—जी नहीं, खामखाह की बदनामी और परेशानी होगी । रिपोर्ट करने से कोई फायदा नहीं । ईश्वर ने आज मेरी आबरू रख ली । मेरा कलेजा अभी तक धड़-धड़ कर रहा है । आप कहां तक चलेंगे?

‘मुझे शाहजहाँपुर जाना है ।’

‘वहीं तक तो मुझे भी जाना है । शुभ नाम क्या है? कम से कम अपने उपकारक के नाम से तो अपरिचित न रहूँ ।’

‘मुझे तो ईश्वरदास कहते हैं ।’

‘माया का कलेजा धक् से हो गया । जरूर यह वही खूनी है, इसकी शक्ल-सूरत भी वही है जो उसे बतलायी गयी थीं उसने डरते-डरते पूछा—आपका मकान किस मुहल्ले में है ?’

‘.....में रहता हूँ ।’

माया का दिल बैठ गया । उसने खिड़की से सिर बाहर निकालकर एक लम्बीसांस ली । हाय ! खूनी मिला भी तो इस हालत में जब वह उसके एहसान के बोझ से दबी हुई है ! क्या उस आदमी को वह खंजर का निशाना

बना सकती है, जिसने बगैर किसी परिचय के सिर्फ हमदर्दी के जोश में ऐसे गाढ़े वक्त में उसकी मदद की ? जान पर खेल गया ? वह एक अजीब उलझन में पड़ गयी । उसने उसके चेहरे की तरफ देखा, शराफत झलक रही थी। ऐसा आदमी खून कर सकता है, इसमें उसे सन्देह था

ईश्वरदास ने पूछा—आप लाहौर से आ रही हैं न ? शाहजहाँ पुर में कहां जाइएगा ?

‘अभी तो कहीं धर्मशाला में ठहरूंगी, मकान का इन्तजाम करना है।’

ईश्वरदास ने ताज्जुब से पूछा—तो वहां आप किसी दोस्त या रिश्तेदार के यहाँ नहीं जा रही हैं?

‘कोई न कोई मिल ही जाएगा।’

‘यों आपका असली मकान कहां है?’

‘असली मकान पहले लखनऊ था, अब कहीं नहीं है। मै बेवा हूँ।’

5.

ईश्वर दास ने शाहजहाँपुर में माया के लिए एक अच्छा मकान तय कर दिया । एक नौकर भी रख दिया । दिन में कई बार हाल-चाल पूछने आता । माया कितना ही चाहती थी कि उसके एहसान न ले, उससे घनिष्ठता न पैदा करे, मगर वह इतना नेक, इतना बामुरौवत और शरीफ था कि माया मजबूर हो जाती थी ।

एक दिन वह कई गमले और फर्नीचर लेकर आया । कई खूबसूरत तसवीरें भी थीं । माया ने त्योंरियां चढ़ाकर कहा—मुझे साज-सामान की बिलकुल जरूरत नहीं, आप नाहक तकलीफ करते हैं ।

ईश्वरदास ने इस तरह लज्जित होकर कि जैसे उससे कोई भूल हो गयी हो कहा—मेरे घर में यह चीजें बेकार पड़ी थीं, लाकर रख दी ।

‘मैं इन टीम-टाम की चीजों का गुलाम नहीं बनना चाहती ।’

ईश्वरदास ने डरते-डरते कहा —अगर आपको नागवार हो तो उठवा ले जाऊँ ?

माया ने देखा कि उसकी आँखें भर आयी हैं, मजबूर होकर बोली—अब आप ले आये हैं तो रहने दीजिए । मगर आगे से कोई ऐसी चीज न लाइएगा

एक दिन माया का नौकर न आया । माया ने आठ-नौ बजे तक उसकी राह देखीं जब अब भी वह न आया तो उसने जूठे बर्तन मांजना शुरू किया । उसे कभी अपने हाथ से चौका —बर्तन करने का संयोग न हुआ था । बार-बार अपनी हालत पर रोना आता था एक दिन वह था कि उसके घर में नौकरों की एक पलटन थी, आज उसे अपने हाथों बर्तन मांजने पड़ रहे हैं । तिलोत्तमा दौड़-दौड़ कर बड़े जोश से काम कर रही थी । उसे कोई फिक्र न थी । अपने हाथों से काम करने का, अपने को उपयोगी साबित करने का ऐसा अच्छा मौका पाकर उसकी खुशी की सीमा न रही । इतने में ईश्वरदास आकर खड़ा हो गया और माया को बर्तन मांजते देखकर बोला—यह आप

क्या कर रही हैं ? रहने दीजिए, मैं अभी एक आदमी को बुलावाये लाता हूँ ।
आपने मुझे क्यों ने खबर दी, राम-राम, उठ आइये वहां से ।

माया ने लापरवाही से कहा—कोई जरूरत नहीं, आप तकलीफ न कीजिए । मैं अभी मांजे लेती हूँ ।

‘इसकी जरूरत भी क्या, मैं एक मिनट में आता हूँ ।’

‘नहीं, आप किसी को न लाइए, मैं इतने बर्तन आसानी से धो लूँगी ।’

‘अच्छा तो लाइए मैं भी कुछ मदद करूँ ।’

यह कहकर उसने डोल उठा लिया और बाहर से पानी लेने दौड़ा ।
पानी लाकर उसने मंजे हुए बर्तनों को धोना शुरू किया ।

माया ने उसके हाथ से बर्तन छीनने की कोशिश करके कहा—आप मुझे क्यों शर्मिन्दा करते हैं ? रहने दीजिए, मैं अभी साफ़ किये डालती हूँ ।

‘आप मुझे शर्मिन्दा करती हैं या मैं आपको शर्मिन्दा कर रहा हूँ? आप यहाँ मुसाफ़िर हैं , मैं यहां का रहने वाला हूँ, मेरा धर्म है कि आपकी सेवा करूँ । आपने एक ज्यादाती तो यह की कि मुझे जरा भी खबर न दी, अब दूसरी ज्यादाती यह कर रही हैं । मैं इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता ।’

ईश्वरदास ने जरा देर में सारे बर्तन साफ़ करके रख दिये । ऐसा मालूम होता था कि वह ऐसे कामों का आदी है । बर्तन धोकर उसने सारे बर्तन पानी से भर दिये और तब माथे से पसीना पोंछता हुआ बोला—बाजार से कोई चीज लानी हो तो बतला दीजिए, अभी ला दूँ ।

माया—जी नहीं, माफ़ कीजिए, आप अपने घर का रास्ता लीजिए ।

ईश्वरदास—तिलोत्तमा, आओ आज तुम्हें सैर करा लायें ।

माया—जी नहीं, रहने दीजिए । इस वक्त सैर करने नहीं जाती ।

माया ने यह शब्द इतने रूखेपन से कहे कि ईश्वरदास का मुंह उतर गया । उसने दुबारा कुछ न कहा । चुपके से चला गया । उसके जाने के बाद माया ने सोचा, मैंने उसके साथ कितनी बेमुरौवती की । रेलगाड़ी की उस दुःखद घटना के बाद उसके दिल में बराबर प्रतिशोध और मनुष्यता में लड़ाई

छिड़ी हुई थी। अगर ईश्वरदास उस मौके पर स्वर्ग के एक दूत की तरह न आ जाता तो आज उसकी क्या हालत होती, यह ख्याल करके उसके रोएं खड़े हो जाते थे और ईशवादास के लिए उसके दिल की गहराइयों से कृतज्ञता के शब्द निकलते। क्या अपने ऊपर इतना बड़ा एहसान करने वाले के खून से अपने हाथ रंगेगी ? लेकिन उसी के हाथों से उसे यह मनहूस दिन भी तो देखना पड़ा ! उसी के कारण तो उसने रेल का वह सफर किया था वरना वह अकेले बिना किसी दोस्त या मददगार के सफर ही क्यों करती ? उसी के कारण तो आज वह वैधव्य की विपत्तियां झेल रही है और सारी उम्र झेलेगी। इन बातों का खयाल करके उसकी आंखें लाल हो जातीं, मुंह से एक गर्म आह निकल जाती और जी चाहता इसी वक्त कटार लेकर चल पड़े और उसका काम तमाम कर दे।

6.

आज माया ने अन्तिम निश्चय कर लिया। उसने ईश्वरदास की दावत की थी। यही उसकी आखिरी दावत होगी। ईश्वरदास ने उस पर एहसान जरूर किये हैं लेकिन दुनिया में कोई एहसान, कोई नेकी उस शोक के दाग को मिटा सकती है ? रात के नौ बजे ईश्वरदास आया तो माया ने अपनी वाणी में प्रेम का आवेग भरकर कहा—बैठिए, आपके लिए गर्म-गर्म पूड़ियाँ निकाल दूँ ?

ईश्वरदास—क्या अभी तक आप मेरे इन्तजार में बैठी हुई हैं ? नाहक गर्मी में परेशान हुई।

माया ने थाली परसकर उसके सामने रखते हुए कहा—मैं खाना पकाना नहीं जानती ? अगर कोई चीज़ अच्छी न लगे तो माफ़ कीजिएगा।

ईश्वरदास ने खूब तारीफ़ करके एक-एक चीज़ खायी। ऐसी स्वादिष्ट चीज़ें उसने अपनी उम्र में कभी न खायी थी।

‘आप तो कहती थी मैं खाना पकाना नहीं जानती ?’

‘तो क्या मैं ग़लत कहती थी ?’

‘बिलकुल ग़लत। आपने खुद अपनी ग़लती साबित कर दी। ऐसे खस्ते मैंने जिन्दगी में भी न खाये थे।’

‘आप मुझे बनाते हैं, अच्छा साहब बना लीजिए।’

‘नहीं, मैं बनाता नहीं, बिलकुल सच कहता हूँ। किस-कीस चीज़ की तारीफ़ करूँ? चाहता हूँ कि कोई ऐब निकालूँ लेकिन सूझता ही नहीं। अबकी मैं अपने दोस्तों की दावत करूंगा तो आपको एक दिन तकलीफ़ दूंगा।’

‘हां, शौक्र से कीजिए, मैं हाजिर हूँ।’

खाते-खाते दस बज गये। तिलोत्तमा सो गयी। गली में भी सन्नाटा हो गया। ईश्वरदास चलने को तैयार हुआ, तो माया बोली—क्या आप चले जाएंगे ? क्यों न आज यहीं सो रहिए? मुझे कुछ डर लग रहा है। आप बाहर के कमरे में सो रहिएगा, मैं अन्दर आंगन में सो रहूँगी

ईश्वरदास ने क्षण-भर सोचकर कहा—अच्छी बात है। आपने पहले कभी न कहा कि आपको इस घर में डर लगता है वर्ना मैं किसी भरोसे की बुढ़ी औरत को रात को सोने के लिए ठीक कर देता।

ईश्वरदास ने तो कमरे में आसन जमाया, माया अन्दर खाना खाने गयी। लेकिन आज उसके गले के नीचे एक कौर भी न उतर सका। उसका दिल जोर-जोर से घड़क रहा था। दिल पर एक डर—सा छाया हुआ था। ईश्वरदास कहीं जाग पड़ा तो ? उसे उस वक्त कितनी शर्मिन्दगी होगी !

माया ने कटार को खूब तेज कर रखा था। आज दिन-भर उसे हाथ में लेकर अभ्यास किया। वह इस तरह वार करेगी कि खाली ही न जाये। अगर ईश्वरदास जाग ही पड़ा तो जानलेवा घाव लगेगा।

जब आधी रात हो गयी और ईश्वरदास के खर्टाटों की आवाजें कानों में आने लगी तो माया कटार लेकर उठी पर उसका सारा शरीर कांप रहा था। भय और संकल्प, आकर्षण और घृणा एक साथ कभी उसे एक कदम आगे बढ़ा देती, कभी पीछे हटा देती। ऐसा मालूम होता था कि जैसे सारा मकान, सारा आसमान चक्कर खा रहा हैं कमरे की हर एक चीज घूमती हुई नजर आ रही थी। मगर एक क्षण में यह बेचैनी दूर हो गयी और दिल पर डर छा गया। वह दबे पांव ईश्वरदास के कमरे तक आयी, फिर उसके क़दम वहीं जम गये। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। आह, मैं कितनी कमजोर हूँ, जिस आदमी ने मेरा सर्वनाश कर दिया, मेरी हरी-भरी खेती उजाड़ दी, मेरे लहलहाते हुए उपवन को वीरान कर दिया, मुझे हमेशा के लिए आग के जलते हुए कुंडों में डाल दिया, उससे मैं खून का बदला भी नहीं ले सकती ! वह मेरी ही बहनें थी, जो तलवार और बन्दूक लेकर मैदान में लड़ती थीं, दहकती हुई चिता में हंसते-हंसते बैठ जाती थी। उसे उस वक्त ऐसा मालूम हुआ कि मिस्टर व्यास सामने खड़े हैं और उसे आगे बढ़ने की प्रेरणा कर रहे हैं, कह रहे हैं, क्या तुम मेरे खून का बदला न लोगी ? मेरी आत्मा प्रतिशोध के लिए तड़प रही हैं। क्या उसे हमेशा-हमेशा यों ही तड़पाती रहोगी ? क्या यही वफ़ा की

शर्त थी ? इन विचारों ने माया की भावनाओं को भड़का दिया। उसकी आंखें खून की तरह लाल हो गयीं, होंठ दांतों के नीचे दब गये और कटार के हत्थे पर मुट्ठी बंध गयी। एक उन्माद-सा छा गया। उसने कमरे के अन्दर पैर रखा मगर ईश्वरदास की आंखें खुल गयी थीं। कमरे में लालटेन की मद्धिम रोशनी थी। माया की आहट पाकर वह चौंका और सिर उठाकर देखा तो खून सर्द हो गया—माया प्रलय की मूर्ति बनी हाथ में नंगी कटार लिये उसकी तरफ चली आ रही थी!

वह चारपाई से उठकर खड़ा हो गया और घबड़ाकर बोला—क्या है बहन ? यह कटार क्यों लिये हुए हो ?

माया ने कहा—यह कटार तुम्हारे खून की प्यासी है क्योंकि तुमने मेरे पति का खून किया है।

ईश्वरदास का चेहरा पीला पड़ गया। बोला—मैंने!

‘हां तुमने, तुम्हीं ने लाहौर में मेरे पति की हत्या की, जब वे एक मुकदमें की पैरवी करने गये थे। क्या तुम इससे इनकार कर सकते हो ? मेरे पति की आत्मा ने खुद तुम्हारा पता बतलाया है।’

‘तो तूम मिस्टर व्यास की बीवी हो?’

‘हां, मैं उनकी बदनसीब बीवी हूँ और तुम मेरा सोहागलूटनेवाले हो ! गो तुमने मेरे ऊपर एहसान किये हैं लेकिन एहसानों से मेरे दिल की आग नहीं बुझ सकती। वह तुम्हारी खून ही से बुझेगी।’

ईश्वरदास ने माया की ओर याचना-भरी आंखों से देखकर कहा—अगर आपका यही फैसला है तो लीजिए यह सर हाजिर है। अगर मेरे खून से आपके दिल की आग बुझ जाय तो मैं खुद उसे आपके कदमों पर गिरा दूँगा। लेकिन जिस तरह आप मेरे खून से अपनी तलवार की प्यास बुझाना अपना धर्म समझती हैं उसी तरह मैंने भी मिस्टर व्यास को क़त्ल करना अपना धर्म समझा। आपको मालूम है, वह एक रानीतिक मुकदमें की पैरवी करने लाहौर गये थे। लेकिन मिस्टर व्यास ने जिस तरह अपनी ऊंची कानूनी लियाकत का

इस्तेमाल किया, पुलिस को झुठीशहादतों के तैयार करने में जिस तरह मदद दी, जिस बेरहमी और बेदर्दी से बेकस और ज्यादा बेगुनाह नौजवानों को तबाह किया, उसे मैं सह न सकता था। उन दिनों अदालत में तमाशाइयों की बेइन्ता भीड़ रहती थी। सभी अदालत से मिस्टर व्यास को कोसते हुए जाते थे मैं तो मुकदमे की हकीकत को जानता था। इस लिए मेरी अन्तरात्मा सिर्फ कोसने और गालियाँ देने से शांत न हो सकती थी। मैं आपसे क्या कहूँ। मिस्टर व्यास ने आखं खोलकर समझ-बूझकर झूठ को सच साबित किया और कितने ही घरानों को बेचिराग कर दिया आज कितनी माए अपने बेटों के लिए खून के आंसू रो रही है, कितनी ही औरतें रंडापे की आग में जल रही है। पुलिस कितनी ही ज्यादातियां करे, हम परवाह नहीं करते। पुलिस से हम इसके सिवा और उम्मीद नहीं रखते। उसमे ज्यादातर जाहिल शोहदे लुच्चे भरे हुए हैं। सरकार ने इस महकमे को कायम ही इसलिए किया है कि वह रियाया को तंग करे। मगर वकीलो से हम इन्साफ की उम्मीद रखते हैं। हम उनकी इज्जत करते हैं। वे उच्चकोटि के पढ़े लिखे सजग लोग होते हैं। जब ऐसे आदमियों को हम पुलिस के हाथों की कठपुतली बना हुआ देखते हैं तो हमारे क्रोध की सीमा नहीं रहती मैं मिस्टर व्यास का प्रशंसक था। मगर जब मैंने उन्हें बेगुनाह मुलजिमों से जबरन जुर्म का इकबाल कराते देखा तो मुझे उनसे नफरत हो गयी। गरीब मुलजिम रात दिन भर उल्टे लटकाये जाते थे! सिर्फ इसलिए कि वह अपना जुर्म, तो उन्होंने कभी नहीं किया, इकबाल कर ले! उनकी नाक में लाल मिर्च का धुआं डाला जाता था! मिस्टर व्यास यह सारी ज्यादातियां सिर्फ अपनी आंखों से देखते ही नहीं थे, बल्कि उन्हीं के इशारे पर वह की जाती थी।

माया के चेहरे की कठोरता जाती रही। उसकी जगह जायज गुस्से की गर्मी पैदा हुई। बोली—इसका आपके के पास कोई सबूत है कि उन्होने मुलजिमों पर ऐसी सख्तियां की?

‘यह सारी बातें आमतौर पर मशहूर थीं। लाहौर का बच्चा बच्चा जानता है। मैंने खुद अपनी आंखों से देखी इसके सिवा मैं और क्या सबूत दे सकता हूँ उन बेचारों का बस इतना कसूर था। कि वह हिन्दुस्तान के सच्चे दोस्त थे, अपना सारा वक्त प्रजा की शिक्षा और सेवा में खर्च करते थे। भूखे रहते थे, प्रजा पर पुलिस हुक्काम की सख्ति या न होने देते थे, यही उनका गुनाह था और इसी गुनाह की सजा दिलाने में मिस्टर व्यास पुलिस के दाहिने हाथ बने हुए थे।’

माया के हाथ से खंजर गिर पड़ा। उसकी आंखों में आंसू भर आये, बोली मुझे न मालूम था कि वे ऐसी हरकतें भी कर सकते हैं।

ईश्वरदास ने कहा- यह न समझिए कि मैं आपकी तलवार से डर कर वकील साहब पर झूठे इल्जाम, लगा रहा हूँ। मैंने कभी जिन्दगी की परवाह नहीं की। मेरे लिए कौन रोने वाला बैठा हुआ है जिसके लिए जिन्दगी की परवाह करूँ। अगर आप समझती हैं कि मैंने अनुचित हत्या की है तो आप इस तलवार को उठाकर इस जिन्दगी का खात्मा कर दीजिए, मैं जरा भी न झिझकूंगा। अगर आप तलवार न उठा सके तो पुलिस को खबर कर दीजिए, वह बड़ी आसानी से मुझे दुनिया से रुखसत कर सकती है। सबूत मिल जाना मुश्किल न होगा। मैं खुद पुलिस के सामने जुर्म का इकबाल कर लेता मगर मैं इसे जुर्म नहीं समझता। अगर एक जान से सैकड़ों जाने बच जाएं तो वह खून नहीं है। मैं सिर्फ इसलिए जिन्दा रहना चाहता हूँ कि शायद किसी ऐसे ही मौके पर मेरी फिर जरूरत पड़े

माया ने रोते हुए- अगर तुम्हारा बयान सही है तो मैं अपना, खून माफ करती हूँ तुमने जो किया या बेजा किया इसका फैसला ईश्वर करेंगे। तुमसे मेरी प्रार्थना है कि मेरे पति के हाथों जो घर तबाह हुए हैं। उनका मुझे पता बतला दो, शायद मैं उनकी कुछ सेवा कर सकूँ।

-- प्रेमचालीसां से

देवी

रात भीग चुकी थी। मैं बरामदे में खड़ा था। सामने अमीनुददौला पार्क नींद में डूबा खड़ा था। सिर्फ एक औरत एक तकियादारवेचं पर बैठी हुई थी। पार्क के बाहर सड़क के किनारे एक फकीर खड़ा राहगीरो को दुआएं दे रहा था। खुदा और रसूल का वास्ता.....राम और भगवान का वास्ता.....इस अंधे पर रहम करो ।

सड़क पर मोटरों ओर सवारियों का तातां बन्द हो चुका था। इक्के—दुक्के आदमी नजर आ जाते थे। फकीर की आवाज जो पहले नक्कारखाने में तूती की आवाज थी अब खुले मैदान की बुलंद पुकार हो रही थी ! एकाएक वह औरत उठी और इधर उधर चौकन्नी आंखो से देखकर फकीर के हाथ में कुछ रख दिया और फिर बहुत धीमे से कुछ कहकर एक तरफ चली गयी। फकीर के हाथ मे कागज का टुकड़ा नजर आया जिसे वह बार बार मल रहा था। क्या उस औरत ने यह कागज दिया है ?

यह क्या रहस्य है ? उसके जानने के कूतूहल से अधीर होकर मैं नीचे आया ओर फकीर के पास खड़ा हो गया ।

मेरी आहट पाते ही फकीर ने उस कागज के पुर्जे को दो उंगलियों से दबाकर मुझे दिखाया। और पूछा,- बाबा, देखो यह क्या चीज है ?

मैंने देखा— दस रुपये का नोट था ! बोला— दस रुपये का नोट है, कहां पाया ?

फकीर ने नोट को अपनी झोली में रखते हुए कहा-कोई खुदा की बन्दी दे गई है।

मैंने ओर कुछ ने कहा। उस औरत की तरफ दौड़ा जो अब अधरे में बस एक सपना बनकर रह गयी थी।

वह कई गलियों मे होती हुई एक टूटे—फूटे गिरे-पड़े मकान के दरवाजे पर रुकी, ताला खोला और अन्दर चली गयी।

रात को कुछ पूछना ठीक न समझकर मैं लौट आया।

रातभर मेरा जी उसी तरफ लगा रहा। एकदम तड़के मैं फिर उस गली में जा पहुँचा। मालूम हुआ वह एक अनाथ विधवा है।

मैंने दरवाजे पर जाकर पुकारा — देवी, मैं तुम्हारे दर्शन करने आया हूँ। औरत बहार निकल आयी। गरीबी और बेकसी की जिन्दा तस्वीर मैंने हिचकते हुए कहा- रात आपने फकीर को.....

देवी ने बात काटते हुए कहा—अजी वह क्या बात थी, मुझे वह नोट पड़ा मिल गया था, मेरे किस काम का था।

मैंने उस देवी के कदमों पर सिर झुका दिया।

-प्रेमचालीसा' से

खुदी

मुन्नी जिस वक्त दिलदारनगर में आयी, उसकी उम्र पांच साल से ज्यादा न थी। वह बिलकुल अकेली न थी, माँ-बाप दोनों न मालूम मर गये या कहीं परदेस चले गये थे। मुन्नी सिर्फ इतना जानती थी कि कभी एक देवी उसे खिलाया करती थी और एक देवता उसे कंधे पर लेकर खेतों की सैर कराया करता था। पर वह इन बातों का जिक्र कुछ इस तरह करती थी कि जैसे उसने सपना देखा हो। सपना था या सच्ची घटना, इसका उसे ज्ञान न था। जब कोई पूछता तोरे माँ-बाप कहां गये ? तो वह बेचारी कोई जवाब देने के बजाय रोने लगती और यों ही उन सवाल्यों को टालने के लिए एक तरफ हाथ उठाकर कहती—ऊपर। कभी आसमान की तरफ देखकर कहती—वहां। इस ‘ऊपर’ और ‘वहां’ से उसका क्या मतलब था यह किसी को मालूम न होता। शायद मुन्नी को यह खुद भी मालूम न था। बस, एक दिन लोगों ने उसे एक पेड़ के नीचे खेलते देखा और इससे ज्यादा उसकी बाबत किसी को कुछ पता न था।

लड़की की सूरत बहुत प्यारी थी। जो उसे देखता, मोह जाता। उसे खाने-पीने की कुछ फ़िक्र न रहती। जो कोई बुलाकर कुछ दे देता, वही खा लेती और फिर खेलने लगती। शक्ल-सूरज से वह किसी अच्छे घर की लड़की मालूम होती थी। गरीब-से-गरीब घर में भी उसके खाने को दो कौर और सोने को एक टाट के टुकड़े की कमी न थी। वह सबकी थी, उसका कोई न था।

इस तरह कुछ दिन बीत गये। मुन्नी अब कुछ काम करने के क़ाबिल हो गयी। कोई कहता, ज़रा जाकर तालाब से यह कपड़े तो धो ला। मुन्नी बिना कुछ कहे-सुने कपड़े लेकर चली जाती। लेकिन रास्ते में कोई बुलाकर कहता, बेटी, कुएँ से दो घड़े पानी तो खींच ला, तो वह कपड़े वहीं रखकर घड़े लेकर कुएँ की तरफ चल देती। जरा खेत से जाकर थोड़ा साग तो ले आ और मुन्नी घड़े वहीं रखकर साग लेने चली जाती। पानी के इन्तज़ार में बैठी हुई औरत

उसकी राह देखते-देखते थक जाती। कुएँ पर जाकर देखती है तो घड़े रखे हुए हैं। वह मुन्नी को गालियाँ देती हुई कहती, आज से इस कलमुँही को कुछ खाने को न दूँगी। कपड़े के इन्तज़ार में बैठी हुई औरत उसकी राह देखते-देखते थक जाती और गुस्से में तालाब की तरफ़ जाती तो कपड़े वहीं पड़े हुए मिलते। तब वह भी उसे गालियाँ देकर कहती, आज से इसको कुछ खाने को न दूँगी। इस तरह मुन्नी को कभी-कभी कुछ खाने को न मिलता और तब उसे बचपन याद आता, जब वह कुछ काम न करती थी और लोग उसे बुलाकर खाना खिला देते थे। वह सोचती किसका काम करूँ, किसका न करूँ जिसे जवाब दूँ वही नाराज़ हो जायेगा। मेरा अपना कौन है, मैं तो सब की हूँ। उसे ग़रीब को यह न मालूम था कि जो सब का होता है वह किसी का नहीं होता। वह दिन कितने अच्छे थे, जब उसे खाने-पीने की और किसी की खुशी या नाखुशी की परवाह न थी। दुर्भाग्य में भी बचपन का वह समय चैन का था।

कुछ दिन और बीते, मुन्नी जवान हो गयी। अब तक वह औरतों की थी, अब मर्दों की हो गयी। वह सारे गाँव की प्रेमिका थी पर कोई उसका प्रेमी न था। सब उससे कहते थे—मैं तुम पर मरता हूँ, तुम्हारे वियोग में तारे गिनता हूँ, तुम मेरे दिलोजान की मुराद हो, पर उसका सच्चा प्रेमी कौन है, इसकी उसे खबर न होती थी। कोई उससे यह न कहता था कि तू मेरे दुःख-दर्द की शरीक हो जा। सब उससे अपने दिल का घर आबाद करना चाहते थे। सब उसकी निगाह पर, एक मद्धिम-सी मुस्कराहट पर कुर्बान होना चाहते थे; पर कोई उसकी बाँह पकड़नेवाला, उसकी लाज रखनेवाला न था। वह सबकी थी, उसकी मुहब्बत के दरवाजे सब पर खुले हुए थे; पर कोई उस पर अपना ताला न डालता था जिससे मालूम होता कि यह उसका घर है, और किसी का नहीं।

वह भोली-भाली लड़की जो एक दिन न जाने कहाँ से भटककर आ गयी थी, अब गाँव की रानी थी। जब वह अपने उन्नत वक्षों को उभारकर रुप-गर्व से गर्दन उठाये, नजाकत से लचकती हुई चलती तो मनचले नौजवान

दिल थामकर रह जाते, उसके पैरों तले आँखें बिछाते। कौन था जो उसके इशारे पर अपनी जान न निसार कर देता। वह अनाथ लड़की जिसे कभी गुड़ियाँ खेलने को न मिलीं, अब दिलों से खेलती थी। किसी को मारती थी। किसी को जिलाती थी, किसी को ठुकराती थी, किसी को थपकियाँ देती थी, किसी से रुठती थी, किसी को मनाती थी। इस खेल में उसे क्रल और खून का-सा मज़ा मिलता था। अब पौसा पलट गया था। पहले वह सबकी थी, कोई उसका न था; अब सब उसके थे, वह किसी की न थी। उसे जिसे चीज़ की तलाश थी, वह कहीं न मिलती थी। किसी में वह हिम्मत न थी जो उससे कहता, आज से तू मेरी है। उस पर दिल न्यौछावर करने वाले बहुतेरे थे, सच्चा साथी एक भी न था। असल में उन सरफ़िरों को वह बहुत नीची निगाह से देखती थी। कोई उसकी मुहब्बत के क़ाबिल नहीं था। ऐसे पस्त-हिम्मतों को वह खिलौनों से ज्यादा महत्व न देना चाहती थी, जिनका मारना और जिलाना एक मनोरंजन से अधिक कुछ नहीं।

जिस वक़्त कोई नौजवान मिठाइयों के थाल और फूलों के हार लिये उसके सामने खड़ा हो जाता तो उसका जी चाहता; मुंह नोच लूँ। उसे वह चीज़ें कालकूटहलाहल जैसी लगतीं। उनकी जगह वह रुखीरोटियाँ चाहती थी, सच्चे प्रेम में डूबी हुई। गहनों और अर्शफ़ियों के ढेर उसे बिच्छू के डंक जैसे लगते। उनके बदले वह सच्ची, दिल के भीतर से निकली हुई बातें चाहती थी जिनमें प्रेम की गंध और सच्चाई का गीत हो। उसे रहने को महल मिलते थे, पहनने को रेशम, खाने को एक-से-एक व्यंजन, पर उसे इन चीज़ों की आकांक्षा न थी। उसे आकांक्षा थी, फूस के झोंपड़े, मोटे-झोटे सूखे खाने। उसे प्राणघातक सिद्धियों से प्राणपोषक निषेध कहीं ज्यादा प्रिय थे, खुली हवा के मुकाबले में बंद पिंजरा कहीं ज्यादा चाहेता!

एक दिन एक परदेसी गांव में आ निकला। बहुत ही कमजोर, दीन-हीन आदमी था। एक पेड़ के नीचे सत्तू खाकर लेटा। एकाएक मुन्नी उधर से जा निकली। मुसाफ़िर को देखकर बोली—कहां जाओगे ?

मुसाफिर ने बेरुखी से जवाब दिया- जहन्नुम !

मुन्नी ने मुस्कराकर कहा- क्यों, क्या दुनिया में जगह नहीं?

‘औरों के लिए होगी, मेरे लिए नहीं।’

‘दिल पर कोई चोट लगी है?’

मुसाफिर ने ज़हरीली हंसी हंसकर कहा- बदनसीबों की तक्रदीर में और क्या है ! रोना-धोना और डूब मरना, यही उनकी जिन्दगी का खुलासा है। पहली दो मंजिल तो तय कर चुका, अब तीसरी मंजिल और बाकी है, कोई दिन वह पूरी हो जायेगी; ईश्वर ने चाहा तो बहुत जल्द।

यह एक चोट खाये हुए दिल के शब्द थे। जरूर उसके पहलू में दिल है। वरना यह दर्द कहां से आता ? मुन्नी बहुत दिनों से दिल की तलाश कर रही थी बोली—कहीं और वफ़ा की तलाश क्यों नहीं करते ?

मुसाफिर ने निराशा के भव से उत्तर दिया—तेरी तक्रदीर में नहीं, वरना मेरा क्या बना-बनाया घोंसला उजड़ जाता ? दौलत मेरे पास नहीं। रुप-रंग मेरे पास नहीं, फिर वफ़ा की देवी मुझ पर क्यों मेहरबान होने लगी ? पहले समझता था वफ़ा दिल के बदले मिलती है, अब मालूम हुआ और चीजों की तरह वह भी सोने-चाँदी से खरीदी जा सकती है।

मुन्नी को मालूम हुआ, मेरी नज़रों ने धोखा खाया था। मुसाफिर बहुत काला नहीं, सिर्फ सौंवला। उसका नाक-नक्शा भी उसे आकर्षक जान पड़ा। बोली—नहीं, यह बात नहीं, तुम्हारा पहला खयाल ठीक था।

यह कहकर मुन्नी चली गयी। उसके हृदय के भाव उसके संयम से बाहर हो रहे थे। मुसाफिर किसी खयाल में डूब गया। वह इस सुन्दरी की बातों पर गौर कर रहा था, क्या सचमुच यहां वफ़ा मिलेगी ? क्या यहाँ भी तक्रदीर धोखा न देगी ?

मुसाफिर ने रात उसी गाँव में काटी। वह दूसरे दिन भी न गया। तीसरे दिन उसने एक फूस का झोपड़ा खड़ा किया। मुन्नी ने पूछा—यह झोपड़ा किसके लिए बनाते हो ?

मुसाफ़िर ने कहा—जिससे वफ़ा की उम्मीद है।

‘चले तो न जाओगे?’

‘झोंपड़ा तो रहेगा।’

‘खाली घर में भूत रहते हैं।’

‘अपने प्यारे का भूत ही प्यारा होता है।’

दूसरे दिन मुन्नी उस झोंपड़े में रहने लगी। लोगों को देखकर ताज्जुब होता था। मुन्नी उस झोंपड़े में नहीं रह सकती। वह उस भोले मुसाफ़िर को जरूरद्रगा देगी, यह आम खयाल था, लेकिन मुन्नी फूली न समाती थी। वह न कभी इतनी सुन्दर दिखायी पड़ी थी, न इतनी खुश। उसे एक ऐसा आदमी मिल गया था, जिसके पहलू में दिल था।

2.

लेकिन मुसाफिर को दूसरे दिन यह चिन्ता हुई कि कहीं यहां भी वही अभागा दिन न देखना पड़े। रुप में वफ़ा कहाँ ? उसे याद आया, पहले भी इसी तरह की बातें हुई थीं, ऐसी ही कसम खायी गयी थीं, एक दूसरे से वादेकिए गए थे। मगर उन कच्चे धागों को टूटते कितनी देर लगी ? वह धागे क्या फिर न टूट जाएंगे ? उसके क्षणिक आनन्द का समय बहुत जल्द बीत गया और फिर वही निराशा उसके दिल पर छा गयी। इस मरहम से भी उसके जिगर का जख्म न भरा। तीसरे रोज वह सारे दिन उदास और चिन्तित बैठा रहा और चौथे रोज लापता हो गया। उसकी यादगार सिर्फ उसकी फूस की झोंपड़ी रह गयी।

मुन्नी दिन-भर उसकी राह देखती रही। उसे उम्मीद थी कि वह जरूर आयेगा। लेकिन महीनों गुजर गये और मुसाफिर न लौटा। कोई खत भी न आया। लेकिन मुन्नी को उम्मीद थी, वह जरूर आएगा।

साल बीत गया। पेड़ों में नयी-नयी कोपलें निकलीं, फूल खिले, फल लगे, काली घटाएं आयीं, बिजली चमकी, यहां तक कि जाड़ा भी बीत गया और मुसाफिर न लौटा। मगर मुन्नी को अब भी उसके आने की उम्मीद थी; वह जरा भी चिन्तित न थी, भयभीत न थी वह दिन-भर मजदूरी करती और शाम को झोंपड़े में पड़ रहती। लेकिन वह झोंपड़ा अब एक सुरक्षित किला था, जहां सिरफिरों के निगाह के पांव भी लंगड़े हो जाते थे।

एक दिन वह सर पर लकड़ी का गट्टा लिए चली आती थी। एक रसियों ने छेड़खानी की—मुन्नी, क्यों अपने सुकुमार शरीर के साथ यह अन्याय करती हो ? तुम्हारी एक कृपा दृष्टि पर इस लकड़ी के बराबर सोना न्यौछावर कर सकता हूँ।

मुन्नी ने बड़ी घृणा के साथ कहा—तुम्हारा सोना तुम्हें मुबारक हो, यहां अपनी मेहनत का भरोसा है।

‘क्यों इतना इतराती हो, अब वह लौटकर न आयेगा।’

मुन्नी ने अपने झोंपड़े की तरफ इशारा करके कहा—वह गया कहां जो लौटकर आएगा ? मेरा होकर वह फिर कहां जा सकता है ? वह तो मेरे दिल में बैठा हुआ है !

इसी तरह एक दिन एक और प्रेमीजन ने कहा—तुम्हारे लिए मेरा महल हाजिर है। इस टूटे-फूटे झोंपड़े में क्यों पड़ी हो ?

मुन्नी ने अभिमान से कहा—इस झोंपड़े पर एक लाख महल न्यौछावर हैं। यहां मैंने वह चीज़ पाई है, जो और कहीं न मिली थी और न मिल सकती है। यह झोंपड़ा नहीं है, मेरे प्यारे का दिल है !

इस झोंपड़े में मुन्नी ने सत्तर साल काटे। मरने के दिन तक उसे मुसाफ़िर केलौटने की उम्मीद थी, उसकी आखिरी निगाहें दरवाजे की तरफ लगी हुई थीं। उसके खरीदारों में कुछ तो मर गए, कुछ जिन्दा हैं, मगर जिस दिन से वह एक की हो गयी, उसी दिन से उसके चेहरे पर दीप्ति दिखाई पड़ी जिसकी तरफ़ ताकते ही वासना की आंखें अंधी हो जातीं। खुदी जब जाग जाती है तो दिल की कमजोरियां उसके पास आते डरती हैं।

-‘खाके परवाना’ से

बड़े बाबू

तीन सौ पैंसठ दिन, कई घण्टे और कई मिनट की लगातार और अनथक दौड़-धूप के बाद मैं आखिर अपनी मंजिल पर धड़ से पहुँच गया। बड़े बाबू के दर्शन हो गए। मिट्टी के गोले ने आग के गोले का चक्कर पूरा कर लिया। अब तो आप भी मेरी भूगोल की लियाकत के कायल हो गए। इसे रुपक न समझिएगा। बड़े बाबू में दोपहर के सूरज की गर्मी और रोशनी थी और मैं क्या और मेरी बिसात क्या, एक मुट्ठी खाक। बड़े बाबू मुझे देखकर मुस्कराये। हाय, यह बड़े लोगों की मुस्कराहट, मेरा अधमरा-सा शरीर कांपते लगा। जी मैं आया बड़े बाबू के कदमों पर बिछ जाऊँ। मैं काफिर नहीं, गालिब का मुरीद नहीं, जन्नत के होने पर मुझे पूरा यकीन है, उतरा ही पूरा जितना अपने अंधेरे घर पर। लेकिन फरिश्ते मुझे जन्नत ले जाने के लिए आए तो भी यकीनन मुझे वह जबरदस्त खुशी न होती जो इस चमकती हुई मुस्कराहट से हुई। आंखों में सरसों फूल गई। सारा दिल और दिमाग एक बगीचा बन गया। कल्पना ने मिस्र के ऊँचे महल बनाने शुरू कर दिये। सामने कुर्सियों, पर्दों और खस की टट्टियों से सजा-सजाया कमरा था। दरवाजे पर उम्मीदवारों की भीड़ लगी हुई थी और ईजानिब एक कुर्सी पर शान से बैठे हुए सबको उसका हिस्सा देने वाले खुदा के दुनियाबी फ़र्ज अदा कर रहे थे। नजर-मियाज़ का तूफ़ान बरपा था और मैं किसी तरफ़ आंख उठाकर न देखता था कि जैसे मुझे किसी से कुछ लेना-देना नहीं।

अचानक एक शेर जैसी गरज ने मेरे बनते हुए महल में एक भूचाल-सा ला दिया—क्या काम है? हाय रे, ये भोलापन ! इस पर सारी दुनिया के हसीनों का भोलापन और बेपरवाही निसार है। इस ड्याढ़ी पर माथा रगड़ते-रगड़ते तीनों सौ पैंसठ दिन, कई घण्टे और कई मिनट गुजर गए। चौखट का पत्थर घिसकर जमीन से मिल गया। ईदू बिसाती की दुकान के आधे खिलौने

और गोवर्द्धन हलवाई की आधी दुकान इसी ड्यौढ़ी की भेंट चढ़ गयी और मुझसे आज सवाल होता है, क्या काम है !

मगर नहीं, यह मेरी ज्यादाती हैं सरासर जुल्म। जो दिमाग बड़े-बड़े मुल्की और माली तमहुनी मसलों में दिन-रात लगा रहता है, जो दिमाग डाकूमेंटों, सरकुलरों, परवानों, हुक्मनामों, नक्शों वगैरह के बोझ से दबा जा रहा हो, उसके नजदीक मुझ जैसे खाक के पुतले की हस्ती ही क्या। मच्छर अपने को चाहे हाथी समझ ले पर बैल के सींग को उसकी क्या खबर। मैंने दबी जबान में कहा—हुजूर की कदमबोसी के लिए हाजिर हुआ।

बड़े बाबू गरजे—क्या काम है?

अबकी बार मेरे रोएं खड़े हो गए। खुदा के फ़जल से लहीम-शहीम आदमी हूँ, जिन दिनों कालेज में था, मेरे डील-डौल और मेरी बहादुरी और दिलेरी की धूम थी। हाकी टीम का कप्तान, फुटबाल टीम का नायब कप्तान और क्रिकेट का जनरल था। कितने ही गोरों के जिस्म पर अब भी मेरी बहादुरी के दाग बाकी होंगे। मुमकिन है, दो-चार अब भी बैसाखियां लिए चलते या रेंगते हों। 'बम्बईक्रानिकल' और 'टाइम्स' में मेरे गेंदों की धूम थी। मगर इस वक्त बाबू साहब की गरज सुनकर मेरा शरीर कांपने लगा। कांपते हुए बोला—हुजूर की कदमबोसी के लिए हाजिर हुआ।

बड़े बाबू ने अपना स्लीपरदार पैर मेरी तरफ़ बढ़ाकर कहा—शौक से लीजिए, यह कदम हाजिर है, जितने बोसे चाहे लीजिए, बेहिसाब मामले हैं, मुझसे कसम ले लीजिए जो मैं गिन्नू जब तक आपका मुंह न थक जाए, लिए जाइए ! मेरे लिए इससे बढ़कर खुशनसीबी का क्या मौका होगा ? औरों को जो बात बड़े जप-तप, बड़े संयम-व्रत से मिलती है, वह मुझे बैठे-बिठाये बग़ैर हड़-फिटकरी लगाए हासिल हो गयी। वल्लाह, हूँ मैं भी खुशनसीब। आप अपने दोस्त-अहबाब, आत्मीय-स्वजन जो हों, उन सबको लायें तो और भी अच्छा, मेरे यहां सबको छूट है !

हंसी के पर्दे में यह जो जुल्म बड़े बाबू कर रहे थे उस पर शायद अपने दिल में उनको नाज हो। इस मनहूस तकदीर का बुरा हो, जो इस दरवाजे का भिखारी बनाए हुए है। जी में तो आया कि हज़रत के बड़े हुए पैर को खींच लूं और आपको जिन्दगी-भर के लिए सबक दे दूँ कि बदनसीबी से दिल्लगी करने का यह मजा है मगर बदनसीबी अगर दिल पर ज़ब्र न कराये, जिल्लत का अहसास न पैदा करे तो वह बदनसीबी क्यों कहलाए। मैं भी एक जमाने में इसी तरह लोगों को तकलीफ पहुँचाकर हंसता था। उस वक्त इन बड़े बाबुओं की मेरी निगाह में कोई हस्ती न थी। कितने ही बड़े बाबुओं को रुलाकर छोड़ दिया। कोई ऐसा प्रोफेसर न था, जिसका चेहरा मेरी सूरत देखते ही पीला न पड़ जाता हो। हजार-हजार रुपया पाने वाले प्रोफेसरों की मुझसे कोर दबकी थी। ऐसे क्लर्कों को मैं समझता ही क्या था। लेकिन अब वह जमाना कहां। दिल में पछताया कि नाहक कदमबोसी का लफ़्ज़ जबान पर लाया। मगर अपनी बात कहना जरूरी था। मैं पक्का इरादा करके अया था कि उस ड्यौढ़ी से आज कुछ लेकर ही उठूंगा। मेरे धीरज और बड़े बाबू के इस तरह जान-बूझकर अनजान बनने में रस्साकशी थी। दबी ज़बान से बोला—हुज़ूर, ग्रेजुएट हूँ।

शुक्र है, हज़ार शुक्र हैं, बड़े बाबू हंसे। जैसे हांडी उबल पड़ी हो। वह गरज और वह करखत आवाज न थी। मेरा माथा रगड़ना आखिर कहां तक असर न करता। शायद असर को मेरी दुआ से दुश्मनी नहीं। मेरे कान बड़ी बेक्रारी से वे लफ़्ज़ सुनने के लिए बेचैन हो रहे थे जिनसे मेरी रुह को खुशी होगी। मगर आह, जितनी मायूसी इन कानों को हुई है उतनी शायद पहाड़ खोदने वाले फ़रहाद को भी न हुई होगी। वह मुस्कराहट न थी, मेरी तकदीर की हंसी थी। हुज़ूर ने फ़रमाया—बड़ी खुशी की बात है, मुल्क और क्रौम के लिए इससे ज्यादा खुशी की बात और क्या हो सकती है। मेरी दिली तमन्ना है, मुल्क का हर एक नौजवान ग्रेजुएट हो जाए। ये ग्रेजुएट ज़िन्दगी के जिस मैदान में जाय, उस मैदान को तरक्की ही देगा—मुल्की, माली, तमदुनी (मजहबी)

गरज कि हर एक किस्म की तहरीक का जन्म और तरक्की ग्रेजुएटों ही पर मुनहसर है। अगर मुल्क में ग्रेजुएटों का यह अफ़सोसनाक अकाल न होता तो असहयोग की तहरीक क्यों इतनी जल्दी मुर्दा हो जाती ! क्यों बने हुए रंगे सियार, दगाबाजजरपस्त लीडरों को डाकेजनी के ऐसे मौके मिलते! तबलीग क्यों मुबल्लिगे अलेहुस्सलाम की इल्लत बनती! ग्रेजुएट में सच और झूठ की परख, निगाह का फैलाव और जांचने-तोलने की क़ाबिलियत होना जरूरी बात है। मेरी आंखें तो ग्रेजुएटों को देखकर नशे के दर्जे तक खुशी से भर उठती हैं। आप भी खुदा के फ़जल से अपनी किस्म की बहुत अच्छी मिसाल हैं, बिल्कुल आप-टू-डेट। यह शेरवानी तो बरकत एण्ड को की दुकान की सिली हुई होगी। जूते भी डासन के हैं। क्यों न हो। आप लोगों ने कौम की जिन्दगी के मैयार को बहुत ऊंचा बना दिया है और अब वह बहुत जल्द अपनी मंजिल पर पहुँचेगी। ब्लैकबर्ड पेन भी है, वेस्ट एण्ड की रिस्टवाच भी है। बेशक अब कौमी बेड़े को ख्वाजा खिज़र की जरूरत भी नहीं। वह उनकी मिन्नत न करेगा।

हाय तक्रदीर और वाय तक्रदीर ! अगर जानता कि यह शेरवानी और फ़ाउंटेनपेन और रिस्टवाच यों मज़ाक का निशाना बनेगी, तो दोस्तों का एहसान क्यों लेता। नमाज़बख़्शवाने आया था, रोज़े गले पड़े। किताबों में पढ़ा था, ग़रीबी की हुलिया ऐलान है अपनी नाकामी का, न्यूता देना है अपनी जिल्लत कों। तजुर्बा भी यही कहता था। चीथड़े लगाये हुए भिखमंगों को कितनी बेदर्दी से दुतकारता हूँ लेकिन जब कोई हजरत सूफ़ी-साफ़ी बने हुए, लम्बे-लम्बे बाल कंधों पर बिखरे, सुनहरा अमामा सर पर बांका-तिरछा शान से बांधे, संदली रंग का नीचा कुर्ता पहने, कमरे में आ पहुँचते हैं तो मजबूर होकर उनकी इज्जत करनी पड़ती है और उनकी पाकीज़गी के बारे में हजारों शुबहे पैदा होने पर भी छोटी-छोटी रक़म जो उनकी नज़र की जाती है, वह एक दर्जन भिखारियों को अच्छा खाना खिलाने के सामान इकट्ठा कर देती। पुरानी मसल है—भेस से ही भीख मिलती है। पर आज यह बात ग़लत साबित हो

गयी । अब बीवी साहिबा की वह तम्बीह याद आयी जो उसने चलते वक्त दी थी—क्यों बेकार अपनी बइज्जती कराने जा रहे हो । वह साफ़ समझेंगे कि यह मांगे-जांचे का ठाठ है । ऐसे रईस होते तो मेरे दरवाजे पर आते क्यों । उस वक्त मैंने इस तम्बीह को बीवी की कमनिगाह और उसका गंवारपन समझा था । पर अब मालूम हुआ कि गंवारिनें भी कभी-कभी सूझ की बातें कहते हैं । मगर अब पछताना बेकार है । मैंने आजिज़ी से कहा—हुजूर, कहीं मेरी भी परवरिश फ़रमायें ।

बड़े बाबू ने मेरी तरफ़ इस अन्दाज़ से देखा जैसे मैं किसी दूसरी दुनिया का कोई जानवर हूँ और बहुत दिलासा देने के लहजे में बोले—आपकी परवरिश खुदा करेगा । वही सबका रज्ज़ाक है, दुनिया जब से शुरु हुई तब से तमाम शायर, हकीम और औलिया यही सिखाते आये हैं कि खुदा पर भरोसा रख और हम हैं कि उनकी हिदायत को भूल जाते हैं । लेकिन खैर, मैं आपको नेक सलाह देने में कंजूसी न करूँगा । आप एक अखबार निकाल लीजिए । यकीन मानिए इसके लिए बहुत ज्यादा पढ़े-लिखे होने की जरूरत नहीं और आप तो खुदा के फ़ज़ल से ग्रेजुएट हैं । स्वादिष्ट तिलाओं और स्तम्भन-बटियों के नुस्खें लिखिए । तिब्बे अकबर में आपको हज़ारों नुस्खे मिलेंगे । लाइब्रेरी जाकर नकल कर लाइए और अखबार में नये नाम से छापिए । कोकशास्त्र तो आपने पढ़ा ही होगा अगर न पढ़ा हो तो एक बार पढ़ जाइए और अपने अखबार में शादी के मर्जों के तरीकेलिखिए । कामेन्द्रिय के नाम जितने ज्यादा आ सकें, बेहतर है फिर देखिए कैसे डाक्टर और प्रोफेसर और डिप्टी कलेक्टर आपके भक्त हो जाते हैं । इसका खयाल रहे कि यह काम हकीमाना अन्दाज़ से किया जाए । ब्योपारी और हकीमाना अन्दाज़ में थोड़ा फ़र्क़ है, ब्योपारीसिर्फ़ अपनी दवाओं की तारीफ़ करता है, हकीम परिभाषाओं और सूक्तियों को खोलकर अपने लेखों को इल्मी रंग देता है । ब्योपारी की तारीफ़ से लोग चिढ़ते हैं, हकीम की तारीफ़ भरोसा दिलाने वाली होती है । अगर इस मामले में कुछ समझने-बूझने की जरूरत हो तो रिसाला

‘दरवेश’ हाज़िर हैं अगर इस काम में आपको कुछ दिक्कत मालूम होती हो, तो स्वामी श्रद्धानन्द की खिदमत में जाकर शुद्धि पर आमादगी जाहिर कीजिए—फिर देखिए आपकी कितनी खातिर-तवाजों होती है। इतना समझाये देता हूँ कि शुद्धि के लिए फौरन तैयार न हो जाइएगा। पहले दिन तो दो-चार हिन्दू धर्म की किताबें मांग लाइयेगा। एक हफ्ते के बाद जाकर कुछ एतराज कीजिएगा। मगर एतराज ऐसे हो जिनका जवाब आसानी से दिया जा सके इससे स्वामीजी को आपकी छान-बीन और जानने की ख्वाहिश का यकीन हो जायेगा। बस, आपकी चांदी है। आप इसके बाद इसलाम की मुखालिफत पर दो-एक मजमून या मजमूनों का सिलसिला किसी हिन्दू रिसाले में लिख देंगे तो आपकी जिन्दगी और रोटी का मसला हल हो जाएगा। इससे भी सरल एक नुस्खा है—तबलीगी मिशन में शरीक हो जाइए, किसी हिन्दू औरत, खासकर नौजवान बेवा, पर डोरे डालिए। आपको यह देखकर हैरत होगी कि वह कितनी आसानी से आपसे मुहब्बत करने लग जाती है। आप उसकी अंधेरी जिन्दगी के लिए एक मशाल साबित होंगे। वह उज़ नहीं करती, शौक से इसलाम कबूल कर लेगी। बस, अब आप शहीदों में दाखिल हो गए। अगर जरा एहतियात से काम करते रहें तो आपकी जिन्दगी बड़े चैन से गुजरेगी। एक ही खेवे में दीनो-दुनिया दोनों ही पार हैं। जनाब लीडर बन जाएंगे वल्लाह, एक हफ्ते में आपका शुमार नामी-गरामी लोगों में होने लगेगा, दीन के सच्चे पैरोकार। हजारों सीधे-सादे मुसलमान आपको दीन की डूबती हुई किशती का मल्लाह समझेंगे। फिर खुदा के सिवा और किसी को खबर न होगी कि आपके हाथ क्या आता है और वह कहां जाता है और खुदा कभी राज नहीं खोला करता, यह आप जानते ही हैं। ताज्जुब है कि इन मौकों पर आपकी निगाह क्यों नहीं जाती ! मैं तो बुझा हो गया और अब कोई नया काम नहीं सीख सकता, वरना इस वक्त लीडरों का लीडर होता।

इस आग की लपट जैसे मज़ाक ने जिस्म में शोले पैदा कर दिये। आंखों से चिनगारियां निकलने लगीं। धीरज हाथ से छूटा जा रहा था। मगर

कहरे दरवेश बर जाने दरवेश(भिखारी का गुस्सा अपनी जान पर) के मुताबिक सर झुकाकर खड़ा रहा। जितनी दलीलें दिमाग में कई दिनों से चुन चुनकर रखी थीं, सब धरी रह गयीं। बहुत सोचने पर भी कोई नया पहलू ध्यान में न आया। यों खुदा के फ़ज़ल से बेवकूफ़ या कुन्दजेहन नहीं हूँ, अच्छा दिमाग पाया है। इतने सोच-विचार से कोई अच्छी-सी गजल हो जाती। पर तबीयत ही तो है, न लड़ी। इत्तफ़ाक से जेब में हाथ डाला तो अचानक याद आ गया कि सिफारिशी खतों का एक पोथा भी साथ लाया हूँ। रोब का दिमाग पर क्या असर पड़ता है इसका आज तजुर्बा हो गया। उम्मीद से चेहरा फूल की तरह खिल उठा। खतों का पुलिन्दा हाथ में लेकर बोला—हुजूर, यह चन्द खत हैं इन्हें मुलाहिजा फरमा लें।

बड़े बाबू ने बण्डल लेकर मेज़ पर रख दिया और उस पर एक उड़ती हुई नज़र डालकर बोले—आपने अब तक इन मोतियों को क्यों छिपा रक्खा था ?

मेरे दिल में उम्मीद की खुशी का एक हंगामा बरपा हो गया। जबान जो बन्द थी, खुल गयी। उमंग से बोला—हुजूर की शान-शौकत ने मुझ पर इतना रोब डाल दिया और कुछ ऐसा जादू कर दिया कि मुझे इन खतों की याद न रही। हुजूर से मैं बिना नमक-मिर्च लगाये सच-सच कहता हूँ कि मैंने इनके लिए किसी तरह की कोशिश या सिफारिश नहीं पहुँचायी। किसी तरह की दौड़-भाग नहीं की।

बड़े बाबू ने मुस्कराकर कहा—अगर आप इनके लिए ज्यादा से ज्यादा दौड़-भाग करने में भी अपनी ताक़त खर्च करते तो भी मैं आपको इसके लिए बुरा-भला न कहता। आप बेशक बड़े खुशनसीब हैं कि यह नायाब चीज़ आपको बेमांग मिल गई, इसे जिन्दगी के सफ़र का पासपोर्ट समझिए। वाह, आपको खुदा के फ़ज़ल से एक एक से एक क़द्रदान नसीब हुए। आप जहीन हैं, सीधे-सच्चे हैं, बेलौस हैं, फर्माबरदार हैं। ओप्फोह, आपके गुणों की तो कोई इन्तहा ही नहीं है। कसम खुदा की, आपमें तो तमाम

भीतरी और बाहरी कमाल भरे हुए हैं। आपमें सूझ-बूझ गम्भीरता, सच्चाई, चौकसी, कुलीनता, शराफत, बहादुरी, सभी गुण मौजूद हैं। आप तो नुमाइश में रखे जाने के क़ाबिल मालूम होते हैं कि दुनिया आपको हैरत की निगाह से देखे तो दांतों तले उंगली दबाये। आज किसी भले का मुंह देखकर उठा था कि आप जैसे पाकीजा आदमी के दर्शन हुए। यह वे गुण हैं जो जिन्दगी के हर एक मैदान में आपको शोहरत की चोटी तक पहुँचा सकते हैं। सरकारी नौकरी आप जैसे गुणियों की शान के क़ाबिल नहीं। आपको यह कब गवारा होगा। इस दायरे में आते ही आदमी बिलकुल जानवर बन जाता है। बोलिए, आप इसे मंजूर कर सकते हैं? हरगिज़ नहीं।

मैंने डरते-डरते कहा—जनाब, ज़रा इन लफ्जों को खोलकर समझा दीजिए। आदमी के जानवर बनजाने से आपकी क्या मंशा है?

बड़े बाबू ने त्योंरी चढ़ाते हुए कहा—या तो कोई पेचीदा बात न थी जिसका मतलब खोलकर बतलाने की ज़रूरत हो। तब तो मुझे बात करने के अपने ढंग में कुछ तरमीम करनी पड़ेगी। इस दायरे के उम्मीदवारों के लिए सबसे ज़रूरी और लाज़िमी सिफ़त सूझ-बूझ है। मैं नहीं कह सकता कि मैं जो कुछ कहना चाहता हूँ, वह इस लफ्ज से अदा होता है या नहीं। इसका अंग्रेज़ी लफ्ज है इनटुइशन—इशारे के असली मतलब को समझना। मसलन अगर सरकार बहादुर यानी हाकिम जिला को शिकायत हो कि आपके इलाके में इनकमटैक्स कम वसूल होता है तो आपका फ़र्ज है कि उसमें अंधाधुन्ध इजाफ़ा करें। आमदनी की परवाह न करें। आमदनी का बढ़ना आपकी सूझबूझ पर मुनहसर है। एक हल्की-सी धमकी काम कर जाएगी और इनकमटैक्स दुगुना-तिगुना हो जाएगा। यकीनन आपको इस तरह अपना ज़मीर (अन्तःकरण) बेचना गवारा न होगा।

मैंने समझ लिया कि मेरा इम्तहान हो रहा है, आशिकों जैसे जोश और सरगर्मी से बोला—मैं तो इसे ज़मीर बेचना नहीं समझता, यह तो नमक का हक्क है। मेरा ज़मीर इतना नाज़ुक नहीं है।

बड़े बाबू ने मेरी तरफ़ क़द्रदानी की निगाह से देखकर कहा—
शाबाश, मुझे तुमसे ऐसे ही जवाब की उम्मीद थी। आप मुझे होनहार मालूम
होते हैं। लेकिन शायद यह दूसरी शर्त आपको मंजूर न हो। इस दायरे के
मुरीदों के लिए दूसरी शर्त यह है कि वह अपने को भूल जाएं। कुछ आया
आपकी समझ में ?

मैंने दबी जबान में कहा—जनाब को तकलीफ़ तो होगी मगर जरा
फिर इसको खोलकर बतला दीजिए।

बड़े बाबू ने तयोरियों पर बल देते हुए कहा—जनाब, यह बार-बार का
समझाना मुझे बुरा मालूम होता है। मैं इससे ज्यादा आसान तरीक़े पर खयालों
को ज़ाहिर नहीं कर सकता। अपने को भूल जाना बहुत ही आम मुहावरा है।
अपनी खुदी को मिटा देना, अपनी शख्सियत को फ़ना कर देना, अपनी
पर्सनालिटी को खत्म कर देना। आपकी वज़ा-कज़ा से आपके बोलने, बात
करने के ढंग से, आपके तौर-तरीकों से आपकी हिन्दियत मिट जानी चाहिए।
आपके मज़हबी, अखलाकी और तमद्दुनीअसरो का बिलकुल ग़ायब हो जाना
ज़रूर है। मुझे आपके चेहरे से मालूम हो रहा है कि इस समझाने पर भी आप
मेरा मतलब नहीं समझ सके। सुनिए, आप ग़ालिबन मुसलमान हैं। शायद
आप अपने अक़ीदों में बहुत पक्के भी हों। आप नमाज़ और रोज़े के पाबन्द
हैं?

मैंने फ़ख़ से कहा—मैं इन चीज़ों का उतना ही पाबन्द हूँ जितना कोई
मौलवी हो सकता है। मेरी कोई नमाज़ क़ज़ा नहीं हुई। सिवाय उन वक्तों के
जब मैं बीमार था।

बड़े बाबू ने मुस्कराकर कहा—यह तो आपके अच्छे अखलाक ही
कह देते हैं। मगर इस दायरे में आकर आपको अपने अक़ीदे और अमल में
बहुत कुछ काट-छांट करनी पड़ेगी। यहां आपका मज़हब मज़हबियत का
जामा अख़्तियार करेगा। आप भूलकर भी अपनी पेशानी को किसी सिजदे में
न झुकाएं, कोई बात नहीं। आप भूलकर भी ज़कात के झगड़े में न फूसें, कोई

बात नहीं। लेकिन आपको अपने मजहब के नाम पर फ़रियाद करने के लिए हमेशा आगे रहना और दूसरों को आमदा करना होगा। अगर आपके ज़िले में दो डिप्टी कलक्टर हिन्दू हैं और मुसलमान सिर्फ़ एक, तो आपका फ़र्ज होगा कि हिजएक्सेलेंसीगवर्नर की खिदमत में एक डेपुटेशन भेजने के लिए कौम के रईसों में आमदा करें। अगर आपको मालूम हो कि किसी म्युनिसिपैलिटी ने क्रसाइयों को शहर से बाहर दूकान रखने की तजवीज़ पास कर दी है तो आपका फ़र्ज होगा कि कौम के चौधरियों को उस म्युनिसिपैलिटी का सिर तोड़ने के लिए तहरीक करें। आपको सोते-जागते, उठते-बैठते जात-पौत का राग अलापना चाहिए। मसलन इम्तहान के नतीजों में अगर आपको मुसलमान विद्यार्थियों की संख्या मुनासिब से कम नज़र आये तो आपको फौरन चांसकर के पास एक गुमनाम ख़त लिख भेजना होगा कि इस मामले में जरूर ही सख्ती से काम लिया गया है। यह सारी बातें उसी इनटुइशनवाली शर्त के भीतर आ जाती हैं। आपको साफ़-साफ़ शब्दों में या इशारों से यह काम करने से लिए हिदायत न की जाएगी। सब कुछ आपकी सूझ-सूझ पर मुनहसर होगा। आपमें यह जौहर होगा तो आप एक दिन जरूर ऊंचे ओहदे पर पहुँचेंगे। आपको जहां तक मुमकिन हो, अंग्रेज़ी में लिखना और बोलना पड़ेगा। इसके बग़ैर हुक्काम आपसे खुश न होंगे। लेकिन क़ौमी ज़बान की हिमायत और प्रचार की सदा आपकी ज़बान से बराबर निकलती रहनी चाहिए। आप शौक़ से अखबारों का चन्दा हज़म करें, मंगनी की किताबें पढ़ें चाहे वापसी के वक्त किताब के फट-चिंथ जाने के कारण आपको माफ़ी ही क्यों न मांगनी पड़े, लेकिन जबान की हिमायत बराबर जोरदार तरीक़े से करते रहिए। खुलासा यह कि आपको जिसका खाना उसका गाना होगा। आपको बातों से, काम से और दिल से अपने मालिक की भलाई में और मजबूती से उसको जमाये रखने में लगे रहना पड़ेगा। अगर आप यह खयाल करते हों कि मालिक की खिदमत के ज़रिये कौम की खिदमत की करुंगा तो

यह झूठ बात है, पागलपन है, हिमाकृत है। आप मेरा मतलब समझ गये होंगे। फ़रमाइए, आप इस हद तक अपने को भूल सकते हैं?

मुझे जवाब देने में जरा देर हुई। सच यह है कि मैं भी आदमी हूँ और बीसवीं सदी का आदमी हूँ। मैं बहुत जागा हुआ न सही, मगर बिलकुल सोया हुआ भी नहीं हूँ, मैं भी अपने मुल्क और क्रौम को बुलन्दी पर देखना चाहता हूँ। मैंने तारीख पढ़ी है और उससे इसी नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मज़हब दुनिया में सिर्फ एक है और उसका नाम है—दर्द। मज़हब की मौजूदा सूरत धड़ेबंदी के सिवाय और कोई हैसियत नहीं रखती। खतने या चोटी से कोई बदल नहीं जाता। पूजा के लिए कलिसा, मसजिद, मन्दिर की मैं बिलकुल जरूरत नहीं समझता। हाँ, यह मानता हूँ कि घमण्ड और खुदगरजी को दबाये रखने के लिए कुछ करना जरूरी है। इसलिए नहीं कि उससे मुझे जन्नत मिलेगी या मेरी मुक्ति होगी, बल्कि सिर्फ इसलिए कि मुझे दूसरों के हक़ छीनने से नफ़रत होगी। मुझमें खुदी का खासा जुज़ मौजूद है। यों अपनी खुशी से कहिए तो आपकी जूतियाँ सीधी करुँलकिन हुकूमत की बरदाश्त नहीं। महकूम बनना शर्मनाक समझता हूँ। किसी ग़रीब को जुल्म का शिकार होते देखकर मेरे खून में गर्मी पैदा हो जाती है। किसी से दबकर रहने से मर जाना बेहतर समझता हूँ। लेकिन खयाल हालतों पर तो फ़तह नहीं पा सकता। रोज़ीफ़ि़क्र तो सबसे बड़ी। इतने दिनों के बाद बड़े बाबू की निगाहे करम को अपनी ओर मुड़ता देखकर मैं इसके सिवा कि अपना सिर झुका दूँ, दूसरा कर ही क्या सकता था। बोला- जनाब, मेरी तरफ़ से भरोसा रखें। मालिक की खिदमत में अपनी तरफ़ से कुछ उठा न रखूँगा।

‘ग़ैरत को फ़ना कर देना होगा।’

‘मंज़ूर।’

‘शराफ़त के ज़ब्तों को उठाकर ताक़ पर रख देना होगा।’

‘मंज़ूर।’

‘मुखबिरी करनी पड़ेगी?’

‘मंजूर।’

‘तो बिस्मिल्लाह, कल से आपका नाम उम्मीदवारों की फ़ेहरिस्त में लिख दिया जायेगा।’

मैंने सोचा था कल से कोई जगह मिल जायेगी। इतनी जिल्लत क़बूल करने के बाद रोजी की फ़िक से तो आज़ाद हो जाऊँगा। अब यह हक़ीकत खुली। बरबस मुंह से निकला—और जगह कब तक मिलेगी?

बड़े बाबू हंसे, वही दिल दुखानेवाली हंसी जिसमें तौहीन का पहलू खास था—जनाब, मैं कोई ज्योतिषी नहीं, कोई फ़कीर-दरवेश नहीं, बेहतर है इस सवाल का जवाब आप किसी औलिया से पूछें। दस्तरखान बिछा देना मेरा काम है। खाना आयेगा और वह आपके हलक में जायेगा, यह पेशीनगोई मैं नहीं कर सकता।

मैंने मायूसी के साथ कहा—मैं तो इससे बड़ी इनायत का मुन्तज़िर था।

बड़े बाबू कुर्सी से उठकर बोले—क़सम खुदा की, आप परले दर्जे के कूड़मग़ज़ आदमी हैं। आपके दिमाग में भूसा भरा है। दस्तरखान का आ जाना आप कोई छोटी बात समझते हैं? इन्तज़ार का मज़ा आपकी निगाह में कोई चीज़ ही नहीं? हालांकि इन्तज़ार में इन्सानउमरें गुज़ार सकता है। अमलों से आपका परिचय हो जाएगा। मामले बिठाने, सौदे पटाने के सुनहरे मौके हाथ आयेंगे। हुक्काम के लड़के पढ़ाइये। अगर गंडे-तावीज का फ़न सीख लीजिए तो आपके हक़ में बहुत मुफ़्तीद हो। कुछ हकीमी भी सीख लीजिए। अच्छे होशियार सुनारों से दोस्ती पैदा किजिए, क्योंकि आपको उनसे अक्सर काम पड़ेगा। हुक्काम की औरतें आप ही के मार्फ़त अपनी ज़रूरतें पूरी करायेंगी। मगर इन सब लटकों से ज्यादा कारगर एक और लटका है, अगर वह हुनर आप में है, तो यक़ीनन आपके इन्तज़ार की मुद्दत बहुत कुछ कम हो सकती है। आप बड़े-बड़े हाकिमों के लिए तफ़रीह का सामान जुटा सकते हैं !

बड़े बाबू मेरी तरफ़ कनखियों से देखकर मुस्कराये। तफ़रीह के सामान से उनका क्या मतलब है, यह मैं न समझ सका। मगर पूछते हुए भी डर लगता था कि कहीं बड़े बाबू बिगड़ न जाएं और फिर मामला खराब हो जाए। एक बेचैनी की-सी हालत में जमीन की तरफ़ ताकने लगा।

बड़े बाबू ताड़ तो गये कि इसकी समझ में मेरी बात न आयी लेकिन अबकीउनकी तयोरियों पर बल नहीं पड़े। न ही उनके लहजे में हमदर्दी की झलक फ़रमायी—यह तो ग़ैर-मुमकिन है कि आपने बाज़ार की सैर न की हो।

मैंने शर्माते हुए कहा—नहीं हुजूर, बन्दा इस कूचे को बिलकुल नहीं जानता।

बड़े बाबू—तो आपको इस कूचे की खाक छाननी पड़ेगी। हाकिम भी आंख-कान रखते हैं। दिन-भर की दिमागी थकन के बाद स्वभावतः रात को उनकी तबियत तफ़रीह की तरफ़ झुकती हैं। अगर आप उनके लिए आँखों को अच्छा लगनेवाले रुप और कानों को भानेवाले संगीत का इन्तज़ाम सस्ते दामों कर सकते हैं या कर सकें तो...

मैंने किसी क्रदर तेज़ होकर कहा—आपका कहने का मतलब यह है कि मुझे रुप की मंडी की दलाली करनी पड़ेगी ?

बड़े बाबू—तो आप तेज़ क्यों होते हैं, अगर अब तक इतनी छोटी-सी बात आप नहीं समझे तो यह मेरा क्रसूर है या आपकी अक्ल का !

मेरे जिस्म में आग लग गयी। जी में आया कि बड़े बाबू को जुजुत्सू के दो-चार हाथ दिखाऊँ, मगर घर की बेसरोसामानी का खयाल आ गया। बीवी की इन्तजार करती हुई आंखें और बच्चों की भूखी सूरतें याद आ गयीं। जिल्लत का एक दरिया हलक़ से नीचे ढकेलते हुए बोला—जी नहीं, मैं तेज़ नहीं हुआ था। ऐसी बेअदबी मुझसे नहीं हो सकती। (आंखों में आंसू भरकर) जरूरत ने मेरी ग़ैरत को मिटा दिया है। आप मेरा नाम उम्मीदवारों में दर्ज कर

देँ। हालात मुझसे जो कुछ करायेंगे वह सब करूँगा और मरते दम तक
आपका एहसानमन्द रहूँगा।

-‘खाके परवाना’से

राष्ट्र का सेवक

राष्ट्र के सेवक ने कहा—देश की मुक्ति का एक ही उपाय है और वह है नीचों के साथ भाईचारे का सुलूक, पतितों के साथ बराबरी को बताव। दुनिया में सभी भाई हैं, कोई नीचा नहीं, कोई ऊँचा नहीं।

दुनिया ने जयजयकार की—कितनी विशाल दृष्टि है, कितना भावुक हृदय !

उसकी सुन्दर लड़की इन्दिरा ने सुना और चिन्ता के सागर में डूब गयी।

राष्ट्र के सेवक ने नीची जात के नौजवान को गले लगाया।

दुनिया ने कहा—यह फ़रिश्ता है, पैग़म्बर है, राष्ट्र की नैया का खेवैया है।

इन्दिरा ने देखा और उसका चेहरा चमकने लगा।

राष्ट्र का सेवक नीची जात के नौजवान को मंदिर में ले गया, देवता के दर्शन कराये और कहा—हमारा देवता गरीबी में है, जिल्लत में है ;पस्ती में हैं।

दुनिया ने कहा—कैसे शुद्ध अन्तःकरण का आदमी है ! कैसा ज्ञानी !

इन्दिरा ने देखा और मुस्करायी।

इन्दिरा राष्ट्र के सेवक के पास जाकर बोली— श्रद्धेय पिता जी, मैं मोहन से ब्याह करना चाहती हूँ।

राष्ट्र के सेवक ने प्यार की नजरों से देखकर पूछा—मोहन कौन हैं?

इन्दिरा ने उत्साह-भरे स्वर में कहा—मोहन वही नौजवान है, जिसे आपने गले लगाया, जिसे आप मंदिर में ले गये, जो सच्चा, बहादुर और नेक है।

राष्ट्र के सेवक ने प्रलय की आंखों से उसकी ओर देखा और मुँह फेर लिया।

—‘प्रेम चालीसा’ से

आखिरी तोहफ़ा

सारे शहर में सिर्फ एक ऐसी दुकान थी, जहाँ विलायती रेशमी साड़ी मिल सकती थीं। और सभी दुकानदारों ने विलायती कपड़े पर कांग्रेस की मुहर लगवायी थी। मगर अमरनाथ की प्रेमिका की फ़रमाइश थी, उसको पूरा करना जरूरी था। वह कई दिन तक शहर की दुकानोंका चक्कर लगाते रहे, दुगुना दाम देने पर तैयार थे, लेकिन कहीं सफल-मनोरथ न हुए और उसके तक़ाजे बराबर बढ़ते जाते थे। होली आ रही थी। आखिर वह होली के दिन कौन-सी साड़ी पहनेगी। उसके सामने अपनी मजबूरी को जाहिर करना अमरनाथ के पुरुषोचित अभिमान के लिए कठिन था। उसके इशारे से वह आसमान के तारे तोड़ लाने के लिए भी तत्पर हो जाते। आखिर जब कहीं मक़सद पूरा न हुआ, तो उन्होंने उसी खास दुकान पर जाने का इरादा कर लिया। उन्हें यह मालूम था कि दुकान पर धरना दिया जा रहा है। सुबह से शाम तक स्वयंसेवक तैनात रहते हैं और तमाशाइयों की भी हरदम खासी भीड़ रहती है। इसलिए उस दुकान में जाने के लिए एक विशेष प्रकार के नैतिक साहस की जरूरत थी और यह साहस अमरनाथ में जरूरत से कम था। पड़े-लिखे आदमी थे, राष्ट्रीय भावनाओं से भी अपरिचित न थे, यथाशक्ति स्वदेशी चीज़ें ही इस्तेमाल करते थे। मगर इस मामले में बहुत कट्टर न थे। स्वदेशी मिल जाय तो बेहतर वर्ना विदेशी ही सही- इस उसूल के मानने वाले थे। और खासकर जब उसकी फरमाइश थी तब तो कोई बचाव की सूरत ही न थी। अपनी जरूरतों को तो वह शायद कुछ दिनों के लिए टाल भी देते, मगर उसकी फरमाइश तो मौत की तरह अटल है। उससे मुक्ति कहाँ ! तय कर लिया कि आज साड़ी जरूर लायेंगे। कोई क्यों रोके? किसी को रोकने का क्या अधिकार हैं? माना स्वदेशी का इस्तेमाल अच्छी बात है लेकिन किसी को जबर्दस्ती करने का क्या हक़ है? अच्छी आजादी की लड़ाई है जिसमें व्यक्ति की आजादी का इतना बेदरदी से खून हो !

यों दिल को मजबूत करके वह शाम को दुकान पर पहुँचे। देखा तो पाँचवालण्टियरपिकेटिंग कर रहे हैं और दुकान के सामने सड़क पर हज़ारों तमाशाई खड़े हैं। सोचने लगे, दुकान में कैसे जाएं। कई बार कलेजा मजबूत किया और चले मगर बरामदे तक जाते-जाते हिम्मत ने जवाब दे दिया।

संयोग से एक जान-पहचान के पण्डितजी मिल गये। उनसे पूछा—क्यों भाई, यह धरना कब तक रहेगा? शाम तो हो गयी।

पण्डितजी ने कहा—इन सिरफिरों को सुबह और शाम से क्या मतलब, जब तक दुकान बन्द न हो जाएगी, यहां से न टलेंगे। कहिए, कुछ खरीदने को इरादा है? आप तो रेशमी कपड़ा नहीं खरीदते?

अमरनाथ ने विवशता की मुद्रा बनाकर कहा—मैं तो नहीं खरीदता। मगर औरतों की फ़रमाइश को कैसे टालूँ।

पण्डितजी ने मुस्कराकर कहा—वाह, इससे ज्यादा आसान तो कोई बात नहीं। औरतों को भी चकमा नहीं दे सकते? सौ हीले-हजार बहाने हैं।

अमरनाथ—आप ही कोई हीला सोचिए।

पण्डितजी—सोचना क्या है, यहाँ रात-दिन यही किया करते हैं। सौ-पचास हीले हमेशा जेबों में पड़े रहते हैं। औरत ने कहा, हार बनवा दो। कहा, आज ही लो। दो-चार रोज़ के बाद कहा, सुनार माल लेकर चम्पत हो गया। यह तो रोज का धन्धा है भाई। औरतों का काम फ़रमाइश करना है, मर्दों का काम उसे खूबसूरती से टालना है।

अमरनाथ—आप तो इस कला के पण्डित मालूम होते हैं !

पण्डितजी—क्या करें भाई, आबरु तो बचानी ही पड़ती है। सूखा जवाब दें तो शर्मिंदगी अलग हो, बिगड़ें वह अगल से, समझें, हमारी परवाह ही नहीं करते। आबरु का मामला हैं। आप एक काम कीजिए। यह तो आपने कहा ही होगा कि आजकल पिकेटिंग है?

अमरनाथ—हां, यह तो बहाना कर चुका भाई, मगर वह सुनती ही नहीं, कहती है, क्या विलायती कपड़े दुनिया से उठ गये, मुझसे चले हो उड़ने!

पण्डितजी—तो मालूम होता है, कोई धुन की पक्की औरत है। अच्छा तो मैं एक तरकीब बताऊँ। एक खाली कार्ड का बक्स ले लो, उसमें पुराने कपड़ेजलाकर भर लो। जाकर कह देना, मैं कपड़े लिये आता था, वालण्टियरों ने छीनकर जला दिये। क्यों, कैसीरेहगी?

अमरनाथ—कुछ जंचती नहीं। अजी, बीस एतराज़ करेंगी, कहीं पर्दाफ़ाश हो जाय तो मुफ्त की शर्मिदगी उठानी पड़े।

पण्डितजी—तो मालूम हो गया, आप बोदे आदमी हैं और हैं भी आप कुछ ऐसे ही। यहाँ तो कुछ इस शान से हीले करते हैं कि सच्चाई की भी उसके आगे धुल हो जाय। जिन्दगी यही बहाने करते गुजरी और कभी पकड़े न गये। एक तरकीब और है। इसी नमूने का देशी माल ले जाइए और कह दीजिए कि विलायती है।

अमरनाथ—देशी और विलायती की पहचान उन्हें मुझसे और आपसे कहीं ज्यादा हैं। विलायती पर तो जल्द विलायती का यक्रीन आयेगा नहीं, देशी की तो बात ही क्या है !

एक खद्वरपोश महाशय पास ही खड़े यह बातचीत सुन रहे थे, बोल उठे— ए साहब, सीधी-सी तो बात है, जाकर साफ़ कह दीजिए कि मैं विदेशी कपड़े न लाऊंगा। अगर जिद करे तो दिन-भर खाना न खाइये, आप सीधे रास्ते पर आ जायेगी।

अमरनाथ ने उनकी तरफ कुछ ऐसी निगाहों से देखा जो कह रही थीं, आप इस कूचे को नहीं जानते और बोले—यह आप ही कर सकते हैं, मैं नहीं कर सकता।

खद्वरपोश—कर तो आप भी सकते हैं लेकिन करना नहीं चाहते। यहां तो उन लोगों में से हैं कि अगर विदेशी दुआ से मुक्ति भी मिलती हो तो उसे ठुकरा दें।

अमरनाथ—तो शायद आप घर में पिकेटिंग करते होंगे?

खद्वरपोश—पहले घर में करके तब बाहर करते हैं भाई साहब।

खदरपोश साहब चले गये तो पण्डितजी बोले—यह महाशय तो तीसमारखां से भी तेज़ निकल। अच्छा तो एक काम कीजिए। इस दुकान के पिछवाड़े एक दूसरा दरवाज़ा है, ज़रा अंधेरा हो जाय तो उधर चले जाइएगा, दायें-बायें किसी की तरफ़ न देखिएगा।

अमरनाथ ने पण्डितजी को धन्यवाद दिया और जब अंधेरा हो गया तो दुकान के पिछवाड़े की तरफ़ जा पहुँचे। डर रहे थे, कहीं यहां भी घेरा न पड़ा हो। लेकिन मैदान खाली था। लपककर अन्दर गये, एक ऊँचे दामों की साड़ी खरीदी और बाहर निकले तो एक देवीजी केसरिया साड़ी पहने खड़ी थीं। उनको देखकर इनकी रुह फ़ना हो गयी, दरवाजे से बाहर पांव रखने की हिम्मत नहीं हुई। एक तरफ़ देखकर तेजी से निकल पड़े और कोई सौ कदम भागते हुए चले गये। कम्र का लिखा, सामने से एक बुढ़िया लाठी टेकती चली आ रही थी। आप उससे लड़ गये। बुढ़िया गिर पड़ी और लगी कोसने—अरे अभागो, यह जवानी बहुत दिन न रहेगी, आंखों में चर्बी छा गयी है, धक्के देता चलता है !

अमरनाथ उसकी खुशामद करने लगे—माफ़ करो, मुझे रात को कुछ कम दिखाई पड़ता है। ऐनक घर भूल आया।

बुढ़िया का मिज़ाज ठण्डा हुआ, आगे बढ़ी और आप भी चले। एकाएक कानों में आवाज आयी, ‘बाबू साहब, जरा ठहरियेगा’ और वही केसरिया कपड़ोवाली देवीजी आती हुई दिखायी दीं।

अमरनाथ के पांव बंध गये। इस तरह कलेजा मजबूत करके खड़े हो गये जैसे कोई स्कूली लड़का मास्टर की बेंत के सामने खड़ा होता है।

देवीजी ने पास आकर कहा—आप तो ऐसे भागे कि मैं जैसे आपको काट खाऊँगी। आप जब पढ़े-लिखे आदमी होकर अपना धर्म नहीं समझते तो दुख होता है। देश की क्या हालत है, लोगों को खदर नहीं मिलता, आप रेशमी साड़ियां खरीद रहे हैं !

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा—मैं सच कहता हूँ देवीजी, मैंने अपने लिए नहीं खरीदी, एक साहब की फ़रमाइश थीं

देवीजी ने झोली से एक चूड़ी लिकालकर उनकी तरफ़ बढ़ाते हुए कहा—ऐसे हीले रोज़ ही सुना करती हूँ। या तो आप उसे वापस कर दीजिए या लाइए हाथ मैं चूड़ी पहना दूँ।

अमरनाथ—शौक से पहना दीजिए। मैं उसे बड़े गर्व से पहनूँगा। चूड़ी उस बलिदान का चिह्न है जो देवियों के जीवन की विशेषता है। चूड़ियाँ उन देवियों के हाथ में थीं जिनके नाम सुनकर आज भी हम आदर से सिर झुकाते हैं। मैं तो उसे शर्म की बात नहीं समझता। आप अगर और कोई चीज पहनाना चाहें तो वह भी शौक से पहना दीजिए। नारी पूजा की वस्तु है, उपेक्षा की नहीं। अगर स्त्री, जो क्रौम को पैदा करती हैं, चूड़ी पहनना अपने लिए गौरव की बात समझती है तो मर्दों के लिए चूड़ी पहनाना क्यों शर्म की बात हो?

देवीजी को उनकी इस निर्लज्जता पर आश्चर्य हुआ मगर वह इतनी आसानी से अमरनाथ को छोड़नेवाली न थीं। बोलीं—आप बातों के शेर मालूम होते हैं। अगर आप हृदय से स्त्री को पूजा की वस्तु मानते हैं, तो मेरी यह विनती क्यों नहीं मान जाते?

अमरनाथ—इसलिए कि यह साड़ी भी एक स्त्री की फरमाइश है।

देवी—अच्छा चलिए, मैं आपके साथ चलूँगी, जरा देखूँ आपकी देवी जी किस स्वभाव की स्त्री हैं।

अमरनाथ का दिल बैठ गया। बेचारा अभी तक बिना-ब्याहा था, इसलिए नहीं कि उसकी शादी न होती थी बल्कि इसलिए कि शादी को वह एक आजीवन कारावास समझता था। मगर वह आदमी रसिक स्वभाव के थे। शादी से अलग रहकर भी शादी के मजों से अपिरचित न थे। किसी ऐसे प्राणी की जरूरत उनके लिए अनिवार्य थी जिस पर वह अपने प्रेम को समर्पित कर सकें, जिसकी तरावट से वह अपनी रूखी-सूखी जिन्दगी को

तरो-ताज़ा कर सकें, जिसके प्रेम की छाया में वह जरा देर के लिए ठण्डक पा सकें, जिसके दिल में वह अपनी उमड़ी हुई जवानी की भावनाओं को बिखेरकर उनका उगना देख सकें। उनकी नज़र ने मालती को चुना था जिसकी शहर में घूम थी। इधर डेढ़-दो साल से वह इसी खलिहान के दाने चुना करते थे। देवीजी के आग्रह ने उन्हें थोड़ी देर के लिए उलझन में डाल दिया था। ऐसी शर्मिंदगी उन्हें जिन्दगी में कभी न हुई थी। बोले-आज तो वह एक न्योते में गई हैं, घर में न होंगी।

देवीजी ने अविश्वास से हंसकर कहा-तो मैं समझ यह आपकी देवीजी का कुसूर नहीं, आपका कुसूर है।

अमरनाथ ने लज्जित होकर कहा-मैं आपसे सच कहता हूँ, आज वह घर पर नहीं।

देवी ने कहा-कल आ जाएंगी?

अमरनाथ बोले-हां, कल आ जाएंगी।

देवी-तो आप यह साड़ी मुझे दे दीजिए और कल यहीं आ जाइएगा, मैं आपके साथ चलूँगी। मेरे साथ दो-चार बहनें भी होंगी।

2

मरनाथ ने बिना किसी आपत्ति के वह साड़ी देवीजी को दे दी और बोले- बहुत अच्छा, मैं कल आ जाऊँगा। मगर क्या आपको मुझ पर विश्वास नहीं है जो साड़ी की जमानत जरूरी है?

देवीजी ने मुस्कराकर कहा-सच्ची बात तो यही है कि मुझे आप पर विश्वास नहीं।

अमरनाथ ने स्वाभिमानपूर्वक कहा- अच्छी बात है, आप इसे ले जाएं।

देवी ने क्षण-भर बाद कहा-शायद आपको बुरा लग रहा हो कि कहीं साड़ी गुम न हो जाए। इसे आप लेते जाइए, मगर कल आइए जरूर।

अमरनाथ स्वाभिमान के मारे बगैर कुछ कहे घर की तरफ चल दिये, देवीजी 'लेते जाइए लेते जाइए' करती रह गयीं।

अमरनाथ घर न जाकर एक खद्वर की दुकान पर गये और दो सूटों का खद्वर खरीदा। फिर अपने दर्जी के पास ले जाकर बोले-खलीफा, इसे रातों-रात तैयार कर दो, मुहंमागी सिलाई दूंगा।

दर्जी ने कहा-बाबू साहब, आजकल तो होली की भीड़ है। होली से पहले तैयार न हो सकेंगे।

अमरनाथ ने आग्रह करते हुए कहा-मैं मुहंमागी सिलाई दूंगा, मगर कल दोपहर तक मिल जाए। मुझे कल एक जगह जाना है। अगर दोपहर तक न मिले तो फिर मेरे किस काम के न होंगे।

दर्जी ने आधी सिलाई पेशगी ले ली और कल तैयार कर देने का वादा किया।

अमरनाथ यहां से आश्वस्त होकर मालती की तरफ चले। क़दम आगे बढ़ते थे लेकिन दिल पीछे रहा जाता था। काश, वह उनकी इतनी विनती स्वीकार कर ले कि कल दो घण्टे के लिए उनके वीरान घर को रोशन करे! लेकिन यकीनन वह उन्हें खाली हाथ देखकर मुहं फेर लेगी, सीधे मुहं बात नहीं करेगी, आने का जिक्र ही क्या। एक ही बेमुरौवत है। तो कल आकर देवीजी से अपनी सारी शर्मनाक कहानी बयान कर दूँ? उस भोले चेहरे की निस्स्वार्थ उमंग उनके दिल में एक हलचल पैदा कर रही थी। उन आंखों में कितनी गंभीरता थी, कितनी सच्ची सहानुभूति, कितनी पवित्रता! उसके सीधे-सादे शब्दों में कर्म की ऐसी प्रेरणा थी, कि अमरनाथ का अपने इन्द्रिय-परायण जीवन पर शर्म आ रही थी। अब तक कांच के टुकड़े को हीरा समझकर सीने से लगाये हुए थे। आज उन्हें मालूम हुआ हीरा किसे कहते हैं। उसके सामने वह टुकड़ा तुच्छ मालूम हो रहा था। मालती की वह जादू-भरी चित्तवन, उसकी वह मीठी अदाएं, उसकी शोखियां और नखरे सब जैसे मुलम्मा उड़ जाने के बाद अपनी असली सूरत में नजर आ रहे थे और अमरनाथ के दिल

में नफरत पैदा कर रहे थे। वह मालती की तरफ जा रहे थे, उसके दर्शन के लिए नहीं, बल्कि उसके हाथों से अपना दिल छीन लेने के लिए। प्रेम का भिखारी आज अपने भीतर एक विचित्र अनिच्छा का अनुभव कर रहा था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि अब तक वह क्यों इतना बेखबर था। वह तिलिस्म जो मालती ने वर्षों के नाज-नखरे, हाव-भाव से बांधा था, आज किसी छू-मन्तर से तार-तार हो गया था।

मालती ने उन्हें खाली हाथ देखकर तयोरियां चढ़ाते हुए कहा-साड़ी लाये या नहीं?

अमरनाथ ने उदासीनता के ढंग से जवाब दिया-नहीं।

मालती ने आश्चर्य से उनकी तरफ देखा-नहीं! वह उनके मुंह से यह शब्द सुनने की आदी न थी। यहां उसने सम्पूर्ण समर्पण पाया था। उसका इशारा अमरनाथ के लिए भाग्य-लिपि के समान था। बोली-क्यों?

अमरनाथ-क्यों नहीं, नहीं लाये।

मालती-बाजार में मिली न होगी। तुम्हें क्यों मिलने लगी, और मेरे लिए।

अमरनाथ-नहीं साहब, मिली मगर लाया नहीं।

मालती-आखिर कोई वजह? रुपये मुझसे ले जाते।

अमरनाथ-तुम खामखाह जलाती हो। तुम्हारे लिए जान देने को मैं हाज़िर रहा।

मालती-तो शायद तुम्हें रुपये जान से भी ज्यादा प्यारे हों?

अमरनाथ-तुम मुझे बैठने दोगी या नहीं? अमर मेरी सूरत से नफरत हो तो चला जाऊँ!

मालती-तुम्हें आज हो क्या गया है, तुम तो इतने तेज मिजाज के न थे?

अमरनाथ-तुम बातें ही ऐसी कर रही हो।

मालती-तो आखिर मेरी चीज़ क्यों नहीं लाये?

अमरनाथ ने उसकी तरफ़ बड़े वीर-भाव के साथ देखकर कहा-
दुकान पर गया, जिल्लत उठायी और साड़ी लेकर चला तो एक औरत ने छीन
ली। मैंने कहा, मेरी बीवी की फ़रमाइश है तो बोली-मैं उन्हीं को दूंगी, कल
तुम्हारे घर आऊँगी।

मालती ने शरारत-भरी नज़रों से देखते हुए कहा-तो यह कहिए आप
दिल हथेली पर लिये फिर रहे थे। एक औरत को देखा और उसके कदमों पर
चढ़ा दिया!

अमरनाथ-वह उन औरतों में नहीं, जो दिलों की घात में रहती हैं।

मालती-तो कोई देवी होगी?

अमरनाथ-मैं उसे देवी ही समझता हूँ।

मालती-तो आप उस देवी की पूजा कीजिएगा?

अमरनाथ-मुझ जैसे आवारा नौजवान के लिए उस मन्दिर के दरवाजे
बन्द हैं।

मालती-बहुत सुन्दर होगी?

अमरनाथ-न सुन्दर है, न रूपवाली, न ऐसी अदाएं कुछ, न मधुर
भाषिणी, न तन्वंगी। बिलकुल एक मामूली मासूम लड़की है। लेकिन जब मेरे
हाथ से उसने साड़ी छीन ली तो मैं क्या कर सकता हूँ। मेरी गैरत ने तो गवारा
न किया कि उसके हाथ से साड़ी छीन लूँ। तुम्हीं इन्साफ़ करो, वह दिल में
क्या कहती?

मालती-तो तुम्हें इसकी ज्यादा परवाह है कि वह अपने दिल में क्या
कहेगी। मैं क्या कहूँगी, इसकी जरा भी परवाह न थी! मेरे हाथ से कोई मर्द
मेरी कोई चीज़ छीन ले तो देखूँ, चाहे वह दूसरा कामदेव ही क्यों न हो।

अमरनाथ-अब इसे चाहे मेरी कायरता समझो, चाहे हिम्मत की कमी,
चाहे शराफ़त, मैं उसके हाथ से न छीन सका।

मालती-तो कल वह साड़ी लेकर आयेगी, क्यों?

अमरनाथ-जरूर आयेगी।

मालती-तो जाकर मुंह धो आओ। तुम इतने नादान हो, यह मुझे मालूम न था। साड़ी देकर चले आये, अब कल वह आपको देने आयेगी! कुछ भंग तो नहीं खा गये!

अमरनाथ-खैर, इसका इम्तहान कल ही हो जाएगा, अभी से क्यों बदगुमानी करती हो। तुम शाम को ज़रा देर के लिए मेरे घर तक चली चलना।

मालती-जिससे आप कहें कि यह मेरी बीवी है!

अमरनाथ-मुझे क्या खबर थी कि वह मेरे घर आने के लिए तैयार हो जाएगी, नहीं तो और कोई बहाना कर देता।

मालती-तो आपकी साड़ी आपको मुबारक हो, मैं नहीं जाती।

अमरनाथ-मैं तो रोज तुम्हारे घर आता हूँ, तुम एक दिन के लिए भी नहीं चल सकतीं?

मालती ने निष्ठुरता से कहा-अगर मौक़ा आ जाए तो तुम अपने को मेरा शौहर कहलाना पसन्द करोगे? दिल पर हाथ रखकर कहना।

अमरनाथ दिल में कट गये, बात बनाते हुए बोले-मालती, तुम मेरे साथ अन्याय कर रही हो। बुरा न मानना, मेरे व तुम्हारे बीच प्यार और मुहब्बत दिखलाने के बावजूद एक दूरी का पर्दा पड़ा था। हम दोनों एकदूसरे की हालत को समझते थे और इस पर्दे का हटाने की कोशिश न करते थे। यह पर्दा हमारे सम्बन्धों की अनिवार्य शर्त था। हमारे बीच एक व्यापारिक समझौता-सा हो गया। हम दोनों उसकी गहराई में जाते हुए डरते थे। नहीं, बल्कि मैं डरता था और तुम जान-बूझकर न जाना चाहती थी। अगर मुझे विश्वास हो जाता कि तुम्हें जीवन-सहचरी बनाकर मैं वह सब कुछ पा जाऊँगा जिसका मैं अपने को अधिकारी समझता हूँ तो मैं अब तक कभी का तुमसे इसकी याचना कर चुका होता! लेकिन तुमने कभी मेरे दिल में यह विश्वास पैदा करने की परवाह न की। मेरे बारे में तुम्हें यह शक है, मैं नहीं कह सकता, तुम्हें यह शक करने का मैं ने कोई मौक़ा नहीं दिया और मैं कह

सकता हूँ कि मैं उससे कहीं बेहतर शौहर बन सकता हूँ जितनी तुम बीवी बन सकती हो। मेरे लिए सिर्फ़ एतवार की जरूरत है और तुम्हारे लिए ज्यादा वज़नी और ज्यादा भौतिक चीज़ों की। मेरी स्थायी आमदनी पाँच सौ से ज्यादा नहीं, तुमको इतने में सन्तोष न होगा। मेरे लिए सिर्फ़ इस इत्मीनान की जरूरत है कि तुम मेरी और सिर्फ़ मेरी हो। बोलो मंजूर है।

मालती को अमरनाथ पर रहम आ गया। उसकी बातों में जो सच्चाई भरी हुई थी, उससे वह इनकार न कर सकी। उसे यह भी यकीन हो गया कि अमरनाथ की वफ़ा के पैर डगमगायेंगे नहीं। उसे अपने ऊपर इतना भरोसा था कि वह उसे रस्सी से मजबूत जकड़ सकती है, लेकिन खुद जकड़े जाने पर वह अपने को तैयार न कर सकी। उसकी जिन्दगी मुहब्बत की बाजीगरी में, प्रेम के प्रदर्शन में गुजरी थी। वह कभी इस, कभी उस शाख में चहकती फिरती थी, बैकेद, आजाद, बेबन्द। क्या वह चिड़िया पिंजरे में बन्द रह सकती है जिसकी जबान तरह-तरह के मजों की आदी हो गयी हो? क्या वह सूखी रोटी से तृप्त हो सकती है? इस अनुभूति ने उसे पिघला दिया। बोली-आज तुम बड़ा ज्ञान बघार रहे हो?

अमरनाथ-मैंने तो केवल यथार्थ कहा है।

मालती-अच्छा मैं कल चलूँगी, मगर एक घण्टे से ज्यादा वहां न रहूँगी।

अमरनाथ का दिल शुक्रिये से भर उठा। बोला-मैं तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ मालती। अब मेरी आबरू बच जायेगी। नहीं तो मेरे लिए घर से निकलना मुश्किल हो जाता है। अब देखना यह है कि तुम अपना पार्ट कितनी खूबसूरती से अदा करती हो।

मालती-उसकी तरफ़ से तुम इत्मीनान रखो। ब्याह नहीं किया मगर बरातें देखी हैं। मगर मैं डरती हूँ कहीं तुम मुझसे दगा न कर रहे हो। मर्दों का क्या एतबार।

अमरनाथ ने निश्चल भाव से कहा-नहीं मालती, तुम्हारा सन्देह निराधार है। अगर यह जंजीर पैरों में डालने की इच्छा होती तो कभी का डाल चुका होता। फिर मुझ-से वासना के बन्दों का वहां गुज़र ही कहां।

3

सरे दिन अमरनाथ दस बजे ही दर्जी की दुकान पर जा पहुँचे और सिर पर दूसवार होकर कपड़े तैयार कराये। फिर घर आकर नये कपड़े पहने और मालती को बुलाने चले। वहां देर हो गयी। उसने ऐसा तनाव-सिंगार किया कि जैसे आज बहुत बड़ा मोर्चा जितना है।

अमरनाथ ने कहा-वह ऐसी सुन्दरी नहीं है जो तुम इतनी तैयारियाँ कर रही हो।

मालती ने बालों में कंधी करते हुए कहा-तुम इन बातों को नहीं समझ सकते, चुपचाप बैठे रहो।

अमरनाथ-लेकिन देर जो हो रही है।

मालती-कोई बात नहीं।

भय की उस सहज आशंका ने, जो स्त्रियों की विशेषता है, मालती को और भी अधिक सर्तक कर दिया था। अब तक उसने कभी अमरनाथ की ओर विशेष रूप से कोई कृपा न की थी। वह उससे काफी उदासीनता का बर्ताव करती थी। लेकिन कल अमरनाथ की भंगिमा से उसे एक संकट की सूचना मिल चुकी थी और वह उस संकट का अपनी पूरी शक्तिसे मुकाबला करना चाहती थी। शत्रु को तुच्छ और अपदार्थ समझना स्त्रियों के लिए कठिन है। आज अमरनाथ को अपने हाथ से निकलते वह अपनी पकड़ को मजबूत कर रही थी। अगर इस तरह की उसकी चीजें एक-एक करके निकल गयीं तो फिर वह अपनी प्रतिष्ठा कब तक बनाये रख सकेगी? जिस चीज पर उसका क़ब्जा है उसकी तरफ़ कोई आंख ही क्यों उठाये। राजा भी तो एक-एक अंगुल जमीन के पीछे जान देता है। वह इस नये शिकारी को हमेशा के लिए अपने रास्ते से हटा देना चाहती थी। उसके जादू को तोड़ देना चाहती थी।

शाम को वह परी जैसी, अपनी नौकरानी और नौकर को साथ लेकर अमरनाथ के घर चली। अमरनाथ ने सुबह दस बजे तक मर्दाने घर को जनानेपन का रंग देने में खर्चा किया था। ऐसी तैयारियां कर रखी थीं जैसे कोई अफ़सर मुआइना करने वाला हो। मालती ने घर में पैर रखा तो उसकी सफ़ाई और सजावट देखकर बहुत खुश हुई। जनाने हिस्से में कई कुर्सियां रखी थीं। बोली-अब लाओ अपनी देवीजी को मगर जल्द आना। वर्ना मैं चली जाऊँगी।

अमरनाथ लपके हुए विलायती दुकान पर गये। आज भी धरना था। तमाशाइयों की वहीं भीड़। वहां देवी जी नहीं। पीछे की तरफ़ गये तो देवी जी एक लड़की के साथ उसी भेस में खड़ी थीं।

अमरनाथ ने कहा-माफ़ कीजिएगा, मुझे देर हो गयी। मैं आपके वादे की याद दिलाने आया हूँ।

देवीजी ने कहा-मैं तो आपका इन्तजार कर रही थी। चलो सुमित्रा, जरा आपके घर हो आर्यें। कितनी देर है?

अमरनाथ-बहुत पास है। एक तांगा कर लूंगा।

पन्द्रह मिनट में अमरनाथ दोनों को लिये घर पहुँचे। मालती ने देवीजी को देखा और देवीजी ने मालती को। एक किसी रईस का महल था, आलीशान; दूसरी किसी फ़कीर की कुटिया थी, छोटी-सी तुच्छ। रईस के महल में आडम्बर और प्रदर्शन था, फ़कीर की कुटिया में सादगी और सफ़ाई। मालती ने देखा, भोली लड़की है जिसे किसी तरह सुन्दर नहीं कह सकते। पर उसके भोलेपन और सादगी में जो आकर्षण था, उससे वह प्रभावित हुए बिना न रह सकी। देवीजी ने भी देखा, एक बनी-संवरी बेधड़क और घमण्डी औरत है जो किसी न किसी वजह से उस घर में अजनबी-सी मालूम हो रही है जैसे कोई जंगली जानवर पिंजरे में आ गया हो।

अमरनाथ सिर झुकाये मुजरिमों की तरह खड़े थे और ईश्वर से प्रार्थना कर रहे थे कि किसी तरह आज पर्दा रह जाये।

देवी ने आते ही कहा-बहन, आप भी सिर से पांव तक विदेशी कपड़े पहने हुई हैं?

मालती ने अमरनाथ की तरफ़ देखकर कहा-मैं विदेशी और देशी के फेर में नहीं पड़ती। जो यह लाकर देते हैं वह पहनती हूँ। लाने वाले है ये, मैं थोड़े ही बाजार जाती हूँ।

देवी ने शिकायत-भरी आंखों से अमरनाथ की तरफ़ देखकर कहा-आप तो कहते थे यह इनकी फरमाइश है, मगर आप ही का क्रसूर निकल आया।

मालती-मेरे सामने इनसे कुछ मत कहो। तुम बाजार में भी दूसरे मर्दों से बातें कर सकती हो, जब वह बाहर चले जायें तो जितना चाहे कह-सुन लेना। मैं अपने कानों से नहीं सुनना चाहती।

देवीजी-मैं कुछ कहती नहीं और बहनजी, मैं कह ही क्या कर सकती हूँ, कोई जबर्दस्ती तो है नहीं, बस विनती कर सकता हूँ।

मालती-इसका मतलब यह है कि इन्हें अपने देश की भलाई का जरा भी ख्याल नहीं, उसका ठेका तुम्हीं ने ले लिया है। पढ़े-लिखे आदमी हैं, दस आदमी इज्जत करते हैं, अपना नफा-नुकसान समझ सकते हैं। तुम्हारी क्या हिम्मत कि उन्हें उपदेश देने बैठो, या सबसे ज्यादा अक्लमन्द तुम्हीं हो?

देवीजी-आप मेरा मतलब गलत समझ रही हैं बहन।

मालती-हाँ, गलत तो समझूँगी ही, इतनी अक्ल कहां से लाऊँ कि आपकी बातों का मतलब समझूँ! खदर की साड़ी पहल ली, झोली लटका ली, एक बिल्ला लगा लिया, बस अब अख्तियार है जहां चाहें आयें-जायें, जिससे चाहें हसैं-बोलें, घर में कोई पूछता नहीं तो जेलखाने का भी क्या डर! मैं इसे हुड़दंगापन समझती हूँ, जो शरीफों की बहू-बेटियों को शोभा नहीं देता।

अमरनाथ दिल में कटे जा रहे थे। छिपने के लिए बिल ढूंढ रहे थे। देवी की पेशानी पर जरा बल न था लेकिन आंखें डबडबा रही थीं।

अमरनाथ ने मालती से जरा तेज स्वर में कहा-क्यों खामखाह किसी का दिल दुखाती हो? यह देवियां अपना ऐश-आराम छोड़कर यह काम कर रही हैं, क्या तुम्हें इसकी बिलकुल खबर नहीं?

मालती-रहने दो, बहुत तारीफ़ न करो। जमाने का रंग ही बदला जा रहा है, मैं क्या करूंगी और तुम क्या करोगे। तुम मर्दों ने औरतों को घर में इतनी बुरी तरह कैद किया कि आज वे रस्म-रिवाज, शर्म-हया को छोड़कर निकल आयी हैं और कुछ दिनों में तुम लोगों की हुकूमत का खातमा हुआ जाता है। विलायती और विदेशी तो दिखलाने के लिए हैं, असल में यह आजादी की ख्वाहिश है जो तुम्हें हासिल है। तुम अगर दो-चार शादियाँ कर सकते हो तो औरत क्यों न करें! सच्ची बात यह है, अगर आंखें हैं तो अब खोलकर देखो। मुझे वह आजादी न चाहिए। यहां तो लाज ढोते हैं और मैं शर्म-हया को अपना सिंगार समझती हूँ।

देवीजी ने अमरनाथ की तरफ़ फ़रियाद की आंखों से देखकर कहा-बहन ने औरतों को जलील करने की क़सम खा ली है। मैं बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर आयी थी, मगर शायद यहां से नाकाम जाना पड़ेगा।

अमरनाथ ने वह साड़ी उसको देते हुए कहा-नहीं, बिलकुल नाकाम तो आप नहीं जायेंगी, हां, जैसी कामयाबी की आपको उम्मीद थी वह न होगी।

मालती ने डपटते हुए कहा-वह मेरी साड़ी है, तुम उसे नहीं दे सकते।

अमरनाथ ने शर्मिन्दा होते हुए कहा-अच्छी बात है, न दूंगा। देवीजी, ऐसी हालत में तो शायद आप मुझे माफ़ करेंगी।

देवीजी चली गयी तो अमरनाथ ने त्योरियाँ बदलकर कहा-यह तुमने आज मेरे मुंह में कालिख लगा दी। तुम इतनी बदतमीज और बदज़बान हो, मुझे मालूम न था।

मालती ने रोषपूर्ण स्वर में कहा-तो अपनी साड़ी उसे दे देती? मैंने ऐसी कच्ची गोलियां नहीं खेली। अब तो बदतमीज भी हूँ, बदज़बान भी, उस

दिन इन बुराइयों में से एक भी न थी जब मेरी जूतियां सीधी करते थे इस छोकरी ने मोहिनी डाल दी। जैसी रूह वैसे फरिश्ते। मुबारक हो।

यह कहती हुई मालती बाहर निकली। उसने समझा था जबान चलाकर और ताकत से वह उस लड़की को उखाड़ फेंकेगी लेकिन जब मालूम हुआ कि अमरनाथ आसानी से क़ाबू में आने वाला नहीं तो उसने फटकार बताई। इन दामों अगर अमरनाथ मिल सकता था तो बुरा न था। उससे ज्यादा कीमत वह उसके लिए दे न सकती थी।

अमरनाथ उसके साथ दरवाजे तक आये जब वह तांगे पर बैठी तो बिनती करते हुए बोले-यह साड़ी दे दो न मालती, मैं तुम्हें कल इससे अच्छी साड़ी ला दूँगा।

मगर मालती ने रूखेपन से कहा-यह साड़ी तो अब लाख रुपये पर भी नहीं दे सकती।

अमरनाथ ने तय़ौरियां बदलकर जवाब दिया-अच्छी बात है, ले जाओ मगर समझ लो यह मेरा आखिरी तोहफ़ा है।

मालती ने होंठ चढ़ाकर कहा-इसकी परवाह नहीं। तुम्हारे बग़ैर मैं मर नहीं जाऊँगी, इसका तुम्हें यकीन दिलाती हूँ!

-‘आखिरी तोहफ़ा’ से

क्रांतिल

जाड़ों की रात थी। दस बजे ही सड़कें बन्द हो गयी थीं और गालियों में सन्नाटा था। बूढ़ी बेवा मां ने अपने नौजवान बेटे धर्मवीर के सामने थाली परोसते हुए कहा-तुम इतनी रात तक कहां रहते हो बेटा? रखे-रखे खाना ठंडा हो जाता है। चारों तरफ सोता पड़ गया। आग भी तो इतनी नहीं रहती कि इतनी रात तक बैठी तापती रहूँ।

धर्मवीर हष्ट-पुष्ट, सुन्दर नवयुवक था। थाली खींचता हुआ बोला- अभी तो दस भी नहीं बजे अम्माँ। यहां के मुर्दादिल आदमी सरे-शाम ही सो जाएं तो कोई क्या करे। योरोप में लोग बारह-एक बजे तक सैर-सपाटे करते रहते हैं। जिन्दगी के मज़े उठाना कोई उनसे सीख ले। एक बजे से पहले तो कोई सोता ही नहीं।

मां ने पूछा-तो आठ-दस बजे सोकर उठते भी होंगे।

धर्मवीर ने पहलू बचाकर कहा-नहीं, वह छः बजे ही उठ बैठते हैं। हम लोग बहुत सोने के आदी हैं। दस से छः बजे तक, आठ घण्टे होते हैं। चौबीस में आठ घण्टे आदमी सोये तो काम क्या करेगा? यह बिलकुल गलत है कि आदमी को आठ घण्टे सोना चाहिए। इन्सान जितना कम सोये, उतना ही अच्छा। हमारी सभा ने अपने नियमों में दाखिल कर लिया है कि मेम्बरों को तीन घण्टे से ज्यादा न सोना चाहिए।

मां इस सभा का जिक्र सुनते-सुनते तंग आ गयी थी। यह न खाओ, वह न खाओ, यह न पहनो, वह न पहनो, न ब्याह करो, न शादी करो, न नौकरी करो, न चाकरी करो, यह सभा क्या लोगों को संन्यासी बनाकर छोड़ेगी? इतना त्याग तो संन्यासी ही कर सकता है। त्यागी संन्यासी भी तो नहीं मिलते। उनमें भी ज्यादातर इन्द्रियों के गुलाम, नाम के त्यागी हैं। आज सोने की भी क़ैद लगादी। अभी तीन महीने का घूमना खत्म हुआ। जाने कहां-कहां मारे फिरते हैं। अब बारह बजे खाइए। या कौन जाने रात को खाना ही

उड़ा दें। आपत्ति के स्वर में बोली-तभी तो यह सूरत निकल आयी है कि चाहो तो एक-एक हड्डी गिन लो। आखिरसभावाले कोई काम भी करते हैं या सिर्फ़ आदमियों पर कैदें ही लगाया करते हैं?

धर्मवीर बोला-जो काम तुम करती हो वहीं हम करते हैं। तुम्हारा उद्देश्य राष्ट्र की सेवा करना है, हमारा उद्देश्य भी राष्ट्र की सेवा करना है।

बूढ़ी विधवा आजादी की लड़ाई में दिलो-जान से शरीक थी। दस साल पहले उसके पति ने एक राजद्रोहात्मक भाषण देने के अपराध में सजा पाई थी। जेल में उसका स्वास्थ्य बिगड़ गया और जेल ही में उसका स्वर्गवास हो गया। तब से यह विधवा बड़ी सच्चाई और लगन से राष्ट्र की सेवा सेवा में लगी हुई थी। शुरू में उसका नौजवान बेटा भी स्वयं सेवकों में शामिल हो गया था। मगर इधर पांच महीनों से वह इस नयी सभा में शरीक हो गया और उसको जोशीले कार्यकर्ताओं में समझा जाता था।

मां ने संदेह के स्वर में पूछा-तो तुम्हारी सभा का कोई दफ्तर है?

‘हां है।’

‘उसमें कितने मेम्बर हैं?’

‘अभी तो सिर्फ़ पचास मेम्बर हैं? वह पचीस आदमी जो कुछ कर सकते हैं, वह तुम्हारे पचीस हजार भी नहीं कर सकते। देखो अम्मां, किसी से कहना मतवर्ना सबसे पहले मेरी जान पर आफ़त आयेगी। मुझे उम्मीद नहीं कि पिकेटिंग और जुलूसों से हमें आजादी हासिल हो सके। यह तो अपनी कमज़ोरी और बेबसी का साफ़ एलान हैं। झंडियां निकालकर और गीत गाकर कौमें नहीं आज़ाद हुआ करतीं। यहां के लोग अपनी अकल से काम नहीं लेते। एक आदमी ने कहा-यों स्वराज्य मिल जाएगा। बस, आंखें बन्द करके उसके पीछे हो लिए। वह आदमी गुमराह है और दूसरों को भी गुमराह कर रहा है। यह लोग दिल में इस ख्याल से खुश हो लें कि हम आज़ादी के करीब आते जाते हैं। मगर मुझे तो काम करने का यह ढंग बिल्कुल खेल-सा मालूम होता है। लड़कों के रोने-धोने और मचलने पर खिलौने और मिठाइयां

मिला करती है-वही इन लोगों को मिल जाएगा। असली चीज तो तभी मिलेगी, जब हम उसकी कीमत देने को तैयार होंगे।

मां ने कहा-उसकी कीमत क्या हम नहीं दे रहे हैं? हमारे लाखों आदमी

जेल नहीं गये? हमने डंडे नहीं खाये? हमने अपनी जायदादें नहीं जब्त करायीं?

धर्मवीर-इससे अंग्रेजों को क्या-क्या नुकसान हुआ? वे हिन्दुस्तान उसी वक्त छोड़ेंगे, जब उन्हें यकीन हो जाएगा कि अब वे एक पल-भर भी नहीं रह सकते। अगर आज हिन्दोस्तान के एक हजार अंग्रेज कत्ल कर दिए जाएं तो आज ही स्वराज्य मिल जाए। रूस इसी तरह आज़ाद हुआ, आयरलैण्ड भी इसी तरह आज़ाद हुआ, हिन्दोस्तान भी इसी तरह आज़ाद होगा और कोई तरीका नहीं। हमें उनका खात्मा कर देना है। एक गोरे अफसर के कत्ल कर देने से हुकूमत पर जितना डर छा जाता है, उतना एक हजार जुलूसों से मुमकिन नहीं।

मां सर से पांच तक कांप उठी। उसे विधवा हुए दस साल हो गए थे। यही लड़का उसकी जिंदगी का सहारा है। इसी को सीने से लगाए मेहनत-मजदूरी करके अपने मुसीबत के दिन काट रही है। वह इस खयाल से खुश थी कि यह चार पैसे कमायेगा, घर में बहू आएगी, एक टुकड़ा खाऊँगी, और पड़ी रहूँगी। आरजुओं के पतले-पतले तिनकों से उसने ऐ किशती बनाई थी। उसी पर बैठकर जिन्दगी के दरिया को पार कर रही थी। वह किशती अब उसे लहरों में झकोले खाती हुई मालूम हुई। उसे ऐसा महसूस हुआ कि वह किशती दरिया में डूबी जा रही है। उसने अपने सीने पर हाथ रखकर कहा-बेटा, तुम कैसी बातें कर रहे हो। क्या तुम समझते हो, अंग्रेजों को कत्ल कर देने से हम आज़ाद हो जायेंगे? हम अंग्रेजों के दुश्मन नहीं। हम इस राज्य प्रणाली के दुश्मन हैं। अगर यह राज्य-प्रणाली हमारे भाई-बन्दों के ही हाथों में हो-और उसका बहुत बड़ा हिस्सा है भी-तो हम उसका भी इसी तरह विरोध करेंगे। विदेश में तो कोई दूसरी क्रौम राज न करती थी, फिर भी रूस वालों ने उस

हुकूमत का उखाड़ फेंका तो उसका कारण यही था कि जार प्रजा की परवाह न करता था। अमीर लोग मज़े उड़ाते थे, गरीबों को पीसा जाता था। यह बातें तुम मुझसे ज्यादा जानते हो। वही हाल हमारा है। देश की सम्पत्ति किसी न किसी बहाने निकलती चली जाती है और हम गरीब होते जाते हैं। हम इस अवैधानिक शासन को बदलना चाहते हैं। मैं तुम्हारे पैरों में पड़ती हूँ, इस सभा से अपना नाम कटवा लो। खामखाह आग में न कूदो। मैं अपनी आंखों से यह दृश्य नहीं देखना चाहती कि तुम अदालत में खून के जुर्म में लाए जाओ।

धर्मवीर पर इस विनती का कोई असर नहीं हुआ। बोला-इसका कोई डर नहीं। हमने इसके बारे में काफ़ी एहतियात कर ली है। गिरफ्तार होना तो बेवकूफी है। हम लोग ऐसी हिकमत से काम करना चाहते हैं कि कोई गिरफ्तार न हो।

मां के चेहरे पर अब डर की जगह शर्मिन्दगी की झलक नज़र आयी। बोली-यह तो उससे भी बुरा है। बेगुनाह सज़ा पायें और क्रातिल चैन से बैठे रहें! यह शर्मनाक हरकत है। मैं इसे कमीनापन समझती हूँ। किसी को छिपकर क़त्ल करना दगाबाजी है, मगर अपने बदले बेगुनाह भाइयों को फंसा देना देशद्रोह है। इन बेगुनाहों का खून भी क्रातिल की गर्दन पर होगा।

धर्मवीर ने अपनी मां की परेशानी का मजा लेते हुए कहा-अम्मां, तुम इन बातों को नहीं समझती। तुम अपने धरने दिए जाओ, जुलूस निकाले जाओ। हम जो कुछ करते हैं, हमें करने दो। गुनाह और सवाब, पाप और पुण्य, धर्म और अर्धम, यह निरर्थक शब्द है। जिस काम का तुम सापेक्ष समझती हो, उसे मैं पुण्य समझता हूँ। तुम्हें कैसे समझाऊँ कि यह सापेक्ष शब्द हैं। तुमने भगवद्गीता तो पढ़ी है। कृष्ण भगवान ने साफ़ कहा है-मारने वाला मैं हूँ, जिलाने वाला मैं हूँ, आदमी न किसी को मार सकता है, न जिला सकता है। फिर कहाँ रहा तुम्हारा पाप? मुझे इस बात की क्यों शर्म हो कि मेरे बदले कोई दूसरा मुजरिम करार दिया गया। यह व्यक्तिगत लड़ाई नहीं, इंग्लैण्ड की सामूहिक शक्ति से युद्ध है। मैं मरूँ या मेरे बदले कोई दूसरा मरे,

इसमें कोई अन्तर नहीं। जो आदमी राष्ट्र की ज्यादा सेवा कर सकता है, उसे जीवित रहने का ज्यादा अधिकार है।

मां आश्चर्य से लड़के का मुंह देखने लगी। उससे बहस करना बेकार था। अपनी दलीलों से वह उसे कायल न कर सकती थी। धर्मवीर खाना खाकर उठ गया। मगर वह ऐसी बैठी रही कि जैसे लकड़ा मार गया हो। उसने सोचा-कहीं ऐसा तो नहीं कि वह किसी का क़त्ल कर आया हो। या क़त्ल करने जा रहा हो। इस विचार से उसके शरीर के कंपकंपी आ गयी। आम लोगों की तरह हत्या और खून के प्रति घृणा उसके शरीर के कणकण में भरी हुई थी। उसका अपना बेटा खून करे, इससे ज्यादा लज्जा, अपमान, घृणा की बात उसके लिए और क्या हो सकती थी। वह राष्ट्र सेवा की उस कसौटी पर जान देती थी जो त्याग, सदाचार, सच्चाई और साफ़दिली का वरदान है। उसकी आंखों में राष्ट्र का सेवक वह था जो नीच से नीच प्राणी का दिल भी न दुखाये, बल्कि जरूरत पड़ने पर खुशी से अपने को बलिदान कर दे। अहिंसा उसकी नैतिक भावनाओं का सबसे प्रधान अंग थी। अगर धर्मवीर किसी गरीब की हिमायत में गोली का निशाना बन जाता तो वह रोती जरूर मगर गर्दन उठाकर। उसे गहरा शोक होता, शायद इस शोक में उसकी जान भी चली जाती। मगर इस शोक में गर्व मिला हुआ होता। लेकिन वह किसी का खून कर आये यह एक भयानक पाप था, कलंक था। लड़के को रोके कैसे, यही सवाल उसके सामने था। वह यह नौबत हरगिज न आने देगी कि उसका बेटा खून के जुर्म में पकड़ा न जाये। उसे यह बरदाश्त था कि उसके जुर्म की सजा बेगुनाहों को मिले। उसे ताज्जुब हो रहा था, लड़के में यह पागलपन आया क्योंकि? वह खाना खाने बैठी मगर कौर गले से नीचे न जा सका। कोई जालिम हाथ धर्मवीर को उनकी गोद से छीन लेता है। वह उस हाथ को हटा देना चाहती थी। अपने जिगर के टुकड़े को वह एक क्षण के लिए भी अलग न करेगी। छाया की तरह उसके पीछे-पीछे रहेगी। किसकी मजाल है जो उस लड़के को उसकी गोद से छीने!

धर्मवीर बाहर के कमरे में सोया करता था। उसे ऐसा लगा कि कहीं वह न चला गया हो। फौरन उसके कमरे में आयी। धर्मवीर के सामने दीवट पर दिया जल रहा था। वह एक किताब खोले पढ़ता-पढ़ता सो गया था। किताब उसके सीने पर पड़ी थी। मां ने वहीं बैठकर अनाथ की तरह बड़ी सच्चाई और विनय के साथ परमात्मा से प्रार्थना की कि लड़के का हृदय-परिवर्तन कर दे। उसके चेहरे पर अब भी वहीं भोलापन, वही मासूमियत थी जो पन्द्रह-बीस साल पहले नज़र आती थी। कर्कशता या कठोरता का कोई चिह्न न था। मां की सिद्धांतपरता एक क्षण के लिए ममता के आंचल में छिप गई। मां ने हृदय से बेटे की हार्दिक भावनाओं को देखा। इस नौजवान के दिल में सेवा की कितनी उमंग है, कोम का कितना दर्द है, पीड़ितों से कितनी सहानुभूति है अगर इसमें बूढ़ों की-सी सूझ-बूझ, धीमी चाल और धैर्य है तो इसका क्या कारण है। जो व्यक्ति प्राण जैसी प्रिय वस्तु को बलिदान करने के लिए तत्पर हो, उसकी तड़प और जलन का कौन अन्दाजा कर सकता है। काश यह जोश, यह दर्द हिंसा के पंजे से निकल सकता तो जागरण की प्रगति कितनी तेज हो जाती!

मां की आहट पाकर धर्मवीर चौंक पड़ा और किताब संभालता हुआ बोला-तुम कब आ गयीं अम्मां? मुझे तो जाने कब नींद आ गयी। माँ ने दीवट को दूर हटाकर कहा-चारपाई के पास दिया रखकर न सोया करो। इससे कभी-कभी दुर्घटनाएं हो जाया करती हैं। और क्या सारी रात पढ़ते ही रहोगे? आधी रात तो हुई, आराम से सो जाओ। मैं भी यहीं लेटी जाती हूँ। मुझे अन्दर न जाने क्यों डर लगता है।

धर्मवीर-तो मैं एक चारपाई लाकर डाले देता हूँ।

‘नहीं, मैं यहीं जमीन पर लेट जाती हूँ।’

‘वाह, मैं चारपाई पर लेटूँ और तू जमीन पर पड़ी रहो। तुम चारपाई पर आ जाओ।’

‘चल, मैं चारपाई पर लेटूँ और तू जमीन पर पड़ा रहे यह तो नहीं हो सकता।’

‘मैं चारपाई लिये आता हूँ। नहीं तो मैं भी अन्दर ही लेटता हूँ। आज आप डरीं क्यों?’

‘तुम्हारी बातों ने डरा दिया। तू मुझे भी क्यों अपनी सभा में नहीं सरीक कर लेता?’

धर्मवीर ने कोई जवाब नहीं दिया। बिस्तर और चारपाई उठाकर अन्दर वाले कमरे में चला। माँ आगे-आगे चिराग दिखाती हुई चली। कमरे में चारपाई डालकर उस पर लेटता हुआ बोला-अगर मेरी सभा में शरीक हो जाओ तो क्या पूछना। बेचारे कच्ची-कच्ची रोटियां खाकर बीमार हो रहे हैं। उन्हें अच्छा खाना मिलने लगेगा। फिर ऐसी कितनी ही बातें हैं जिन्हें एक बूढ़ी स्त्री जितनी आसानी से कर सकती है, नौजवान हरगिज़ नहीं कर सकते। मसलन, किसी मामले का सुराग लगाना, औरतों में हमारे विचारों का प्रचार करना। मगर तुम दिल्लगी कर रही हो!

मां ने गम्भीरता से कहा-नहीं बेटा दिल्लगी नहीं कर रही। दिल से कह रही हूँ। मां का दिल कितना नाजुक होता है, इसका अन्दाजा तुम नहीं कर सकते। तुम्हें इतने बड़े खतरे में अकेला छोड़कर मैं घर नहीं बैठ सकती। जब तक मुझे कुछ नहीं मालूम था, दूसरी बात थी। लेकिन अब यह बातें जान लेने के बाद मैं तुमसे अलग नहीं रह सकती। मैं हमेशा तुम्हारे बग़ल में रहूँगी और अगर कोई ऐसा मौक़ा आया तो तुमसे पहले मैं अपने को कुर्बान करूँगी। मरते वक़्त तुम मेरे सामने होगे। मेरे लिए यही सबसे बड़ी खुशी है। यह मत समझो कि मैं नाजुक मौक़ों पर डर जाऊँगी, चीखूँगी, चिल्लाऊँगी, हरगिज़ नहीं। सख़्त से सख़्त ख़तरों के सामने भी तुम मेरी जबान से एक चीख न सुनोगे। अपने बच्चे की हिफ़ाज़त के लिए गाय भी शेरनी बन जाती है।

धर्मवीर ने भक्ति से विह्वल होकर मां के पैरों को चूम लिया। उसकी दृष्टि में वह कभी इतने आदर और स्नेह के योग्य न थी।

सरे ही दिन परीक्षा का अवसर उपस्थित हुआ। यह दो दिन बुढ़िया ने दूरिवाल्वर चलाने के अभ्यास में खर्च किये। पटाखे की आवाज़ पर कानों पर हाथ रखने वाली, अहिंसा और धर्म की देवी, इतने साहस से रिवाल्वर चलाती थी और उसका निशाना इतना अचूक होता था कि सभा के नौजवानों को भी हैरत होती थी।

पुलिस के सबसे बड़े अफ़सर के नाम मौत का परवाना निकला और यह काम धर्मवीर के सुपुर्द हुआ।

दोनों घर पहुँचे तो मां ने पूछा-क्यों बेटा, इस अफ़सर ने तो कोई ऐसा काम नहीं किया फिर सभा ने क्यों उसको चुना?

धर्मवीर मां की सरलता पर मुस्कराकर बोला-तुम समझती हो हमारी कांस्टेबिल और सब-इंस्पेक्टर और सुपरिण्टेण्डेंट जो कुछ करते हैं, अपनी खुशी से करते हैं? वे लोग जितने अत्याचार करते हैं, उनके यही आदमी जिम्मेदार हैं। और फिर हमारे लिए तो इतना ही काफ़ी है कि वह उस मशीन का एक खास पुर्जा है जो हमारे राष्ट्र को चरम निर्दयता से बर्बाद कर रही है। लड़ाई में व्यक्तिगत बातों से कोई प्रयोजन नहीं, वहां तो विरोध पक्ष का सदस्य होना ही सबसे बड़ा अपराध है।

मां चुप हो गयी। क्षण-भर बाद डरते-डरते बोली-बेटा, मैंने तुमसे कभी कुछ नहीं मांगा। अब एक सवाल करती हूँ, उसे पूरा करोगे?

धर्मवीर ने कहा-यह पूछने की कोई जरूरत नहीं अम्मा, तुम जानती हो मैं तुम्हारे किसी हुक्म से इन्कार नहीं कर सकता।

मां-हां बेटा, यह जानती हूँ। इसी वजह से मुझे यह सवाल करने की हिम्मत हुई। तुम इस सभा से अलग हो जाओ। देखो, तुम्हारी बूढ़ी मां हाथ जोड़कर तुमसे यह भीख मांग रही है।

और वह हाथ जोड़कर भिखारिन की तरह बेटे के सामने खड़ी हो गयी। धर्मवीर ने क्रहक्रहा मारकर कहा-यह तो तुमने बेढब सवाल किया,

अम्मां। तुम जानती हो इसका नतीजा क्या होगा? जिन्दा लौटकर न आऊँगा। अगर यहां से कहीं भाग जाऊं तो भी जान नहीं बच सकती। सभा के सब मेम्बर ही मेरे खून के प्यासे हो जायेंगे और मुझे उनकी गोलियों का निशाना बनना पड़ेगा। तुमने मुझे यह जीवन दिया है, इसे तुम्हारे चरणों पर अर्पित कर सकता हूँ। लेकिन भारतमाता ने तुम्हें और मुझे दोनों ही को जीवन दिया है और उसका हक सबसे बड़ा है। अगर कोई ऐसा मौक़ा हाथ आ जाय कि मुझे भारतमाता की सेवा के लिए तुम्हें कत्ल करना पड़े तो मैं इस अप्रिय कर्त्तव्य से भी मुहं न मोड़ सकूँगा। आंखों से आंसू जारी होंगे, लेकिन तलवार तुम्हारी गर्दन पर होगी। हमारे धर्म में राष्ट्र की तुलना में कोई दूसरी चीज नहीं ठहर सकती। इसलिए सभा को छोड़ने का तो सवाल ही नहीं है। हां, तुम्हें डर लगता हो तो मेरे साथ न जाओ। मैं कोई बहाना कर दूँगा और किसी दूसरे कामरेड को साथ ले लूँगा। अगर तुम्हारे दिल में कमज़ोरी हो, तो फ़ौरन बतला दो।

मां ने कलेजा मजबूत करके कहा-मैंने तुम्हारे ख्याल से कहा था भइया, वर्ना मुझे क्या डर।

अंधेरी रात के पदों में इस काम को पूरा करने का फैसला किया गया था। कोप का पात्र रात को क्लब से जिस वक्त लौटे वहीं उसकी जिन्दगी का चिराग़ बुझा दिया जाय। धर्मवीर ने दोपहर ही को इस मौक़े का मुआइना कर लिया और उस खास जगह को चुन लिया जहां से निशाना मारेगा। साहब के बंगले के पास करील और करौंदे की एक छोटी-सी झाड़ी थी। वही उसकी छिपने की जगह होगी। झाड़ी के बायीं तरफ़ नीची ज़मीन थी। उसमें बेर और अमरूद के बाग़ थे। भाग निकलने का अच्छा मौक़ा था।

साहब के क्लब जाने का वक्त सात और आठ बजे के बीच था, लौटने का वक्त ग्यारह बजे था। इन दोनों वक्तों की बात पक्की तरह मालूम कर ली गयी थी। धर्मवीर ने तय किया कि नौ बजे चलकर उसी करौंदेवाली झाड़ी में छिपकर बैठ जाय। वहीं एक मोड़ भी था। मोड़ पर मोटर की चाल

कुछ धीमी पड़ जायेगी। ठीक इसी वक्त उसे रिवाल्वर का निशाना बना लिया जाय।

ज्यों-ज्यों दिन गुजरता जाता था, बूढ़ी मां का दिल भय से सूखता जाता था। लेकिन धर्मवीर के दैनंदिन आचरण में तनिक भी अन्तर न था। वह नियत समय पर उठा, नाश्ता किया, सन्ध्या की और अन्य दिनों की तरह कुछ देर पढ़ता रहा। दो-चार मित्र आ गये। उनके साथ दो-तीन बाज़ियां शतरंज की खेलीं। इत्मीनान से खाना खाया और अन्य दिनों से कुछ अधिक। फिर आराम से सो गया, कि जैसे उसे कोई चिन्ता नहीं है। मां का दिल उचाट था। खाने-पीने का तो जिक्र ही क्या, वह मन मारकर एक जगह बैठ भी न सकती थी। पड़ोस की औरतें हमेशा की तरह आर्यीं। वह किसी से कुछ न बोली। बदहवास-सी इधर-उधर दौड़ती फिरती थीं कि जैसे चुहिया बिल्ली के डर से सुराख ढूंढ़ती हो। कोई पहाड़-सा उसके सिर पर गिरता था। उसे कहींमुक्ति नहीं। कहीं भाग जाय, ऐसी जगह नहीं। वे घिसे-पिटे दार्शनिक विचार जिनसे अब तक उसे सान्त्वना मिलती थी-भाग्य, पुनर्जन्म, भगवान की मर्जी-वे सब इस भयानक विपत्ति के सामने व्यर्थ जान पड़ते थे। जिरहबख्तर और लोहे की टोपी तीर-तुपक से रक्षा कर सकते हैं लेकिन पहाड़ तो उसे उन सब चीजों के साथ कुचल डालेगा। उसके दिलो-दिमाग बेकार होते जाते थे। अगर कोई भाव शेष था, तो वह भय था। मगर शाम होते-होते उसके हृदय पर एक शान्ति-सी छा गयी। उसके अन्दर एक ताकत पैदा हुई जिसे मजबूरी की ताकत कह सकते हैं। चिड़िया उस वक्त तक फड़फड़ाती रही, जब तक उड़ निकलने की उम्मीद थी। उसके बाद वह बहेलिये के पंजे और क़साई के छुरे के लिए तैयार हो गयी। भय की चरम सीमा साहस है।

उसने धर्मवीर को पुकारा-बेटा, कुछ आकर खा लो।

धर्मवीर अन्दर आया। आज दिन-भर मां-बेटे में एक बात भी न हुई थी। इस वक्त मां ने धर्मवीर को देखा तो उसका चेहरा उतरा हुआ था। वह संयम जिससे आज उसने दिन-भर अपने भीतर की बेचैनी को छिपा रखा था,

जो अब तक उड़े-उड़े से दिमाग की शकल में दिखायी दे रही थी, खतरे के पास आ जाने पर पिघल गया था-जैसे कोई बच्चा भालू को दूर से देखकर तो खुशी से तालियां बजाये लेकिन उसके पास आने पर चीख उठे।

दोनों ने एक दूसरे की तरफ़ देखा। दोनों रोने लगे।

मां का दिल खुशी से खिल उठा। उसने आंचल से धर्मवीर के आंसू पोंछते हुए कहा-चलो बेटा, यहां से कहीं भाग चलें।

धर्मवीर चिन्ता-मग्न खड़ा था। मां ने फिर कहा-किसी से कुछ कहने की जरूरत नहीं। यहां से बाहर निकल जायें जिसमें किसी को खबर भी न हो। राष्ट्र की सेवा करने के और भी बहुत-से रास्ते हैं।

धर्मवीर जैसे नींद से जागा, बोला-यह नहीं हो सकता अम्मां। कर्त्तव्य तो कर्त्तव्य है, उसे पूरा करना पड़ेगा। चाहे रोककर पूरा करो, चाहे हसंकर। हां, इस ख्याल से डर लगता है कि नतीजा न जाने क्या हो। मुमकिन है निशाना चूक जाये और गिरफ्तार हो जाऊं या उसकी गोली का निशाना बनूं। लेकिन खैर, जो हो, सो हो। मर भी जायेंगे तो नाम तो छोड़ जाएंगे।

क्षण-भर बाद उसने फिर कहा-इस समय तो कुछ खाने को जी नहीं चाहता, मां। अब तैयारी करनी चाहिए। तुम्हारा जी न चाहता हो तो न चलो, मैं अकेला चला जाऊंगा।

मां ने शिकायत के स्वर में कहा-मुझे अपनी जान इतनी प्यारी नहीं है बेटा, मेरी जान तो तुम हो। तुम्हें देखकर जीती थी। तुम्हें छोड़कर मेरी जिन्दगी और मौत दोनों बराबर हैं, बल्कि मौत जिन्दगी से अच्छी है।

धर्मवीर ने कुछ जवाब न दिया। दोनों अपनी-अपनी तैयारियों में लग गये। मां की तैयारी ही क्या थी। एक बार ईश्वर का ध्यान किया, रिवाल्वर लिया और चलने को तैयार हो गयी।

धर्मवीर का अपनी डायर लिखनी थी। वह डायरी लिखने बैठा तो भावनाओं का एक सागर-सा उमड़ पड़ा। यह प्रवाह, विचारों की यह स्वतः स्फूर्ति उसके लिए नयी चीज थी। जैसे दिल में कहीं सोता खुल गया हो।

इन्सानलाफ़ानी है, अमर है, यही उस विचार-प्रवाह का विषय था। आरम्भ एक दर्दनाक अलविदा से हुआ-

‘रुखसत! ऐ दुनिया की दिलचस्पियों, रुखस्त! ऐ जिन्दगी की बहारो, रुखसत! ऐ मीठे जख्मों, रुखसत! देशभाइयों, अपने इस आहत और अभागे सेवक के लिए भगवान से प्रार्थना करना! जिन्दगी बहुत प्यारी चीज़ है, इसका तजुर्बा हुआ। आह! वही दुख-दर्द के नशतर, वही हसरतें और मायूसियां जिन्होंने जिंदगी को कड़ुवा बना रखा था, इस समय जीवन की सबसे बड़ी पूंजी हैं। यह प्रभात की सुनहरी किरनों की वर्षा यह शाम की रंगीन हवाएं, यह गली-कूचे, यह दरो-दीवार फिर देखने को मिलेंगे। जिन्दगी बन्दिशों का नाम है। बन्दिशें एक-एक करके टूट रही हैं। जिन्दगी का शीराज़ा बिखरा जा रहा है। ऐ दिल की आज़ादी! आओ तुम्हें नाउम्मीदी की कब्र में दफ़न कर दूँ। भगवान् से यही प्रार्थना है कि मेरे देशवासी फलें-फूलें, मेरा देश लहलहाये। कोई बात नहीं, हम क्या और हमारी हस्ती ही क्या, मगर गुलशन बुलबुलों से खाली न रहेगा। मेरी अपने भाइयों से इतनी ही विनती है कि जिस समय आप आजादी के गीत गायें तो इस ग़रीब की भलाई से लिए दुआ करके उसे याद कर लें।’

डायरी बन्द करके उसने एक लम्बी सांस खींची और उठ खड़ा हुआ। कपड़े पहनेखू रिवाल्वर जेब में रखा और बोला-अब तो वक्त हो गया अम्मां!

मां ने कुछ जवाब न दिया। घर सम्हालने की किसे परवाह थी, जो चीज़ जहां पड़ी थी, वहीं पड़ी रही। यहां तक कि दिया भी न बुझाया गया। दोनों खामोश घर से निकले।—एक मर्दानगी के साथ क्रदम उठाता, दूसरी चिन्तित और शोक-मग्न और बेबसी के बोझ से झुकी हुई। रास्ते में भी शब्दों का विनिमय न हुआ। दोनों भाग्य-लिपि की तरह अटल, मौन और तत्पर थे- गद्यांश तेजस्वी, बलवान् पुनीत कर्म की प्रेरणा, पद्यांश दर्द, आवेश और विनती से कांपता हुआ।

झाड़ी में पहुँचकर दोनों चुपचाप बैठ गये। कोई आध घण्टे के बाद साहब की मोटर निकली। धर्मवीर ने गौर से देखा। मोटर की चाल धीमी थी। साहब और लेडी बैठे थे। निशाना अचूक था। धर्मवीर ने जेब से रिवाल्वर निकाला। मां ने उसका हाथ पकड़ लिया और मोटर आगे निकल आयी।

धर्मवीर ने कहा-यह तुमने क्या किया अम्मां! ऐसा सुनहरा मौक़ा फिर हाथ न आयेगा।

मां ने कहा-मोटर में मेम भी थी। कहीं मेम को गोली लग जाती तो?

‘तो क्या बात थी। हमारे धर्म में नाग, नागिन और सपोले में कोई भी अन्तर नहीं।’

मां ने घृणा भरे स्वर में कहा-तो तुम्हारा धर्म जंगली जानवरों और वहशियों का है, जो लड़ाई के बुनियादी उसूलों की भी परवाह नहीं करता। स्त्री हर एक धर्म में निर्दोष समझी गयी है। यहां तक कि वहशी भी उसका आदर करते हैं।

‘वापसी के समय हरगिज न छोड़ूंगा।’

‘मेरे जीते-जी तुम स्त्री पर हाथ नहीं उठा सकते।’

‘मैं इस मामले में तुम्हारी पाबन्दियों का गुलाम नहीं हो सकता।’

मां ने कुछ जवाब न दिया। इस नामर्दों जैसी बात से उसकी ममता टुकड़े-टुकड़े हो गयी। मुश्किल से बीस मिनट बीते होंगे कि वहीं मोटर दूसरी तरफ़ से आती दिखायी पड़ी। धर्मवीर ने मोटर को गौर से देखा और उछलकर बोला- लो अम्मां, अबकी बार साहब अकेला है। तुम भी मेरे साथ निशाना लगाना।

मां ने लपककर धर्मवीर का हाथ पकड़ लिया और पागलों की तरह जोर लगाकर उसका रिवाल्वर छीनने लगा। धर्मवीर ने उसको एक धक्का देकर गिरा दिया और एक कदम रिवाल्वर साधा। एक सेकेण्ड में मां उठी। उसी वक्त गोली चली। मोटर आगे निकल गयी, मगर मां जमीन पर तड़प रही थी।

धर्मवीर रिवाल्वर फेंककर मां के पास गया और घबराकर बोला- अम्मां, क्या हुआ? फिर यकायक इस शोकभरी घटना की प्रतीति उसके अन्दर चमक उठी-वह अपनी प्यारी मां का कातिल है। उसके स्वभाव की सारी कठोरता और तेजी और गर्मी बुझ गयी। आंसुओं की बढ़ती हुई थरथरी को अनुभव करता हुआ वह नीचे झुका, और मां के चेहरे की तरफ आंसुओं में लिपटी हुई शर्मिन्दगी से देखकर बोला-यह क्या हो गया अम्मां! हाय, तुम कुछ बोलतीं क्यों नहीं! यह कैसे हो गया। अंधेरे में कुछ नज़र भी तो नहीं आता। कहाँ गोली लगी, कुछ तो बताओ। आह! इस बदनसीब के हाथों तुम्हारी मौत लिखी थी। जिसको तुमने गोद में पाला उसी ने तुम्हारा खून किया। किसको बुलाऊँ, कोई नजर भी तो नहीं आता।

मां ने डूबती हुई आवाज में कहा-मेरा जन्म सफल हो गया बेटा। तुम्हारे हाथों मेरी मिट्टी उठेगी। तुम्हारी गोद में मर रही हूँ। छाती में घाव लगा है। ज्यों तुमने गोली चलायी, मैं तुम्हारे सामने खड़ी हो गयी। अब नहीं बोला जाता, परमात्मा तुम्हें खुश रखे। मेरी यही दुआ है। मैं और क्या करती बेटा। माँ की आबरू तुम्हारे हाथ में है। मैं तो चली।

क्षण-भर बाद उस अंधेरे सन्नाटे में धर्मवीर अपनी प्यारी माँ के नीमजान शरीर को गोद में लिये घर चला तो उसके ठंडे तलुओं से अपनी आँसू-भरी आँखें रगड़कर आत्मिक आह्लाद से भरी हुई दर्द की टीस अनुभव कर रहा था।

